ॐ

श्रीवेदान्तदर्शनम्

(श्रीशांकरभाष्यानुकारिसरलसंक्षिप्तसंस्कृत
हिन्दीटीकोपेतम्)

टीकाकार
वेदान्तभूषण पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री
संस्थापक तथा प्रधानाचार्य
श्री गीता सत्सङ्ग, लखनऊ

मूल्य पाँच रुपये

ॐ

श्रीवेदान्तदर्शनम्

(श्रीशांकरभाष्यानुकारिसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकोपेतम्)

टीकाकार

वेदान्तभूषण पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री

संस्थापक तथा प्रधानाचार्य

श्री गीता सत्सङ्ग, लखनऊ

मुद्रक—
नया संसार प्रेस,
भदैनी, वाराणसी

प्रकाशक—
श्री गीता सत्सङ्ग,
७९ गौतमबुद्ध मार्ग,
लखनऊ

प्रथम वार १००० संवत् २०३२

मूल्य पाँच रुपये

पता—
श्री गीता सत्सङ्ग,
७९, गौतमबुद्ध मार्ग,
लखनऊ

ॐ

ऊर्ध्वाम्नायश्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वराणां जगद्गुरुशङ्कराचार्याणा-
मनन्तश्रीविभूषितस्वामिश्रीशङ्करानन्दसरस्वतीमहाराजानां

शुभाशीर्वादाः

भारतीयदर्शनगगनमण्डलमध्यस्थशाङ्करवेदान्तसिद्धान्तभास्करप्रकाशा-लोकितश्रीदुर्गादत्तशास्त्रिप्रणीतगीर्वाणवाङ्मयीं टीकां तदर्थाभिव्यञ्जिकां हिन्दीभाषीयटीकाञ्चावलोकयन्तः सन्तोषं वयमनुभवामः। श्रीशाङ्कराद्वैत-सिद्धान्तसमन्विततदीयप्रतिभाऽत्र चकास्तीति नात्र सन्देहलेशावकाशः। टीकाकृतोऽयं श्रमो महते फलाय भवत्विति प्रार्थयामहे भगवन्तं विश्वनाथम्।

शङ्करानन्दसरस्वती

श्रीः।

प्रस्तावना

ॐ स्नातं तेन समस्ततीर्थनिवहे सर्वापि दत्तावनि-
र्यज्ञानाञ्च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संतर्पिताः।
संसाराच्च समुद्धृतास्स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्यो ह्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥

जो वस्तु अज्ञान से आवृत तथा संशययुक्त हो एवं प्रयोजनवान् हो तथा सामान्यरूप से ज्ञात और विशेषरूप से अज्ञात हो उसी वस्तु में जिज्ञासा होती है और जिसकी जिज्ञासा होती है उसीका विचार किया जाता है। ब्रह्मात्मतत्त्व तो प्रमातारूप से अत्यन्त प्रसिद्ध है, प्रमाता को अपने से भिन्न प्रमेय के लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है, अपने जानने के लिये प्रमाण का प्रयोजन नहीं होता। आत्मा तो अहंरूप से अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ही है। समस्त जगत्प्रपञ्च जिसकी सत्ता से ही प्रतीत होता है उसके ज्ञान में संदेह कैसे हो सकता है। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' अर्थात् आत्म-सत्ता-भान के पश्चात् ही समस्त प्रपञ्च का भान होता है, जैसे कि आलोक की प्रतीति के अनन्तर ही नील-पीतादि वस्तु का भान होता है। अतः प्रसिद्ध ब्रह्मात्मतत्त्व में विचार की आवश्यकता नहीं है।

तथापि श्रुति ब्रह्म को परिपूर्ण परमानन्दरूप कहती है तथा ब्रह्म एवं आत्मा का अभेद प्रतिपादन करती है, किन्तु यह प्रतीत नहीं होता। इसके विपरीत भिन्नत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, परिच्छिन्नत्व आदि प्रतीत होते हैं, अतः ब्रह्म अज्ञात है। सत् और चित्-रूप से तो ब्रह्म ज्ञात है, किन्तु पूर्ण एवं परमानन्द-रूप से अज्ञात ही है। अतः सामान्यरूप से ज्ञात एवं विशेषरूप से अज्ञात ब्रह्म और आत्मा में जिज्ञासा और विचार हो सकता है।

यद्यपि ब्रह्मात्मा स्वप्रकाशरूप है। आदित्य में अन्धकार के समान स्वप्रकाश ब्रह्मात्मा में अज्ञान सम्भव नहीं है और अज्ञान के बिना संशय-

विपर्यय आदि बन नहीं सकता, किन्तु प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय आदि समस्त लौकिक तथा शास्त्रीय व्यवहार अज्ञान से ही कल्पित है। अज्ञात वस्तु ही प्रमेय होता है। प्रमेय जानने का साधन ही प्रमाण है। वेदान्त-सिद्धान्त में मुख्य प्रमेय आत्मा ही माना गया है 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादि। आत्मा स्वप्रकाश होने पर भी अज्ञान का आश्रय और विषय है अतः स्व-प्रकाश आत्मा में भी अज्ञान है यह मानना पड़ता है। यह अज्ञान ब्रह्म की शक्ति है। जैसे बीज में अङ्कुरोत्पादनी शक्ति बीज से विलक्षण होती है वैसे ही स्वप्रकाश सत्स्वरूप ब्रह्म में अनन्त ब्रह्माण्डरूप प्रपञ्च के उत्पादन की शक्ति है, इसीको माया, अज्ञान, अविद्या आदि अनेक नामों से कहते हैं। इस अज्ञान-निवृत्ति के लिये विचार करना चाहिये। वेदान्त-मत में विद्या से अविद्या एवं तत्कार्य द्वैत-प्रपञ्च के निवृत्त होने पर अद्वितीय ब्रह्मात्मैकत्व-स्वरूप परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है। यह परमानन्द ही मोक्ष है। यह मोक्ष विचार (विवेक) के विना नहीं होता। इसी आत्मतत्त्व का विचार ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) में किया गया है। इसपर भगवान् भाष्यकार श्रीशंकराचार्य का विस्तारपूर्वक भाष्य भी है। किन्तु विस्तार एवं सारगर्भित होने से सर्वसाधारण के लिये उसे समझना दुरूह है, इसीलिये पं० श्रीदुर्गादत्तजी उप्रेती शास्त्री ने प्रस्तुत ब्रह्मसूत्र का संक्षेप में सारांश अर्थ संस्कृत एवं हिन्दी में लिखकर समाज का बड़ा उपकार किया है। अतः माननीय पं० श्रीदुर्गादत्तजी उप्रेती को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ और भगवान् भूतभावन श्रीविश्वनाथजी से प्रार्थना करता हूँ कि पण्डितजी की लेखनी से सदा समाज का उपकार होता रहे।

स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती,
नारद घाट, काशी

नम्र निवेदन

तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्तकेसरी ।।

सर्वदर्शनों में 'वेदान्तदर्शन' का सर्वोत्कृष्ट स्थान और मान है। जिसने दुर्लभ नर-जन्म पाकर इस 'दर्शन' का सम्यक् दर्शन नहीं किया, उसका सर्व-दर्शन-दर्शन भी अदर्शन के तुल्य ही समझना चाहिये। यद्यपि सम्प्रति इस 'दर्शन' पर अनल्प भाष्य, व्याख्या और टीका प्रस्तुत हैं; उनमें कोई तो विस्तृत, दुरूह संस्कृत भाषा में है जो अल्पज्ञ, साधारण जनता की बुद्धि के बाहर है। जहाँ संस्कृत भाष्यों पर हिन्दी भाषानुवाद हो चुके हैं उनकी हिन्दी भाषा जटिल तथा कठिन होने से वे भी अल्पज्ञ जनता के लिये अगम्य ही हैं। जो केवल हिन्दी भाषा में अनुवाद हैं उनमें किस पद का क्या अर्थ है ऐसा स्पष्ट भान न होने से वे भी साधारण जनता के लिये विशेष लाभदायक नहीं हैं। यथार्थ में तो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु-मुख से पढ़े बिना 'दर्शन' का वास्तविक बोध होना प्रायः कठिन ही है, तथापि जो अल्पसंस्कृतज्ञ जन इस 'दर्शन' के जिज्ञासु हैं उनके लिये पहले सरल-संक्षिप्त संस्कृत में सूत्रार्थ समझना, पुनः सूत्रगत प्रत्येक पद का हिन्दी भाषा में अर्थ समझना और तत्पश्चात् सूत्र का संस्कृतार्थ सरल-संक्षिप्त हिन्दी भाषा में समझना आवश्यक है। इस प्रस्तुत टीका में इसी प्रकार क्रमशः सूत्रार्थ, पदार्थ तथा भाषार्थ देकर इस अगम्य 'दर्शन' को सर्वसाधारण के लिये बोधगम्य करने का प्रयत्न किया गया है। वेदान्त जिज्ञासु छात्रों के लिये तो यह टीका विशेष लाभदायक सिद्ध होगी, क्योंकि 'वेदान्त-दर्शन' पर ऐसी सरल-संक्षिप्त संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में टीका अबतक दृष्टि-गोचर नहीं हुई है।

इस 'वेदान्तदर्शन' के मुद्रण में 'श्री गीता सत्सङ्ग' संस्था के प्रधान डॉ० श्रीबालादीनजी गुप्त, प्रधान मन्त्री पं० श्री प्रयागनारायणजी त्रिवेदी तथा सहायक आचार्य पं० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी आदि सदस्यों की बहुत सहानुभूति रही है; ये सभी धन्यवादार्ह हैं; विशेषतया पं० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी ने इस

टीका के संशोधन में तन-मन से परिश्रम किया है, एतदर्थ ये विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। इसके मुद्रण का व्ययभार 'श्री गीता सत्सङ्ग' ने अपने ऊपर ले लिया है, अतः संस्था का यह शुभ कार्य टीकाकार के साथ अभिन्न हार्दिक सहानुभूति तथा प्रेम का परिचायक है। इसके प्रकाशन की आय से 'श्री गीता सत्सङ्ग' संस्था की सेवा होती रहे—इस उद्देश्य से मैंने इस 'वेदान्तदर्शन' की टीका का सर्वाधिकार 'श्री गीता सत्सङ्ग, लखनऊ' को दे दिया है।

इस टीका के मुद्रण की व्यवस्था पहले लखनऊ में ही संस्था के द्वारा की गयी थी, किन्तु किसी कारण-वश वहाँ विघ्न उपस्थित हो जाने से मेरे अनुज देवीदत्त शास्त्री ने इसे वाराणसी में मुद्रित करवा दिया एवं इस दर्शन को दर्शनीय बनवाकर सर्वसाधारण के कल्याणार्थ प्रस्तुत करवा दिया, यह उसकी अतिशय आत्मीयता का परिचायक है।

इस टीका को ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीशङ्करानन्दसरस्वतीजी महाराज ने अपना अनुग्रहपूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया है एवं पूज्यपाद स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज के शिष्य श्रीअनन्तानन्दसरस्वतीजी ने सारगर्भित प्रस्तावना लिख दी है, इसके लिये टीकाकार इन दोनों आदरणीय महानुभावों का अत्यन्त कृतज्ञ है।

गुणग्राही विद्वज्जन इस टीका की त्रुटियोंकी पूर्ति करके अपनी गुणग्राहकता का परिचय देने की कृपा करें।

निवेदक

टीकाकार दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री
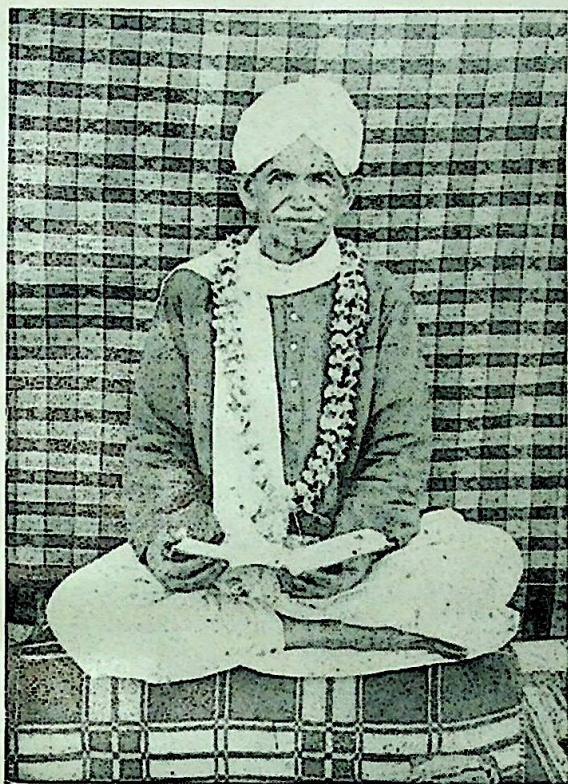
अल्मोड़ा

टीकाकार

अल्मोड़ा-निवासी पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री, वेदान्तभूषण

संस्थापक तथा प्रधानाचार्य

श्री गीता सत्सङ्ग, लखनऊ

विषय-सूची

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रारम्भिकमंगलपाठः

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासम्प्रदायकर्तृभ्यो वंशऋषिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः।

सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञानघनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि ॥ १ ॥

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥ २ ॥

श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम्।
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून् संततमानतोऽस्मि ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ॥ ४ ॥

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥ ५ ॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्त्तये नमः ॥ ६ ॥

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्।
स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मङ्गलं परम् ॥ ७ ॥

अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः ॥ ८ ॥

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥ ९ ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत्परब्रह्मणे नमः ॥

—००:०:००—

ॐ

मङ्गलाचरणम्

('भामती' टीकाकारश्रीवाचस्पतिमिश्रकृतम्)

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

ॐ अनिर्वाच्याविद्याद्वितयसचिवस्य प्रभवतो
विवर्ता यस्यैते वियदनिलतेजोऽबवनयः।
यतश्चाभूद् विश्वं चरमचरमुच्चावचमिदं
नमामस्तद् ब्रह्मापरिमितसुखज्ञानममृतम् ॥ १ ॥

निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि।
स्मितमेतस्य चराचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः ॥ २ ॥

षड्भिरङ्गैरुपेताय विविधैरव्ययैरपि।
शाश्वताय नमस्कुर्मो वेदाय च भवाय च ॥ ३ ॥

मार्तण्डतिलकस्वामिमहागणपतीन् वयम्।
विश्ववन्द्यान् नमस्यामः सर्वसिद्धिविधायिनः ॥ ४ ॥

ब्रह्मसूत्रकृते तस्मै वेदव्यासाय वेधसे।
ज्ञानशक्त्यवताराय नमो भगवतो हरेः ॥ ५ ॥

नत्वा विशुद्धविज्ञानं शंकरं करुणाकरम्।
भाष्यं प्रसन्नगम्भीरं तत्प्रणीतं विभज्यते ॥ ६ ॥

आचार्यकृतिनिवेशनमप्यवधूतं वचोऽस्मदादीनाम्।
रथ्योदकमिव गङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति ॥ ७ ॥

श्रीः।

अथ वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये

प्रथमपादः

जिज्ञासाधिकरणम् ।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥१॥

किमर्थं कदा च ब्रह्मजिज्ञासा कर्तव्या ? तत्राह—

सूत्रार्थः—अथशब्दः आनन्तर्यार्थः, अतः शब्दो हेत्वर्थः, ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा, ब्रह्मणो जिज्ञासा ब्रह्मजिज्ञासा। यस्मादग्निहोत्रादिजन्यफलस्यानित्यत्वं ब्रह्मविज्ञानादेव निःश्रेयसफलावाप्तिञ्च श्रुतिर्दर्शयति 'यथाहि-कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवात्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते।' छां० ८।१।६। 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' तै० २।१। तस्मात् साधनचतुष्टयसम्पत्त्यनन्तरं ब्रह्मजिज्ञासा कर्तव्या १।१।

पदार्थः—अथ = अनन्तर। अतः = इस कारण से। ब्रह्मजिज्ञासा = ब्रह्म को जानने की इच्छा करनी चाहिए।

भाषार्थः—क्योंकि अग्निहोत्रादि सकाम पुण्यकर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि लोक अनित्य हैं तथा ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा श्रुतियाँ प्रतिपादन करती हैं। अतः साधन-चतुष्टय-सिद्धि के अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिये १।१।

जन्माद्यधिकरणम्

किं तद्ब्रह्मलक्षणम् इत्याकांक्षायामाह—

जन्माद्यस्य यतः १।१।२

सूत्रार्थः—जन्मस्थितिलया अस्य स्थूलप्रपञ्चस्य यतः कारणाद् भवन्ति तद्ब्रह्मेति।

पदार्थः—अस्य = इस जगत् की। जन्मादि = उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (नाश)। यतः = जिससे (होते हैं)।

भाषार्थः—ब्रह्म का लक्षण बतलाते हैं कि इस जगत् की उत्पत्ति पालन और नाश जिस कारण से होते हैं वह ब्रह्म है ।१।१।२

शास्त्रोनित्वाधिकरणम्

कथं ब्रह्मणो जगत्कारणत्वम् । तत्राह—

शास्त्रयोनित्वात् ॥१।१।३

सूत्रार्थः—शास्त्रस्य ऋगादेर्वेदस्य योनिः कारणम् तस्य भावः शास्त्रयोनित्वं तस्माच्छास्त्रयोनित्वात् । अथवा शास्त्रं वेदो योनिर्मूलं प्रमाणं यस्मिन् तस्य भावः शास्त्रयोनित्वं तस्माद् वेदप्रमाणसिद्धं ब्रह्मणो जगत्कारणत्वमिति शेषः ।

पदार्थः—शास्त्रस्य = ऋक् आदि वेदों का । योनित्वात् = कारण होने से ।

भाषार्थः—ऋक् आदि वेदों का कारण ब्रह्म है, अथवा ऋग्वेदादि शास्त्र ही ब्रह्म के सद्‌भाव में कारण अर्थात् प्रमाण हैं ।१।१।३

समन्वयाधिकरणम्

स्वतःसिद्धब्रह्मसिद्धौ कथं वेदप्रामाण्यम् ?

तत्तु समन्वयात् ॥१।१।४॥

सूत्रार्थः—सर्वेषां वेदान्तानां तत्रैव ब्रह्मणि तात्पर्येण समन्वयात् ।

पदार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के निराकरण का द्योतक है । तत् = ब्रह्म । समन्वयात् = सम्यक् सम्बन्ध होने के कारण ।

भाषार्थः—सब वेदान्तशास्त्रों का सर्वकारण ब्रह्म के प्रतिपादन में ही तात्पर्य होने से ब्रह्म-सिद्धि में वेदादि शास्त्र प्रमाण हैं ॥१।१।४।

ईक्षत्यधिकरणम् । ५–११

सांख्यप्रधानकारणवादनिराकरणम्—

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥१।१।५।

सूत्रार्थः—सांख्यपरिकल्पितं प्रधानं न जगत्कारणं तत्र को हेतुः—अशब्दमिति हेतुगर्भविशेषणम् । अशब्दत्वादवेदप्रमाणत्वात् । वेदाप्रमाणत्वे

हेतुः । ईक्षतेः ईक्षितृत्वश्रवणात् । 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेत्यादि । छां० प्र० ६ खं० ३ मं० ३।।५।।

पदार्थः—ईक्षतेः = ईक्षण (सङ्कल्प) का कथन होने से। अशब्दम् = प्रधान (प्रकृति) । न = जगत्कारण नहीं ।

भाषार्थः—सांख्यपरिकल्पित प्रधान वेदप्रतिपादित न होने से जगत् का कारण नहीं हो सकता क्योंकि-'ब्रह्म ने संकल्प किया कि मैं विविध प्रपञ्चरूप में प्रकट होऊं' इस श्रुति में ब्रह्म के सङ्कल्प से सृष्टि की उत्पत्ति का कथन है। यह ईक्षण (संकल्प) जड़ प्रधान में नहीं हो सकता ।।१।१।५

गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ।।६।।

'तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त' । छा ६।२।४। एवम्—

सूत्रार्थः—अप्तेजसोरिव ईक्षतिशब्दः प्रधाने गौण इति चेन्न एतदात्म्यमित्यात्मशब्दश्रवणात् ।।६।।

पदार्थः—चेत् = यदि। गौणः = अमुख्य। न = नहीं। आत्मशब्दात् = आत्मा शब्द का प्रयोग होने के कारण।

भाषार्थः—'तेज ने इच्छा की जल ने इच्छा की' जैसा इस श्रुति में जड़ तेज व जल में गौणरूप (अमुख्यता) से ईक्षति शब्द प्रयुक्त हुआ है वैसे ही प्रधान में भी ईक्षति शब्द को गौणरूप से प्रयुक्त किया जाय तो क्या क्षति है ? इस पूर्व पक्ष का उत्तर है कि ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि-'यह सब आत्मा ही है' इस श्रुति में ईक्षण का कर्ता चेतन आत्मा को कहा है। जड़ प्रधान में ईक्षण असम्भव है। अतः गौणरूप से भी प्रधान में ईक्षति शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकता ।।१।१।६।

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ।।७।।

सूत्रार्थः—न प्रधानमात्मशब्दवाच्यं, कुतः ? तन्निष्ठस्य तत्पदार्थनिष्ठस्य ब्रह्मसंस्थस्य पुरुषस्य मोक्षोपदेशात् तत्त्वमसीतिश्रुत्या ।।७।।

पदार्थः—तत् = उस ब्रह्म में। निष्ठस्य = स्थितपुरुष का। मोक्षोपदेशात् = मोक्ष का उपदेश होने से।

भाषार्थः—क्योंकि आत्मशब्द चेतन में तथा जड़ मन इन्द्रिय और शरीर में भी प्रयुक्त होता है अतः प्रधान में भी प्रयुक्त हो सकता है यह वादी की शङ्का उचित नहीं क्योंकि 'तू ब्रह्म है' इस श्रुति से उस ब्रह्म-निष्ठ ज्ञानी पुरुष की ब्रह्मरूप मुक्ति का उपदेश होने से ब्रह्म ही जगत् का कारण है, प्रधान (प्रकृति) नहीं ॥७॥

हेयत्वावचनाच्च ॥८॥

सूत्रार्थः—न प्रधानं सच्छब्दवाच्यं, कुतः ? हेयत्वावचनात् । यथा-रुन्धतीं दिदर्शयिषुः तत्समीपस्थामरुन्धतीं ग्राहयित्वा पश्चात्तां प्रत्याख्याया-रुन्धतीमेव ग्राहयति तथा 'स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतुकेतो' इत्यादि वाक्ये-ष्वात्मनो हेयत्वावचनात् प्रकृतिर्नात्मवाचिका । च शब्दः प्रतिज्ञाविरोधार्थः एकज्ञानात्सर्वज्ञानमिति प्रतिज्ञाविरोधादपि न सच्छब्दवाच्यं प्रधानम् ॥८॥

पदार्थः—हेयत्व = आत्मा के त्याग का । अवचनात् = वचन न होने से ।

भाषार्थः—प्रधान सत् नहीं हो सकता क्योंकि जैसे अरुन्धती तारे को दिखाने का इच्छुक पुरुष पहिले अरुन्धती के समीपस्थ तारे को यही अरुन्धती है इस प्रकार दिखाकर पीछे उसका त्याग करके असली अरुन्धती को दिखाता है । इस प्रकार 'वह आत्मा तू है' इत्यादि श्रुति—वाक्यों में आत्मा को त्याग कर प्रधान का ग्रहण नहीं किया गया ॥८॥

स्वाप्ययात् ॥९॥

सूत्रार्थः—यत्रैतदिति (छां० ६।८।१) जीवस्य स्स्वरूपे आत्मनि लयश्रवणान्न प्रकृतेः सत्यत्वम् ।

यदा प्रधानमेव स्वशब्देनोच्येत तदाचेतनो चेतनमप्येतीति विरुद्धं स्यादतो न प्रकृतेः सत्यत्वम् ।

पदार्थः—स्व = अपने स्वरूप आत्मा में । अप्ययात् = लय होने से ।९।

भाषार्थः—'सुषुप्तिकाल में जीव का अपने स्वरूप आत्मा में लय होता है' ऐसा श्रुति का वचन होने से आत्मा ही सत् है प्रधान सत् नहीं है क्योंकि जड़ प्रधान में चेतन का लय होना असम्भव है ॥९॥

गतिसामान्यात् ॥१०॥

सूत्रार्थः—सर्ववेदान्तेषु चेतनकारणत्वावगतेः समत्वात् ।१० यथाहि—'एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' तै० उ० २।१।

पदार्थः—सामान्यात् = समान रूप से । गतिः = तात्पर्य ।

भाषार्थः—उपनिषदादि सब वेदान्तशास्त्रों का तात्पर्य समान रूप से चेतन को ही जगत् का कारण बताने में है जैसा कि 'आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध है ॥१०॥

श्रुतत्वाच्च ॥११॥

सूत्रार्थः—च पुनः सर्वज्ञं ब्रह्म जगत्कारणं कुतः ? 'स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः । श्वे. ६।९। इति श्रुतत्वात् ॥११॥

पदार्थः—च = और भी। श्रुतत्वात् = श्रुति का कथन श्रवण होने से ।

भाषार्थः—सर्वज्ञ ब्रह्म के जगत् का कारण होने में और भी प्रमाण हैं । जैसे 'वह ब्रह्म सब का कारण और अधिष्ठाता है । उसका पैदा करने वाला और अधिष्ठाता कोई नहीं है' इस श्रुति से सर्वज्ञ ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न उपादान और निमित्त कारण है, प्रधान नहीं ॥११॥

आनन्दमयाधिकरणम् १२ से १९ सू०

आनन्दमयोऽभ्यासात् ॥१२॥

सूत्रार्थः—'अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः' । तै० उ० २।५। इति श्रुतौ आनन्दमयः परमात्मैव न जीवः कुतोऽभ्यासात् आनन्दमयशब्दस्य ब्रह्मण्येव बहुकृत्वाभ्यासादित्यर्थः। यथा 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' तै २।९। 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' तै० ३।६। इति

पदार्थः—अभ्यासात् = बार-बार आने से । आनन्दमय = परमात्मा है ।

भाषार्थः—'आनन्दमय ब्रह्म को जानकर' तथा 'आनन्द ही ब्रह्म है' इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म को बार-बार आनन्दमय शब्द से कथन किया

है । अतः इस प्रकरण में आनन्दमय शब्द ब्रह्मवाचक ही है, जीव वाचक नहीं ॥१२॥

विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ॥१३॥

सूत्रार्थः—विकारार्थकमयट्प्रत्ययत्वान्नानन्दमयं ब्रह्मेति चेन्न प्राचुर्यात् = मयट् प्रत्ययस्य प्राचुर्यार्थिकत्वात् ।

पदार्थः—चेत् = यदि । विकारशब्दात् = मयट् प्रत्यय के विकारवाची होने से । न = आनन्दमयशब्द ब्रह्मवाचक नहीं हो सकता । इति = ऐसा । न = नहीं । प्राचुर्यात् = अधिकता का वाचक होने से ।

भाषार्थः—मयट् प्रत्यय के विकारार्थक होने से आनन्दमयशब्द ब्रह्मवाचक नहीं हो सकता यदि ऐसी शङ्का हो तो उचित नहीं, क्योंकि आनन्दमय शब्द में मयट् प्रत्यय अधिकता का वाचक है ।१३।

तद्धेतुव्यपदेशाच्च ॥१४॥

सूत्रार्थः—आनन्दं प्रति ब्रह्मणो हेतुत्वव्यपदेशात् । तथाहि 'एष ह्येवानन्दयतीति' ॥ तै० उ० २।७॥

पदार्थः—तत् = उस ब्रह्म को । हेतुव्यपदेशात्=आनन्द का कारण कथन करने से ।

भाषार्थः—'यह ब्रह्म सब को आनन्द देता है' तै० २।७। इस श्रुति में ब्रह्म को आनन्द का कारण कथन करने से आनन्दमय शब्द ब्रह्मपरक है ।१४।

मांत्रवर्णिकमेव च गीयते ॥१५॥

सूत्रार्थः—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' तै० २।१ इति मंत्रे वर्णितं मांत्रवर्णिकं ब्रह्म तदेवानन्दशब्देन गीयते ॥१५॥

पदार्थः—च = और । मांत्रवर्णिकम् = मंत्र में कहा हुआ । एव = ही । गीयते = प्रतिपादन किया गया है ।

भाषार्थः—'ब्रह्म सत्य, अनन्त और ज्ञानस्वरूप है' तै० २।१ इस मंत्र में प्रतिपादित ब्रह्म ही आनन्दमय शब्द का वाचक है ॥१५॥

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥१६॥

सूत्रार्थः—इतरो जीवो नानन्दमयः, कुतः? अनुपपत्तेः 'सोऽकामयंत बहुस्यां प्रजायेय' तै० २।६ इति कामयितृत्वादिधर्माणां जीवेऽसङ्गतत्वात् ॥१६॥

पदार्थः—इतरः = जीवः । न = ब्रह्मवाचक नहीं । अनुपपत्तेः = असङ्गत होने से ॥

भाषार्थः—'ब्रह्म ने बहुरूप में प्रकट होने की इच्छा की' इस श्रुति में जो इच्छा शब्द आया है वह जीव में संभव न होने से आनन्दमय शब्द जीववाचक नहीं है ॥१६॥

भेदव्यपदेशाच्च ॥१७॥

सूत्रार्थः—'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' तै० २।७ इत्यत्रानन्दमयस्य जीवाद् भेदकथनात्परमात्मैवानन्दमयो न जीवः ॥१७॥

पदार्थः—'जीव रसरूप परमात्मा से आनन्दवान् होता है'। तै०२।७ इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म से जीव का भेद कथन होने से भी जीव आनन्दमय नहीं हो सकता ॥१७॥

कामाच्च नानुमानापेक्षा ॥१८॥

सूत्रार्थः—आनन्दमयाधिकारे सोऽकामयत इति कामयितृत्वश्रवणाच्च नानुमानं प्रधानमानन्दमयत्वेन कारणत्वमपेक्षते ॥१८॥

पदार्थः—च = तथा । कामात् = इच्छा होने से । न = नहीं । अनुमानम् = प्रधान के अनुमान की अपेक्षा है।

भाषार्थः—(तै० २।७) इस पूर्वोक्तश्रुति में कामना (इच्छा) शब्द आने से जड़ प्रधान के आनन्दमय शब्द का वाचक होने का अनुमान करने की आवश्यकता नहीं है।

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥१९॥

सूत्रार्थः—अस्मिन्नानन्दमये मुक्तजीवस्य तद्योगं तदात्मना योगं शास्ति शास्त्रम् । 'अथ सोऽभयं गतो भवति' । तै० उ० २।७ इति ।

पदार्थः—च = इसके अतिरिक्त। अस्मिन् = इस आनन्दमय में। तद्योगं = उस मुक्त पुरुष के ब्रह्मरूप योग को। शास्ति = श्रुति उपदेश करती है।

भाषार्थः—इसके सिवा 'मुक्तावस्था में यह मुक्त पुरुष आनन्दमय ब्रह्म में तद्रूप हो जाता है' तै० २।७ इस शास्त्रवाक्य से ब्रह्म ही आनन्दमय है, जड़ प्रधान तथा अल्पज्ञ जीव नहीं क्योंकि ये दोनों चेतन ब्रह्म में ब्रह्मरूप से नहीं मिल सकते ॥१९॥

अन्तर्याम्यधिकरणम् ॥२०।२१।

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥२०॥

सूत्रार्थः—'अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः'। छां०१।६।७।८। 'अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते' १।७।१।५ इत्यादित्यमण्डले चक्षुषि च श्रूयमाणः पुरुषः परमात्मैव न संसारी जीवः, कुतः ? तद्धर्मोपदेशात् तस्य परमेश्वरस्य ये धर्मास्तेषामस्मिन् वाक्ये उपदेशात् ॥२०॥

पदार्थः—अन्तः = आँख के अन्दर और आदित्य मण्डल में। तत् = उस ईश्वर का। धर्मोपदेशात् = धर्मोपदेश होने से।

भाषार्थः—'यह जो आदित्यमण्डल में पुरुष है' छां० १, ६, ७, ८। और 'यह जो आँख के भीतर पुरुष है'। छां० १, ७, १, ५। इन दोनों श्रुतियों में आया हुआ पुषशब्द परमात्मा ही है। क्योंकि 'यह आत्मा निष्पाप है' छां० ८, ७, १, १। इत्यादि निष्पापादि धर्मों का श्रुतियों में उपदेश है ॥२०॥

भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥२१॥

सूत्रार्थ—आदित्याक्षिणोरन्तः पुरुष आदित्यदिशरीराभिमानिनो जीवादन्यः। 'य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरो यमादित्यो न वेद'। बृ० ३।७।९। इति

पदार्थः—भेदव्यपदेशात् = भेद का कथन होने से। अन्यः = जीव से अन्य है। च = और।२१।

भाषार्थ—'आदित्य के भीतर स्थित होने पर भी आदित्य जिसे

नहीं जानता' बृ० २।७।९। इत्यादि श्रुतियों द्वारा भेद का उपदेश होने से आदित्य और नेत्र के भीतर स्थित पुरुष आदित्यादि शरीरों के अभिमानी जीव से अन्य अन्तर्यामी ईश्वर है ॥२१॥

आकाशाधिकरणम्

आकाशस्तल्लिङ्गात् ॥२२॥

सूत्रार्थ—'अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच' छां० १।९।१ इत्यत्राकाशशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणं युक्तम्। तस्य ब्रह्मणः 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति'। छां० १।९।१ इति महाभूतसृष्टमे दृत्वादिकं यल्लिङ्गं तस्यास्मिन् वाक्ये दृष्टत्वात्।

आकाशः पदार्थः—यहाँ आकाश शब्द ब्रह्मवाचक हैं। तत्= उस ब्रह्म का। लिङ्गात्= लक्षण घटने से।२२।

भाषार्थ—'इस लोक का आधार क्या है' ? शालावत्य के ऐसा प्रश्न करने पर प्रवाहण ने उत्तर दिया 'आकाश'। छां० १।९।१ यहाँ आकाश शब्द ब्रह्म वाचक है, भूताकाशवाचक नहीं, क्योंकि 'ये सब भूत आकाश से उत्पन्न होते हैं और आकाश में लीन होते हैं' छां० १।९।१' इस श्रुति में कहे गये सृष्टि की उत्पत्ति और लय आदि लक्षण ब्रह्म में ही सम्भव हैं, भूताकाश में नहीं।२२।

प्राणाधिकरणम्

अतएव प्राणः ॥२३॥

सूत्रार्थः—उद्गीथे 'प्रस्तोतर्या देवतेति प्रस्तूय (उपक्रम्य) कतमा सा देवतेति प्राण इति होवाच' छां० १।११।४।५ इति श्रूयते। अत्र प्राणशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणम्। कुतः ? तत्रैव 'सर्वाणि इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति' इति ब्रह्मलिङ्गदर्शनात्।२३।

पदार्थ—अतएव= इसीलिये। प्राणः= प्राण भी ब्रह्मवाचक।

भाषार्थ—राजा (यजमान) ने अपने यज्ञ का संरक्षक उषस्ति को बनाया। उषस्ति ने प्रस्तोता (स्तुतिकर्ता) को कहा प्रस्ताव में आये

देवता की स्तुति कर। परन्तु यदि देवता को जाने बिना स्तुति करेगा तो तेरा शिर गिर जायगा—

"तब प्रस्तोता बोला कि श्रीमान् ने कहा कि हे स्तावक! यदि तू प्रस्ताव में आये हुये देवता को बिना जाने स्तुति करेगा तो तेरा शिर गिर पड़ेगा। अतः मैं आपसे ही पूछता हूँ कि वह देवता कौन है' छां० १।११।४ तब उषस्ति ने कहा वह देवता प्राण है। क्योंकि प्राण से ही सब भूत उत्पन्न होते हैं तथा प्राण में ही लय होते हैं।' छां० १।११।५ यहाँ प्राणब्रह्मवाचक है क्योंकि सब भूतों का लय ब्रह्म में ही होता है भौतिक प्राण में नहीं।२३।

ज्योतिश्चरणाधिकरणम् २४—२७

ज्योतिश्चरणाभिधानात्।२४।

सूत्रार्थ—'अतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते' छां० ३।१३।७) अत्र ज्योतिःशब्दग्राह्यं ब्रह्मैव। कुतः? 'पादोस्य विश्वा भूतानि')। यजु० ३१।३ इति चरणाभिधानात्।

पदार्थ—ज्योतिः=परमात्मा। चरणाभिधानात्=पाद का कथन होने से।२४।

भाषार्थ—'जो इससे ऊपर परम ज्योति प्रकाशित हो रही है' छां० ३।१३।७ इस श्रुति में ज्योति शब्द ब्रह्मवाचक है सूर्यादि ज्योति वाचक नहीं, क्योंकि 'यह सब जगत् ब्रह्म का एक पाद है' यजु० ३१।३ इस श्रुति में चरण का कथन होने से भौतिक सूर्यादि ज्योति के चरण नहीं हो सकते।२४।

छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम् २५

सूत्रार्थ—श्रुतौ गायत्र्याख्यछन्दोऽभिधानान्न ब्रह्मणो ज्योतिःशब्दग्राह्यत्वमिति चेन्न तथा छन्दोद्वारेण तद्गतब्रह्मणि चेतोर्पणस्य चित्तसमाधानस्य निगदनात्कथनादित्यर्थः। तथा ह्यन्यत्रापि विकारद्वारेण ब्रह्मोपासनं दर्शनं दृष्टमित्यर्थः। 'गायत्री वा इदं सर्वम्'। छां० ३।१२।१। इति ।।२५।।

पदार्थ—छन्दोऽभिधानात् = यहाँ गायत्री छन्द का कथन होने से। न = ब्रह्म के चरणों का कथन नहीं। चेत् = यदि। इति = ऐसी शंका हो तो। न = यह ठीक नहीं है। तथा = उस प्रकार के कथन से। चेतः = चित्त का। अर्पण = ब्रह्म में लगाने का। निगदात् = कथन होने से। तथा = वैसा ही अन्यत्र भी। दर्शनं = श्रुति में देखा गया है ॥२५॥

भाषार्थः—'यह सब जगत् ब्रह्म का एक पाद है' छा० ३।१२।६ इस श्रुति में चतुष्पाद गायत्री छन्द का कथन होने से ज्योति शब्द ब्रह्म-वाचक नहीं है ऐसी शङ्का करना उचित नहीं है क्योंकि यहाँ गायत्री छन्द द्वारा चित्त को ईश्वर में लगाने का कथन है। ऐसे ही 'यह सब गायत्री है' छां० ३।१२।१ इत्यादि श्रुतियों में विकार (उपाधि) द्वारा ब्रह्मोपासना देखी गयी है ॥२५॥

भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ॥२६॥

सूत्रार्थ—इतश्च गायत्री वाक्ये ब्रह्मैव प्रतिपाद्यमित्यभ्युपगन्तव्यम्। कुतः? भूतपृथ्विशरीरहृदयैश्चतुष्पादा गायत्रीव्यपदेशस्य सर्वात्मके ब्रह्मण्येवोपपत्तेर्न ह्यक्षरसन्निवेशरूपगायत्र्यां भूतादिपदव्यपदेशो भवति ।२६।

पदार्थ—भूतादि = भूत, पृथ्वी, शरीर और हृदय इन चार। पाद = पादों का। व्यपदेश = कथन। उपपत्तेः = ब्रह्म में ही सम्भव होने से। च = भी। एवं = इस प्रकार गायत्री शब्द ब्रह्मवाचक है।

भाषार्थ—'यह सब गायत्री है' इस वाक्य में गायत्री शब्द ब्रह्म-वाचक है क्योंकि भूत आदि चार पादों का कथन ब्रह्म में ही सम्भव हो सकता है चौबीस अक्षर वाली गायत्री में नहीं ।२६।

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात् ।२७।

सूत्रार्थ—"त्रिपादस्यामृतं दिवि' (यजु० ३१।४) इति सप्तम्यां द्यौराधारत्वेन निर्दिश्यते। अथ यदतः परो दिवो ज्योतिरिति पंचम्या मर्यादत्वेन निर्दिश्यते तथा च विभक्तिभेदेनोपदेशभेदाज्ज्योतिर्वाक्यं न ब्रह्मबोधकमिति चेन्नोभयस्मिन्नपि ब्रह्मण एकत्वस्याविरोधात् ।२७।

पदार्थः उपदेशभेदात् = उपदेश में भेद होने से। न = ज्योति शब्द

ब्रह्मवाचक नहीं। इतिचेत्=यदि ऐसा कहो तो। न=यह उचित नहीं। उभयस्मिन्=दोनों में। अपि=भी। अविरोधात्=विरोध न होने से।

भाषार्थ—'त्रिपादस्यामृतं दिवि' इस श्रुति में दिवि यह सप्तमी विभक्ति आधार को सूचित करती है। और 'यदतः परः' इस श्रुति में अतः शब्द पंचमी विभक्ति है जो मर्यादा को सूचित करती है। एवं विभक्ति भेद से उपदेश में भी भेद है। अतः ज्योति शब्द ब्रह्मवाचक नहीं हो सकता यह वादी का कथन उचित नहीं है क्योंकि यहाँ सप्तमी विभक्ति लक्षण से पंचमी विभक्ति का बोध कराती है। अतः दोनों वाक्यों में विरोध न होने से ज्योति शब्द ब्रह्मवाचक है यह सिद्ध हुआ।२७।

प्रतर्दनाधिकरणम् २८।३१

प्राणस्तथाऽनुगमात्।२८।

सूत्रार्थ—'स होवाच प्राणोस्मि प्रज्ञात्मा तं माम्'''उपासस्व' कौषी. ब्रा० उ० ३।१।२, ३। इत्यत्र प्राणो ब्रह्मैव कुतः? तथानुगमात्=ब्रह्मपरत्वेनावगमात्॥२८॥

पदार्थ—प्राणः=प्राण ब्रह्म है। तथा=वैसा ही। अनुगमात्=कथन होने से॥२८॥

भाषार्थ—प्रतर्दन ने इन्द्र से उत्तम वर माँगा तब इन्द्र ने कहा 'मैं प्राण हूँ मेरी उपासना कर।' कौ० उ० ३।१,२,३। यहाँ प्राण शब्द ब्रह्म वाचक है क्योंकि इन्द्र ने प्राण को ब्रह्म रूप से कथन किया है॥२८॥

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन्॥२९॥

सूत्रार्थ—ननु यदुक्तं प्राणो ब्रह्मैवेति तदयुक्तमिति चेन्न, कुतः? वक्तुरिन्द्रस्यात्मत्वेनोपदेशादित्यर्थः। अत्रोच्यते—हि यस्मादस्मिन्नाध्यात्मसम्बन्धस्य भूमा बाहुल्यमुपलभ्यते॥२९॥

पदार्थ—वक्तुः=इन्द्र के। आत्मोपदेशात्=यहाँ अपने को प्राण कहने से। न=प्राण ब्रह्मवाचक नहीं। इति चेत्=यदि ऐसा कहो तो। न=उचित नहीं। हि=क्योंकि। 'अस्मिन्=इस प्रकरण में। अध्यात्मसम्बन्धभूमा=प्रत्यगात्मा के सम्बन्ध का बाहुल्य है।

भाषार्थ—'मैं प्राण हूँ मेरी उपासना कर।' कौ. ३।१,२,३। यहाँ इन्द्र ने अपने विग्रहवान् शरीर को प्राण शब्द से कहा। अतः यहाँ प्राण शब्द ब्रह्मवाचक नहीं हो सकता यह शंका उचित नहीं क्योंकि यहाँ प्रत्यागात्मा के सम्बन्ध की अधिकता है अर्थात् प्राण को आत्मा समझ कर मैं ही आत्मा हूँ ऐसी उपासना कर ॥२९॥

शास्त्र दृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् ॥३०॥

सूत्रार्थ—इन्द्रस्य मामेव विजानीहीत्युपदेशो शास्त्रदृष्ट्या ज्ञातव्यः। तत्र दृष्टान्तो वामदेववद्यथाहि 'अहं मनुरभवं सूर्यश्च' वृ० १।४।१० इति शास्त्रदृष्टित्वात् ॥३०॥

पदार्थ—तु = यहाँ तो। वामदेववत् = वामदेव की तरह। शास्त्रदृष्ट्या = शास्त्र की दृष्टि से। उपदेशः = उपदेश किया गया है ॥३०॥

भाषार्थ—जैसे वामदेव ने अपने को ब्रह्म जान कर 'अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों के अनुसार अहंग्रह उपासना द्वारा जीवात्मा के एकत्व का उपदेश किया है कि मैं ही मनु बना और मैं ही सूर्य बना इत्यादि। वृ. ।४।१०।३०।

इसी प्रकार यहाँ इन्द्र ने शास्त्र द्वारा अपने आत्मा को परमात्मा रूप से मैं ब्रह्म हूं ऐसा जान कर मुझ को ही जान, ऐसा उपदेश किया है।

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह-तद्योगात् ॥३१॥

सूत्रार्थ—जीवलिङ्गान्मुख्यप्राणलिङ्गाच्च प्राणशब्दो न ब्रह्म पर इति चेन्नोपासात्रैविध्यात् जीवोपासनं, प्राणोपासनं ब्रह्मोपासनञ्चेति। अन्यत्र ब्रह्मलिङ्गवशात् प्राणशब्दस्य ब्रह्मणि वृत्तेराश्रितत्वाच्चेहापि हिततमो-पन्यासादिब्रह्मलिङ्गयोगाद् ब्रह्मण एवायंमामेव विजानीहीत्युपदेशः न प्राणेन नापानेन। कठ उ० २।५॥ इति प्राणव्यापारस्येश्वरायत्त्वम् ॥३१॥

पदार्थ—जीवलिङ्गात् = जीव के लक्षण से। च मुख्यप्राणलिङ्गात् = और मुख्यप्राण के लक्षण से। न = प्राणब्रह्म नहीं। इति चेत् = यदि ऐसा

कहो तोयह उचित नहीं। उपासात्रैविध्यात्=तीन प्रकार की उपासना न= होने से। आश्रितत्वात्=ब्रह्म के आश्रित होने से। इह= यहाँ भी। तद्योगात्=ब्रह्मलिङ्ग के योग से भी ब्रह्म का उपदेश है। प्राण का नहीं ॥३१॥

भाषार्थ—इस प्रकरण में जीव और प्रसिद्ध प्राण का लक्षण होने से प्राण शब्द केवल ब्रह्मवाचक हीं नहीं किन्तु जीव और मुख्य प्राणवाचक भी है ऐसी शंका हो तो यह उचित नहीं है क्योंकि ऐसा मानने से जीवोपासना, प्राणोपासना और ब्रह्मोपासना ऐसी तीन उपासना माननी पड़ेंगी। एकवाक्यता के कारण एक उपासना का विधान है, प्राण शब्द के ब्रह्मलिङ्ग के अश्रित होने से तथा हिततम और उपन्यास आदि ब्रह्म के लक्षणों का योग होने से प्राण ब्रह्म वाचक है इन्द्र तथा जीववाचक नहीं है ॥३१॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये पं० दुर्गादत्तउप्रेतिशास्त्रिकृतसरल संक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां प्रथमः पादः।

अथ वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये द्वितीयः पादः

सर्वत्रप्रसिद्धाधिकरणम् १–८

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥१॥

सूत्रार्थः—सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीतेत्युपक्रम्य मनोमयः प्राणशरीरः (छां० ३।१४।१,२) इत्यत्र मनोमयत्वेनोपास्यं परं ब्रह्मैव। कस्मात्, सर्वेषु वेदान्तेषु प्रसिद्धस्य ब्रह्मण एव सर्वं ? खल्विदं-ब्रह्मेत्याद्युपदेशात् ॥१॥

पदार्थ—सर्वत्र = सब वेदान्तशास्त्रों में। प्रसिद्ध = प्रसिद्ध ब्रह्म का उपदेशात् = उपदेश होने से ॥१॥

भाषार्थ—'यह सब ब्रह्म है' ऐसे आरम्भकर 'मनोमय (मन से युक्त) प्राण रूप शरीर वाला, छां० ३।१४।१।२ इस श्रुति में आया हुआ मनोमय शब्द ब्रह्मवाचक है क्यों कि 'यह सब ब्रह्म है। इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति तथा लय के कारण ब्रह्म की शान्तचित्त से उपासना करे' छां. ३।१४।१,२ इत्यादि सब वेदान्तशास्त्रों में प्रसिद्ध ब्रह्म की उपासना का उपदेश है। अतः मनोमय भी ब्रह्म ही है ॥१।

विवक्षित गुणोपपत्तेश्च ॥२॥

सूत्रार्थः—'य आत्मा अपहतपाप्मा, छां० ८।७।१ इति मंत्रोक्त-सत्यसंकल्पादिविवक्षितगुणानां ब्रह्मण्येवोपपत्तेश्च मनोमयो ब्रह्मैव।

पदार्थः—विवक्षित = उपादेय, ग्राह्य। गुणानां = गुणों की। उप-पत्तेः = संगति से। च = भी मनोमय ब्रह्म ही है ॥२॥

भाषार्थः—छां० ३।१४।१,२ इन श्रुतियों में 'मनोमयः प्राण शरीरः' इन दो गुणों के आगे जो सत्यसंकल्प आदि गुण कहे गये हैं वे ब्रह्म में ही घट सकते हैं, जीवात्मा में नहीं। अतः मनोमय शब्द ब्रह्म वाचक है जीववाचक नहीं है ॥२॥

अनुपपत्तेस्तु न शारीर ।।३।।

सूत्रार्थः—तु इत्यवधारणार्थः । न शारीरो जीवो मनोमयत्वेनोपास्यः । कुतः ? शारीरे सत्यसंकल्पादि गुणानामनुपपत्तेः ।।३।।

पदार्थः—तु = निश्चय करके । शारीरः = जीवात्मा । न = मनोमय नहीं है । अनुपपत्तेः = संगति न होने से ।

भाषार्थः—श्रुति में कहे हुए सत्यसंकल्पादि गुण जीव में नहीं घट सकते । अतः मनोमय ब्रह्म ही है जीव नहीं ।।३।।

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ।।४।।

सूत्रार्थः—'एतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मि' छां० ३।१४।४। इति ब्रह्मशारीरयोः कर्मकर्तृत्वेनोपासकत्वेन व्यपदेशान्न जीवो मनोमयत्वेनोपास्यः ।।४।।

पदार्थः—कर्म = ब्रह्म को कर्म । कर्तृ = जीव को कर्ता । व्यपदेशात् = कथन करने से । च = भी ।।४।।

भाषार्थः—'मैं इस लोक से मरकर ब्रह्म को प्राप्त होऊंगा' छां. ३।१४।४ इस श्रुति में ब्रह्म को कर्म और जीव को कर्ता कथन करने से भी जीव मनोमयादि करके उपासना के योग्य नहीं है ।।४।।

शब्दविशेषात् ।।५।।

सूत्रार्थः—'अन्तरात्मन् पुरुषो हिरण्यमयः । श० ब्रा० १०।६।३।२' इत्यत्रात्मन्निति सप्तम्यन्तशब्दः शारीरस्याभिधायकः तद्विशिष्टः पुरुषशब्दो मनोमयादिविशिष्टस्य ब्रह्मणोऽभिधायकः इति सप्तमी प्रथमान्तविशेषान्न जीवो मनोमयादिगुणकः । अन्तरात्मनि अत्र इकारलोपश्छान्दसः ।।५।।

पदार्थः—शब्द = सप्तमी प्रथमान्त शब्दों में । विशेषात् = अन्तर होने से ।।५।।

भाषार्थः—'यह अन्तरात्मा में प्रकाशमय पुरुष है, श० ब्रा १०।६।३।२। इस श्रुति में 'अन्तरात्मनि यह सप्तमी विभक्ति वाला पद जीव वाचक है और प्रथमा विभक्ति वाला पुरुष' शब्द ब्रह्म वाचक है। अतः

विभक्ति भेंद होने के कारण जीव ब्रह्म भी भिन्न-भिन्न है । अतः मनोमयादि गुणों वाला ब्रह्म ही है, जीव नहीं है ।।५।।

स्मृतेश्च ।।६।।

सूत्रार्थः—ईश्वरः सर्वभूतानामिति स्मृतेश्च जीवब्रह्मणो भेदोऽस्ति ।।६।।

पदार्थः—स्मृतेः = स्मृति से । च = भी भेद है ।।६।।

भाषार्थः—'ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में है' इस गीता स्मृति से भी जीव ब्रह्म में उपासक उपास्य का भेद होने से जीव उपास्य नहीं है ।।६।।

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।।७।।

सूत्रार्थः—अर्भकं अल्पं ओकः स्थानं यस्य स तस्य भावः अर्भकौकस्त्वं तस्मादर्भकौकस्त्वात् । 'एष म आत्मा अन्तर्हृदये' इत्यल्पायतनत्वात् । 'अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा' । छां० ३।१४।३ इत्यणीयंस्त्वव्यपदेशाच्च जीव एवेहोपदिश्यते न ब्रह्मेति चेन्नैवम् । यथा सर्वगतमपि व्योम सूचीपाशाद्यपेक्षयाऽर्भकौकोऽणीयश्चोच्यते तथा परमात्माऽपि हृदयपुण्डरीके निचाय्यत्वाद् दृष्टव्यत्वादर्भकौका इत्युच्यते ।।७।।

पदार्थः—अर्भकम् = अल्प । ओकः = स्थान । तत् = उसको । अणीयान् = बहुत छोटा । व्यपदेशात् = कथन होने से । च = भी । न = वह ब्रह्म नहीं । इतिचेत् = यदि ऐसा कहो तो । न = यह आक्षेप उचित नहीं । निचाय्यत्वात् = देखने योग्य होने से । व्योमवत् = आकाशवत् । एवं = अणु या अल्प ।।७।।

भाषार्थः—'यह मेरा आत्मा हृदय में है' छां० ३।१४।३ इस श्रुति ने ब्रह्म का स्थान हृदय बताया है और हृदय छिद्र बहुत अल्प है । इस ही श्रुति में आत्मा को धान, जौ और सरसों आदि बीजों से भी सूक्ष्म कथन किया है । अतः यह अल्प तथा सूक्ष्म स्थान वाला जीव ही हो सकता है आत्मा नहीं, ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि ईश्वर

हृदय-कमल में ही दृष्टव्य अथवा ध्यान करने योग्य है। अतः हृदय रूप उपाधि के कारण ही ब्रह्म को अल्प तथा सूक्ष्म कहा गया है, जैसे सर्व-व्यापी आकाश घट की उपाधि से घटाकाश और सुई के छिद्र की उपाधि से सूच्याकाश कहा जाता है। आगे इसी (छां० ३।१४३) श्रुति में जिसको पहिले अल्प और अणु कहा है उसी को अन्त में पृथ्वी तथा आकाश से बड़ा कहा है। अतः 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' धर्म ब्रह्म में ही घट सकता है, जीव में नहीं ॥७॥

संभोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ॥८॥

सूत्रार्थः—सर्वहृदयसम्बन्धाच्चिद्रूपत्वाच्च ब्रह्मणोऽपि जीवस्येव सुखदुःखादिसंभोगप्राप्तिरितिचेन्न कुतः भोक्तृत्वाभोक्तृत्वादिवैशेष्यात् तथाहि श्रुतिः 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' मुं० ३।३।१।१ इत्यतो मनोमयत्वादिगुणको ब्रह्मैव ॥८॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो। संभोगप्राप्तिः = सुखदुखादि भोगों की प्राप्ति। इति न = ऐसा मत कहो। वैशेष्यात् = जीव से ब्रह्म में विशेषता होने से ॥८॥

भाषार्थः—हृदय के सम्पर्क से तथा चैतन्यता के कारण जीववत् ब्रह्म को भी सुख-दुःखादि भोगों की प्राप्ति हो जाएगी ऐसी शंका न करो क्योंकि 'शरीर रूपी पीपल के वृक्ष पर ईश्वर और जीवरूप दो पक्षी बैठे हैं। उनमें एक (जीव) कर्म के फलस्वरूप सुख-दुःखादि भोगरूप पिप्पलों को भोगता है और दूसरा ईश्वर भोक्ता नहीं, केवल साक्षीमात्र है' (मुं० ३।३।१।१) इस श्रुति के अनुसार जीव से ब्रह्म में बड़ा अन्तर होने से सिद्ध हुआ कि मनोमय शब्द से ब्रह्म ही उपास्य है जीव नहीं ॥८॥

अत्तेत्यधिकरणम् ॥९॥

अत्ता चराचरग्रहणात् ॥९॥

सूत्रार्थः—'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम्'। कठ० उ० १।२।२४ इत्यत्रात्ताग्निरुत जीवः परमात्मा वेति संशयः। तत्राह

परमात्मेति । कुतः चराचरग्रहणात् । नाखिलस्थावरजंगमस्यात्ता परमात्मनोऽन्यो भवितुमर्हति ।।९।।

पदार्थः—अत्ता = भोक्ता । चराचर = स्थावर जंगम का । ग्रहणात् = ग्रहण होने से ।

भाषार्थः—'जिसका ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों भात है तथा मृत्यु (यमराज) दाल आदि स्थानीय है' । कठ० १।२।२४ यहाँ संशय है कि इस दाल भात का अत्ता अर्थात् भोक्ता कौन है ? अग्नि है, जीव है अथवा परमात्मा है ? इसका उत्तर है कि अत्ता परमात्मा ही है क्योंकि इस श्रुति में ब्रह्म, क्षत्र शब्द से चर-अचर अर्थात् स्थावर जंगम रूप समस्त जड़ चेतन संसार का ग्रहण है । अतः सारे संसार का अत्ता, भोक्ता अथवा लयकर्ता परमात्मा ही हो सकता है, अन्य नहीं ।।९।।

प्रकरणाच्च ।।१०।।

सूत्रार्थ—'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' । कठ० ।१।२।१८ इति प्रकरणाच्च ब्रह्मैव सर्वभक्षको नान्यः ।।१०।।

पदार्थ—प्रकरणात् = प्रकरण से । च = भी ।।१०।।

भाषार्थ—'न वह जन्म लेता है, न मरता है' कठ० १।२।२८ यहाँ ब्रह्म का प्रकरण होने से सिद्ध है कि परमात्मा ही सर्व-भक्षक है, न अग्नि और न जीव ।।१०।।

गुहाप्रविष्टाधिकरणम् ।११–१२।।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ।।११।।

सूत्रार्थ—'गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे' कठ० १।३।१। अत्र गुहां हृदयाकाशगुहायां प्रविष्टौ जीवात्मानौ न तु बुद्धिजीवौ । कुतः 'ऋतं पिबन्तौ' इत्यस्मिन् प्रकरणे द्वयोरेव गुहाप्रवेशव्यपदेशदर्शनात् ।।११।।

पदार्थ—गुहां = हृदयाकाशगुहा में । प्रविष्टौ = प्रविष्ट या स्थित । आत्मानौ = जीव और परमात्मा । हि = ही हैं । दर्शनात् = कथन होने से ।।११।।

भाषार्थ—'बुद्धिरूप हृदयाकाशगुहा में प्रविष्ट सत्य (शुभ-कर्म-फल) को पाते हुए (भोगते हुए) धूप और छाया की तरह जीवात्मा और

परमात्मा रहते हैं'। कठ० १।३।३।१ इस श्रुति में कहे हुए दो आत्मा-जीवात्मा और परमात्मा ही हैं, जीव और बुद्धि नहीं ॥११॥

विशेषणाच्च ॥१२॥

सूत्रार्थ—'आत्मानं रथिनं विद्धि'। कठ० १।३।३। इत्यत्र रथिनमिति जीवस्य विशेषणम्। 'तद्विष्णोः परमं पदम्'। कठ० १।३।७। इत्यत्र परमं-पदमिति परमात्मनश्च विशेषणमेवं विशेषणद्वयाच्च जीवपरमात्मनोर्ग्रहणम् न तु बुद्धिजीवयोः ॥१२॥

पदार्थ—च = और। विशेषणात् = विशेषण से भी ॥१२॥

भाषार्थ—'अपने को रथी जानो' कठ० १।३।३ इस श्रुति में रथी यह जीव का विशेषण है और 'वह विष्णु का परमपद है'। कठ० १।३।७ इस श्रुति में परमपद यह परमात्मा का विशेषण है। एवं इन दो विशेषणों से इस प्रकरण में जीवात्मा और परमात्मा का ही ग्रहण है, बुद्धि और जीव का नहीं ॥१२॥

अन्तराधिकरणम् ॥१३–१७

अन्तर उपपत्तेः ॥१३॥

सूत्रार्थ—'य एषोऽक्षिणि पुरुषः.........एतदमृतमभयं ब्रह्मेति'। छां० ४।१५।१। इत्यक्षिण्यन्तरः पुरुषः परमात्मैव। कुतः? 'एतदमृतमभयं ब्रह्मेत्युपपत्तेः ॥१३॥

पदार्थ—अन्तरे = भीतर। उपपत्तेः = संगति होने से ॥१३॥

भाषार्थ—'यह आँख के भीतर जो पुरुष दीखता है वह अमृत तथा अभय ब्रह्म है'। कठ० ४।१५।१ यहाँ आँख के भीतर दीखने वाला पुरुष परमात्मा ही है क्योंकि अमृत, अभय तथा ब्रह्म ये धर्म परमात्मा में ही संभव हो सकते हैं ॥१३॥

स्थानादिव्यपदेशाच्च ॥१४॥

सूत्रार्थ—'यः चक्षुसि तिष्ठन् यः पृथिव्यां तिष्ठन्' ॥ वृ० ३।७।३ इत्यादिस्थानव्यपदेशान्निर्देशादक्षिण्यन्तरः पुरुषः परमात्मैव न जीवः ॥१४॥

पदार्थः—स्थानादिव्यपदेशात् = स्थानों आदि का निर्देश होने से। च = भी।

भाषार्थः—'जो नेत्र तथा पृथ्वी में रहता हुआ' बृ० ३।७।३ इत्यादि श्रुतियों में नेत्रादि अल्प पृथ्वी आदि बड़े स्थानों में पुरुष के रहने का कथन होने से नेत्रस्थ पुरुष ब्रह्म ही है, क्योंकि अणुमात्र जीव बड़े स्थानों में व्यापक नहीं हो सकता ॥१४॥

सुखविशिष्टाभिधानादेव च ।१५।

सूत्रार्थः—'कं ब्रह्म खं ब्रह्म'। छां० ४।१०।५ इति सुखविशिष्टाभिधानाच्चाक्षिगतः पुरुषः परमात्मैव ।१५।

पदार्थः—च = और। सुखविशिष्ट = सुखस्वरूप। अभिधानात् = कथन करने से। एव = ही ॥१५॥

भाषार्थः—'ब्रह्म आकाशवत् व्याप्त तथा सुखस्वरूप है'। छां० ४।१०।१५ इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म को सुखस्वरूप कथन करने से भी अक्षिगत पुरुष परमात्मा ही है ॥१५॥

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ।१६।

सूत्रार्थः—श्रुतोपनिषद्येन तस्य श्रुतोपनिषत्कस्य ब्रह्मविदो या देवयानाख्या गतिः 'अथोत्तरेण तपसा' प्र० १।१० 'अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः'। गीतेति श्रुतिस्मृत्यादिनाभिधानाच्चाक्षिगतः पुरुषः परमात्मैव ॥१५॥

भाषार्थः—जिसने उपनिषद् पढ़ी है, ऐसे उपनिषदों के अनुसार अहंग्रह उपासना करने वाले ब्रह्मवेत्ता पुरुष की जो प्रसिद्ध देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक की प्राप्ति रूप गति का (जहाँ से लौटना नहीं होता) कथन किया गया है, वही गति नेत्रान्तर पुरुष को जानने वाले की भी कही गयी है। अतः सिद्ध हुआ कि अक्षिगत पुरुष परमात्मा ही है, जीव नहीं है ॥१६॥

अनवस्थितेरसंभवाच्च नेतरः ।१७।

सूत्रार्थः—अक्षिगतः पुरुषो ब्रह्मेतरो न भवति कुतः ? ब्रह्मेतराणां छायात्मजीवात्मदेवतामनाञ्च तत्र नियमेनावनस्थितेरमृतत्वादिगुणानां तत्रासंभवाच्च ।।१७।।

पदार्थः—इतर = ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा पुरुष । न = नहीं । अनवस्थितेः = निरन्तर स्थिति न होने से । च = और । असंभवात् = असंभव होने से ।

भाषार्थः—ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा छायात्मा पुरुष, जीवात्मा तथा देवतात्मा, इन तीनों में कोई भी अक्षिगत पुरुष नहीं हो सकता। क्योंकि-इन तीनों की निरन्तर नेत्र में स्थिति नहीं रहती । नेत्र के सम्मुख स्थित पुरुष की छाया जो नेत्र में पड़ती है, वही छायात्मा पुरुष है, जो सम्मुखस्थ पुरुष के हटते ही नाश हो जाता है । जीवात्मा मन तथा इन्द्रियों के साथ नेत्र में जाता है और समय नहीं । एवं देवतात्मा भी इन्द्रिय के सम्पर्क से नेत्रस्थ होता है, अन्य समय नहीं । सुषुप्तिकाल में तो ये तीनों ही नेत्र में नहीं रहते । एवं श्रुति में जो ब्रह्म के अमृत, अभय आदि गुण कथन किये गये हैं उनके इन तीनों में असंभव होने से भी नेत्रस्थ पुरुष परमात्मा ही है, जीवादि अन्य नहीं ।।१७।।

अन्तर्याम्यधिकरणम् ।१८—२०।

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ।१८।

सूत्रार्थः—'य इमञ्च लोकम्' बृ० ३।७।१२ इत्यत्र श्रुतौ अन्तर्याम्यधिदैवतमधिलोकमधिवेदमधियज्ञमधिभूतमध्यात्मावस्थितो यमयितान्तर्यामी ब्रह्मैव । कुतः ? तस्येह परमात्मनः सर्वनियन्तृत्वादिधर्मव्यपदेशात् ।।१८।।

पदार्थः—अधिदैवादिषु = अधिदैव आदि में । अन्तर्यामी = नियन्त्रणकर्ता ब्रह्म । तत् = उस ब्रह्म के । धर्मव्यपदेशात् = धर्मों का कथन होने से ।

भाषार्थः—'इस लोक-परलोक और सब भूतों में स्थित होकर नियन्त्रण करने वाला अन्तर्यामी' । बृ० ३।७।१२ इस श्रुति में लोक,

वेद, यज्ञ, आत्मा आदि में स्थित होकर उनका नियन्त्रण करने वाला अन्तर्यामी ब्रह्म ही है, जीव नहीं। क्योंकि-इसी श्रुति में 'यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है' कहकर उपसंहार किया गया है। ये अन्तर्यामित्व तथा अमृतत्वादि धर्म, जीव में नहीं घट सकते। अतः यहाँ अन्तर्यामी शब्द से ब्रह्म का ग्रहण है ॥१८॥

न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ॥१९॥

सूत्रार्थः—न च स्मार्तं सांख्यपरिकल्पितं प्रधानमन्तर्यामिशब्द-वाच्यं सर्वनियन्तृत्वादिधर्माणां तत्राचेतने प्रधानेऽसम्भवात् ॥१९॥

पदार्थः—स्मार्तम्=प्रधान या प्रकृति। च=भी। न=नहीं। अतत्=प्रधान में न रहने वाले। धर्माणां=धर्मों का। अभिलापात्=कथन होने से ॥१९॥

भाषार्थः—सांख्य स्मृति से सिद्ध प्रधान भी अन्तर्यामी नहीं हो सकता क्योंकि अमृत, अभय आदि लक्षण प्रधान में असंभव हैं ॥१९॥

शारीरञ्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥२०॥

सूत्रार्थः—न शारीरोऽन्तर्यामीशब्दवाच्यश्च यत उभयेऽपि हि काण्वा माध्यन्दिनाश्चैनं भेदेनाधीयते पठन्तीत्यर्थः ॥२०॥

पदार्थः—शारीरञ्च=जीवात्मा भी। न=अन्तर्यामी नहीं। हि=क्योंकि। उभय=दोनों (काण्व, तथा माध्यन्दिनी शाखा वाले)। एनम्=इस जीवात्मा को। भेदेन=अन्तर्यामी से भेद (पृथक्) करके। अधीयते=अध्ययन करते है।

भाषार्थः—जीव भी अन्तर्यामी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि-काण्व तथा माध्यन्दिनी दोनों शाखा वाले इस जीव को अन्तर्यामी से भिन्न-भिन्न अध्ययन करते हैं ॥२०॥

अदृश्यत्वाधिकरणम् ।२१—२३।

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ॥२१॥

सूत्रार्थः—'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यम्'। मुंड० १ ॥६॥ इत्यत्रादृश्यत्वादि-

गुणकः परमात्मैव । कुतः ? 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' मुंड० ।।१९।। इत्यादि श्रुतिभिः तद्धर्मोक्तेः ।।२१।।

पदार्थः—अदृश्यत्वादिगुणकः = अदृश्यता आदि गुणोंवाला । धर्मोक्तेः = धर्मोंका कथन होने से ।।२१।।

भाषार्थः—'वह अदृश्य, अग्राह्य है । मुं० १।६। इत्यादि श्रुतियों में कहा गया अदृश्य अग्राह्य आदि गुणों वाला ब्रह्म ही है, जीव तथा प्रधान नहीं। क्योंकि-'वह सर्वज्ञ है सर्ववेत्ता है' मुंड० ।१९।' इत्यादि श्रुतियों में कहे गये गुण ब्रह्म में ही घट सकते हैं, अल्पज्ञ जीव तथा जड़ प्रधान में नहीं ।।२१।।

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ।।२२।।

सूत्रार्थः—'दिव्योह्यमूर्तः' मुंड २।१।२' इति विशेषणात् । 'ह्यक्षरात्परतः परः' मुंड २।१।२।' इति भेददर्शनाच्च नेतरौ प्रधानजीवौ ह्यदृश्यादिगुणकौ भूतयोनिशब्दवाच्यौ ।।२२।।

पदार्थः—विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याम् = विशेषण और भेद का कथन होने से । च = भी । इतरौ = जीव और प्रधान । न = नहीं ।२२।

भाषार्थः—'दिव्य, अमूर्त' मुंड० २।१।२' इस प्रकार जीव और प्रधान से ब्रह्म का भेद का कथन होने से जीव और प्रधान भूत योनि नहीं हो सकते ।।२२।।

रूपोपन्यासाच्च ।।२३।।

सूत्रार्थः—'अग्निमूर्धा' मुंड० २।१।४।' इति रूपकाभिधानाच्च ब्रह्मैव सर्वभूतयोनिर्नेतरौ जीवप्रधानौ ।।२३।।

पदार्थः—रूप = विराट् रूप का । उपन्यासात् = वर्णन होने से । च = भी ।

भाषार्थः—'अग्नि इस परमात्मा का मस्तक है' सूर्य-चन्द्रमा इसके

नेत्र हैं मु॰ २।१।२।' इस प्रकार श्रुतियों में विराट् रूप का कथन होने से सब भूतों का कारण ब्रह्म ही है ।-२३।।

वैश्वानराधिकरणम् ।।२४-३२।।

वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ।।२४।।

सूत्रार्थः—'यस्त्वेतमेवं...वैश्वानरमुपासते । छां॰ १८।१२।' अत्र वैश्वानरपदेन ब्रह्मैव गृह्यते नाग्न्यादयः। यतोऽग्निब्रह्मणोः साधारणत्वेऽपि वैश्वानरशब्दस्य ब्रह्मपरिग्रहे 'मूर्धैव सुतेजा' इति विशेषावगमात् ।।२४।।

पदार्थः—वैश्वानरः = परमात्मा । साधारण = साधारण होने पर भी । शब्दविशेषात् = वैश्वानर शब्द की बिशेषता होने से ।।२४।।

भाषार्थः—'जो इस वैश्वानर की उपासना करता है' । छां॰ ५।१८।१,२। यहाँ वैश्वानर शब्द ब्रह्मवाचक है। यद्यपि वैश्वानर शब्द साधारण रूप से अग्नि, ब्रह्म आदि शब्दों का बोधक है किन्तु 'वैश्वानर का द्युलोक मस्तक है' छां॰ ५।१८।२ इस श्रुति से अन्य साधारण अर्थों की अपेक्षा वैश्वानर शब्द का यहाँ अर्थ विशेष रूप से ब्रह्म बोधक है ।।२४।।

स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ।।२५।।

सूत्रार्थः—इति हेत्वर्थः। वैश्वानरस्य ब्रह्मपरिग्रहे 'यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा' । महा॰ शां॰ प॰ ४७।७०' इति स्मृत्युक्तं रूपमनुमानं लिङ्गं स्यात् ।।२५।।

पदार्थः—इति = हेतु । स्मर्यमाणम् = स्मृतिसिद्ध विराट् रूप भी । अनुमानम् = प्रमाण । स्यात् = है ।

भाषार्थः—वैश्वानर शब्द ब्रह्मवाचक है इसमें 'अग्नि वैश्वानर का मुख है द्युलोक मस्तक है' यह स्मृति भी प्रमाण है ।।२५।।

शब्दादिभ्योऽन्तः प्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्न

तथा दृष्ट्युपदेशादसम्भवात्पुरुषमपि चैनमधीयते ।।२६।।

सूत्रार्थः—'स एषोऽग्निर्वैश्वानरः' । छां० ५।१८।२ इत्यादि शब्देभ्य। 'पुरुषेऽन्तः प्रतिष्ठितम्' श० ब्र० १०।६।१।११ इति वैश्वानरस्य पुरुषेऽन्तः प्रतिष्ठानाच्च न वैश्वानरो ब्रह्मेति चेन्न तथा जठरे वैश्वानरे ब्रह्मदृष्ट्युपदेशाद् यदि चेह जठराग्निरेव विवक्ष्येत ततो मूर्धैव सुतेजेत्यादिवाक्यासंभवत्वं स्यात् । अतः पुरुषेऽन्तः प्रतिष्ठितमिति बाजसनेयिनां पुरुषाध्ययनाच्च वैश्वानरो ब्रह्मैव ।।२६।।

पदार्थः—शब्दादिभ्यः = शब्दादि के कारण। च = और । अन्तः प्रतिष्ठानात् = शरीर के अन्दर स्थित होने से । इति चेत् = यदि ऐसा कहो तो । न = उचित नहीं । तथा = उस प्रकार की । दृष्ट्युपदेशात् = ब्रह्म दृष्टि का उपदेश होने से । असंभवात् = असंभव होने से । च = और। एनम् = इस वैश्वानर को। पुरुषमपि = पुरुष भी । अधीयते = कहते हैं ।।२६।।

भाषार्थः—'यह अग्नि वैश्वानर है' । छां० ५।१८।२ इत्यादि शब्दों (श्रुतियों) से और 'पुरुष के अन्दर स्थित इस वैश्वानर अग्नि को जो जानता है' श० ब्र० १०।६।१।११ इस वाजसनेयियों के कथन से वैश्वानर शब्द अग्निवाचक है ब्रह्मवाचक नहीं ऐसा कथन उचित नहीं । जैसे यहाँ 'मनोब्रह्मेत्युपासीत' मन की ब्रह्म दृष्टि से उपासना कही इसी प्रकार जठराग्नि की ब्रह्मदृष्टि से उपासना का उपदेश किया है । यदि यहां जठराग्नि ही अभीष्ट मानी जाय तो 'द्युलोक वैश्वानर का मस्तक है' इस श्रुति के अनुसार विराट् रूप से वैश्वानर का वर्णन कैसे संभव हो सकता है। वाजसनेयी भी वैश्वानर को पुरुष रूप से वर्णन करते हैं । एवं वैश्वानर शब्द ब्रह्मवाचक है ।।२६।।

अत एव न देवताभूतञ्च ।।२७।।

सूत्रार्थः—अत एव पूर्वोक्तहेतुभ्यो वैश्वानरो नाग्न्यभिमानिनी देवता न च भूताग्निः ॥२७॥

पदार्थः—अतएव = इसी कारण। देवताभूतं न = अग्नि अभिमानी देवता तथा भूताग्नि नहीं।

भाषार्थः—अतएव उपर्युक्त कारणों से वैश्वानर न अग्नि अभिमानी देवता है और न भूताग्नि किन्तु परमात्मा ही है ॥२७॥

साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ॥२८॥

सूत्रार्थः—यदुक्तं पूर्वं जाठराग्न्युपाधिकः परमात्मोपास्य इति तत्र जैमिनिस्तूपाधिं विनैव साक्षादपि वैश्वानरस्य ब्रह्मपरिग्रहेऽविरोधं मन्यते ॥२८॥

पदार्थः—जैमिनिः = जैमिनि। अपि = भी। साक्षात् = विना उपाधि के। अविरोधं = विरोध नहीं (मानते) ॥२८॥

भाषार्थः—जो पूर्व में कहा गया कि जठराग्नि उपाधिवाला परमात्मा उपास्य है इस विषय में जैमिनि तो उपाधि के विना भी साक्षात् वैश्वानर की ब्रह्मरूप से उपासना करने में कोई विरोध नहीं मानते ॥२८॥

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॥२९॥

सूत्रार्थः—'यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपासते' छां० ५।१८।१२ इत्यत्र कथमनन्तेश्वरस्य वैश्वानरस्य प्रादेशमात्रत्वम् तत्राह। अभिव्यक्तिनिमित्तमुपासकानां कृते परमात्मा तत्प्रमाणोऽभिव्यज्यत इत्यर्थः ॥२९॥

पदार्थः—अभिव्यक्तेः = प्रकटता के लिये। इति = ऐसा। आश्मरथ्यः = आश्मरथ्यं आचार्य मानते हैं ॥२९॥

भाषार्थः—'जो विराट् स्वरूप वस्तुतः मानरहित अर्थात् निराकार वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है।' छां० ५।१८।१ यहाँ शङ्का

है कि विराट् स्वरूप तथा निराकार, निर्विकार अव्यक्त वैश्वानर आत्मा को प्रादेशमात्र क्यों कहा ? अनन्त ईश्वर को प्रादेश मात्र कहना सर्वथा असंगत है। अतः यहाँ प्रादेश मात्र (सूक्ष्मपरिमाणवाला) कहने से जीव को ही वैश्वानर क्यों न माना जाय। इसका उत्तर है कि ऐसी शङ्का करना उचित नहीं। यहाँ परमात्मा को प्रादेश मात्र मनुष्य के हृदय अर्थात् हृदय से कण्ठ तक का जो बालिश्त भर या दश अंगुल प्रमाण स्थान है उसकी अपेक्षा से कहा है। यजु। ३१-१ में भी कहा है 'वह सहस्रशीर्ष वाला विराट् पुरुष दश अंगुल प्रमाण से स्थित हुआ।' ध्यान का अधिकारी मनुष्य ही है और ध्यान का उत्तम स्थान हृदय से कण्ठ तक है। यह स्थान बालिश्त भर या दश अंगुल प्रमाण का है। अतएव परमात्मा को प्रादेश मात्र कहा है। भक्त के ऊपर अनुग्रह करने के लिये ही अव्यक्त भगवान् विराट् या प्रादेश रूप से प्रकट होते हैं यह सारार्थ है।२९।

अनुस्मृतेर्बादरिः ॥३०॥

सूत्रार्थः—तत्प्रमाणमनुस्मरणार्थमित वादरिराचार्यो मन्यते।

पदार्थः—अनुस्मृतेः= ध्यानार्थ। बादरि=बादरि आचार्य।

भाषार्थः—वादरि आचार्य भी ऐसा ही मानते हैं अर्थात् मनुष्य के स्मरण या ध्यान के योग्य हृदय स्थान की अपेक्षा से ब्रह्म को प्रादेश मात्र कहा है ॥२०॥

सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ॥३१॥

सूत्रार्थः—सम्पत्तिः ध्येयैकरूपत्वं तन्निमित्तं प्रादेशमात्रमिति जैमिनिर्मन्यते तथाहि दर्शयति 'प्रादेशमात्रमिव ह वै देवाः सुविदिता अभि सम्पन्नाः श० ब्र० १०।६।१।१०,११)

पदार्थः–सम्पत्तिः=सम्पत्ति के लिए (छोटी वस्तु का आलम्बन लेकर उसके समान बड़ी वस्तु प्राप्त करने का नाम सम्पत्ति है)। इति= ऐसा। जैमिनि मानते हैं। हि= क्योंकि। दर्शयति=श्रुति भी ऐसा ही दर्शाती है ॥३१॥

भाषार्थः—ब्रह्मस्वरूप सम्पत्ति के लिये वैश्वानर को प्रादेश मात्र कहा है। 'देवताओं ने वैश्वानर को प्रादेश मात्र मान कर ध्यान किया और वे वही हो गये' इस शतपथ की श्रुति से भी यही सिद्ध होता है ॥३१॥

आमनन्ति चैनमस्मिन् ॥३२॥

सूत्रार्थः—अस्मिन्मूर्धचिबुकान्तराले जाबाला ब्रह्मणोः प्रादेशमात्रत्वमामनन्ति ॥३२॥

पदार्थः—अस्मिन्=दाढ़ी तथा मस्तक के मध्य में। एनम्=इस वैश्वानर रूप परमात्मा को। च=ही। आमनन्ति=प्रति पादन करते हैं ॥३२॥

भाषार्थः—जाबाल श्रुति भी मूर्धा से चिबुक तक स्थान में परमात्मा का ध्यान करना चाहिये, इस प्रकार प्रादेश मात्र स्थान में ब्रह्मरूप वैश्वानर की उपासना का प्रतिपादन करती है। एवं सब ओर से इस वेदान्त शास्त्र में वैश्वानर शब्द ब्रह्मवाचक ही है यह सिद्ध हुआ ॥३२॥

इति श्री वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये पं० दुर्गादत्तउप्रेतिशास्त्रिकृतसरल-संक्षिप्तसंस्कृतहिन्दी टीकायां द्वितीयः पादः

अथ वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये

तृतीयपादः

द्यु भ्वाद्यधिकरणम् । १

द्यु भ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।।१।।

सूत्रार्थः—'यस्मिन् द्यौ पृथिवी चान्तरिक्षमोत तमेवैकं जानथ आत्मनम्' मु० २।२,५ इत्यत्र द्यु भ्वादिलोकानामायतनं परब्रह्मास्ति। कुतः ? तत्रात्मानमिति ब्रह्मवाचकस्वशब्दात् ।।१।।

पदार्थः—द्यु =स्वर्ग । भू =आधार पृथिवी । आदिं =अन्तरिक्षादि लोक । आयतनम् =आधार । स्वशब्दात् =आत्मा शब्द होने से ।

भाषार्थः—'जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्षादि सब लोक तथा सब इन्द्रियों सहित मन कल्पित हैं उसी एक आत्मा को जानो, अन्य आत्म-ज्ञान रहित अपरा विद्या को छोड़ो । वह मोक्ष का सेतु है ।' मु० २।३।५ यहाँ द्यु भू आदि लोकों का आधार ब्रह्म है क्योंकि ब्रह्मवाचक स्व (आत्मा) शब्द श्रुति में है ।।१।।

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ।।२।।

सूत्रार्थः—घुभ्वाद्यायतनम् ब्रह्मैव । कस्मात् ?—'यदासर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ब्र० ४।४।७ इत्यत्र मुक्तैरुपसृप्यं प्राप्यं यद् ब्रह्म तस्य व्यपदेशात् ।।२।।

पदार्थः—मुक्तः =मुक्त पुरुषों से । उपसृप्यम् =प्राप्त करने योग्य। व्यपदेशात् =कथन होने से ।।२।।

भाषार्थः—द्यु लोक, भूलोक आदि सब लोकों का आधार ब्रह्म ही है । क्योंकि 'मुक्त पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होता है' वृ० ४।४।७ मु० २।२।८ इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध है कि ब्रह्म ही सब लोकों का आधार है जीव नहीं ।।२।।

नानुमानमतच्छब्दात् ॥३॥

सूत्रार्थः—द्यु म्वाद्यायतनं नानुमानगम्यं सांख्यपरिकल्पितं प्रधानमितितद्बोधकशब्दाभावात् ॥३॥

पदार्थः—अनुमानम् =प्रधान या प्रकृति । न = (विश्वाधार) नहीं । अतच्छब्दात् = प्रधान प्रतिपादक शब्द का अभाव होने से ॥३॥

भाषार्थः—अनुमान से जानने योग्य सांख्यपरिकल्पित प्रधान भी द्यु आदि लोकों का अधिष्ठान नहीं हो सकता/ क्योंकि-प्रधान को सर्वाधार बताने वाला इस प्रकरण में कोई शब्द नहीं है ॥३॥

प्राणभृच्च ॥४॥

सूत्रार्थः—अतच्छब्दादेव प्राणभृज्जीवोऽपि न द्यु भ्वाद्यायतनम् ॥४॥

पदार्थः—प्राणभृत् = जीव । च =भी ।

भाषार्थः—श्रुति में प्रधान की तरह जीव शब्द का भी अभाव होने से जीव भी सर्वाधार नहीं ॥४॥

भेदव्यपदेशात् ॥५॥

सूत्रार्थः—तमेवैकं जानथ आत्मानमिति ज्ञातृज्ञेयभेदव्यपदेशान्न जीवो द्यु भ्वाद्यायतनम् ॥५॥

पदार्थः—भेदव्यपदेशात् = (ज्ञाता तथा ज्ञेय के) भेद का कथन होने से ॥४॥

भाषार्थः—'उस ही एक आत्मा को जानो' । मुं० ३।२।५ इस श्रुति में जीव को ज्ञाता और आत्मा को ज्ञेय बताकर दोनों में भेद कथन किया है । अतः जीव द्यु आदि लोकों का आधार नहीं है ॥५॥

प्रकरणाच्च ॥६॥

सूत्रार्थः—'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते' मुं० १।१।३ इति प्रकरणान्न जीवो द्यु म्वाद्यायतनम् ॥६॥

पदार्थः—प्रकरणात् = प्रकरण से । च = भी ।

भाषार्थः—'किसको जानने से सब कुछ जाना जाता है।' मुं० १।१।३ इस श्रुति के उत्तर स्वरूप (एक ब्रह्म के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है) यह ब्रह्म का प्रकरण होने से, ब्रह्म ही सब लोकों का आधार है ॥६॥

स्थित्यदनाभ्याञ्च ॥७॥

सूत्रार्थः—तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति जीवस्यादननिर्देशात्। अन्योऽनश्नन्नितीश्वरस्यौदासीन्येन स्थितिकथनाच्चेश्वर एव द्युम्वाद्यायतनम् न जीवप्रधानौ ॥७॥

पदार्थः—स्थिति = उदासीनता से स्थिति । अदनम् = जीव का भोक्ता होना ॥७॥

भाषार्थः—उन दोनों में जीव का भोक्ता रूप से और ईश्वर का उदासीन रूप से वृ० ३।१।२ का कथन है। अतः ईश्वर ही द्यु भू आदि लोकों का आधार है। जीव तथा प्रधान नहीं ॥७॥

भूमाधिकरणम् ॥८-९॥

भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ॥८॥

सूत्रार्थः—'भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः ।' छां० ७।२३। इत्यत्र भूमा शब्दो ब्रह्मवाचको न प्राणवाचकः । कुतः सम्प्रसादात् = सम्यक् प्रसीदत्यस्मिन्निति सम्प्रसादः प्राणप्रधानं सुप्प्तिस्थानं तस्मात्सुषुप्तिस्थानीयात्प्राणादध्युपरि तुरीयत्वेन भूम्न उपदेशात् ॥८॥

पदार्थः—भूमा = ब्रह्म का । सम्प्रसादात् = सुषुप्ति स्थान से । अधि = ऊपर । उपदेशात् = कथन होने से ॥८॥

भाषार्थः—'भूमा को जानो' छां० १।२।३ इस श्रुति में भूमा शब्द ब्रह्म वाचक है, प्राण वाचक नहीं। क्योंकि भूमा का सुषुप्ति से ऊपर तुरीय स्थान कहा गया है। तुरीय स्थानीय ब्रह्म ही है, प्राण नहीं ॥८॥

धर्मोपपत्तेश्च ॥९॥

सूत्रार्थः—'भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः' छां० ३।२३।८९ इत्यत्र भूमा ब्रह्मैव न प्राणः। कुतः ? श्रुत्युक्तसुखादिधर्माणां ब्रह्मण्येवोपपत्तेः ॥९॥

पदार्थः—धर्म = सुखादि धर्मों की। उपपत्तेः = संगति होने से ॥९॥

भाषार्थः—'भूमा सुखरूप है। उसे ही जानना चाहिए।' छां० ७।२३।१ इत्यादि श्रुतियों में कहे हुए सुखादि धर्म ब्रह्म में ही संभव होने से भूमा शब्द ब्रह्म-वाचक है ॥९॥

अक्षराधिकरणम् ॥१०-१२॥

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥१०॥

सूत्रार्थः—'स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि'। वृ० ३।८।७।८ अत्राक्षरशब्दो ब्रह्मपरो न तु वर्णपरः। कुतः ? अम्बरमाकाशमन्ते यस्य तस्य पृथिव्याकाशपर्यन्तस्य धृतेर्धारणात् ॥१०॥

पदार्थः—अक्षर = ब्रह्म। अम्बरान्तम् = आकाश पर्यन्त। धृतेः = धारण करने से ॥१०॥

भाषार्थः—'हे गार्गि ! यह वही अक्षर है जिसने पृथिवी से आकाश पर्यन्त सारे विश्व को धारण कर रखा है'। वृ० ३।८।७।८। इस श्रुति में अक्षर शब्द ब्रह्मवाचक है, वर्णवाचक नहीं, क्योंकि ब्रह्म ही विश्व को धारण कर सकता है ॥१०॥

सा च प्रशासनात् ॥११॥

सूत्रार्थः—सा चाम्बरान्तधृतिः परमात्मन एव कर्म। 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः'॥ वृ० ३।८।९ इति प्रशासनात् ॥११॥

पदार्थः—च = तथा। सा = विश्व धारण रूप क्रिया। प्रशासनात् = ईश्वर के शासन से ॥११॥

भाषार्थः—विश्व को धारण करना ईश्वर का ही कर्म है जैसा कि 'हे गार्गि ! इसी अक्षर ब्रह्म की आज्ञा में सूर्य तथा चन्द्रमा स्थिर हैं।' बृ० ३।८।९ इस श्रुति से सिद्ध है ॥११॥

अन्य भावव्यावृत्तेश्च ॥१२॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मैवाक्षरशब्दवाच्यम् । कस्मात् ? 'तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टम्' बृ० ३।८।११। इति श्रुत्या ब्रह्मणोऽन्यभावः प्रधानं तस्मात्प्रधानात्तस्य ब्रह्मणो व्यावृत्ते र्भेदाख्यानात् ॥१२॥

पदार्थः—अन्यभावः= ब्रह्म से अन्य प्रधान का । व्यावृत्तेः =भेद कथन होने से। च =भी ॥१२॥

भाषार्थ—अक्षर ब्रह्म ही है क्योंकि ब्रह्म से अन्य प्रधान है और प्रधान का ब्रह्म से भेद है और अक्षर में प्रधान का अभाव है ।

ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः ॥१३॥

सूत्रार्थः—'ओमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत्' प्र० ५। इत्यत्रोङ्कारोपासनया ध्येयं परब्रह्मैव न तु हिरण्यगर्भः । कस्मात् ईक्षतिर्दर्शनमितीक्षतिकर्मव्यपदेशात् । 'परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते' प्र० ५।५। इति वाक्यशेषे तदीक्षितेः कर्मस्थानीयो यः पुरुषः तस्य दर्शन विषयत्वेन व्यपदेशात् ।

पदार्थः—ईक्षतिकर्म= दर्शनरूप कर्म (का) । व्यपदेशात् = कथन होने से । सः= वह परमात्मा ।

भावार्थः—'ॐ इस एकाक्षर के द्वारा पुरुष का ध्यान करे' प्र० ५। यहाँ ॐकारोपासना से ध्यान के योग्य ब्रह्म ही है हिरण्यगर्भ नहीं क्योंकि 'शरीर में प्रविष्ट परात्पर पुरुषको देखता है' प्र० ५।५ इस वाक्य-शेष में दर्शन रूप कर्म के विषय पर ब्रह्म का ही कथन है ॥१३॥

दहराधिकरणम् ॥१४-२१॥

दहर उत्तरेभ्यः ॥१४॥

सूत्रार्थः—'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं...आकाशः' छां० ८।१।१। इत्यत्र दहराकाशो ब्रह्मैव न जीवो न च भूताकाशः। कुतः 'यावान्... एष आत्माऽपहतपाप्मा अजरः' छां० ८।१।१ इत्युत्तरेभ्यो वाक्यशेषगतेभ्यो हेतुभ्यः ॥१४॥

पदार्थः—दहर=ब्रह्म। उत्तरेभ्यः=उत्तर वाक्य-शेष से कहे हुए हेतुओं से ॥४॥

भाषार्थः—'इस शरीर में स्थित अल्प हृदय कमल के अन्दर जो हृदयाकाश है'। छां० ८।१।१ इस श्रुति में आया हुआ दहराकाश शब्द ब्रह्मवाचक है, जीव तथा भूताकाश वाचक नहीं क्योंकि 'यह आत्मा निष्पाप तथा अजर, अमर है'। छां० ८।१।१। इस श्रुति में अन्त में कहे गये निष्पाप, अजर, अमर आदि विशेषणों के कारण दहर शब्द ब्रह्मवाचक ही है। ये हेतु (विशेषण) ब्रह्म में ही घट सकते हैं, जीव तथा भूताकाश में नहीं ॥१४॥

गतिशब्दाभ्यां तथा हि दृष्टं लिङ्गञ्च ॥१५॥

सूत्रार्थः—'सर्वाः इमाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्तीति अस्मिन्दहराकाशवाक्य अहरहर्गच्छन्तीति गतिः, एतं ब्रह्मलोकमिति शब्दश्च ताभ्यां गतिशब्दाभ्यां दहराकाशो ब्रह्मपरः। तथाहि 'सता सौम्य तदा संपन्नो भवति' छां० ८।६। इति सुषुप्तौ जीवस्य ब्रह्मगमनं दृष्टम् श्रुत्यन्तरे 'एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोक इति ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मपरत्वम्। ब्रह्मलोकश्च दहरस्य परिग्रहे लिङ्गं प्रमाणमिति ॥१५॥

पदार्थः—गतिः=गमन। शब्दः=ब्रह्मलोक शब्द। ताभ्याम्=उन दोनों गति और शब्द से। तथा हि=वैसा ही। दृष्टम्=(दूसरी श्रुतियों में) देखा गया। च=और। लिङ्गम्=प्रमाण है ॥१५॥

भाषार्थः—'ये सब जीव सुषुप्तिकाल में ब्रह्म को प्राप्त होते हैं किन्तु अज्ञान से आवृत होने से उसे नहीं जानते'। छां० ।३।२। इस श्रुति में ब्रह्मलोक में गमन करना गति है। दहर के लिये ब्रह्म लोक (ब्रह्म) शब्द आया है। एवं गति और शब्द दोनों दहर को ब्रह्मवाचक सिद्ध करने में प्रमाण हैं। यहाँ ब्रह्मलोक शब्द ब्रह्मा के लोक का वाचक नहीं किन्तु ब्रह्मवाचक है। ऐसा ही 'जीव सुषुप्ति में ब्रह्म को प्राप्त होता है' इत्यादि अन्य श्रुतियों में भी देखा गया है ॥१५॥

धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ॥१६॥

सूत्रार्थः—'अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकनाम्' ८।८।४ इति धृतेर्विधारकत्वाच्च ब्रह्मैव दहराकाशः। अस्य विधारणलक्षणस्य महिम्नोऽस्मिन्ब्रह्मण्युपलब्धेः। श्रुत्यन्तरे तथाहि 'एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' बृ० ३।८।९ इति ॥३६॥

पदार्थः—धृतेः = धारणशक्ति होने से। च = भी। अस्य महिम्नः = इसकी महिमा की। अस्मिन् = इसमें। उपलब्धेः = प्राप्ति होने के कारण से ॥१६॥

भाषार्थः—'यह आत्मा सब लोकों का धारण करने वाला सेतु है' छां० ८।४।१ एवं सर्व विश्वधारक शक्ति की महिमा की उपलब्धि ब्रह्म में ही संभव होने से दहराकाश शब्द ब्रह्मवाचक है ॥१६॥

प्रसिद्धेश्च ॥१७॥

सूत्रार्थः—'इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते'। छां० १।९।१ इति ब्रह्मण्याकाशब्दस्य प्रसिद्धेश्च दहरो ब्रह्मैव ॥

पदार्थः—प्रसिद्धेः = प्रसिद्ध होने से। च = भी ॥१७॥

भावार्थः—'ये सब भूत आकाश से ही उत्पन्न होते हैं'। छां० ।८।४। इस प्रसिद्ध प्रमाण से भी दहराकाश ब्रह्म ही है ॥१७॥

इतरपरामर्शात्स इति चेन्नासम्भवात् ।। १८ ।।

सूत्रार्थः—'य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय ।' छां० ८।३।४। इत्येवं श्रुतौ सम्प्रसादशब्दादित जीवस्य परामर्शाज्जीव एव दहराकाश इतिचेन्न 'एष आत्मापहतपाप्मा' । छा० ८।१।५ इति ब्रह्मणोऽपहत-पाप्मत्वादिधर्माणां जीवेऽसम्भवात् ।। १८ ।।

पदार्थः—इतर=जीव का । परामर्शात्=विचार होने से । सः= जीव । इति चेत्=यदि ऐसा कहो तो । न=यह शङ्का उचित नहीं । असम्भवात्=असंभव होने से ।। २८ ।।

भावार्थः—'यह जीव इस शरीर से निकल कर' छां० । ८।३।४' इस श्रुति में जीव का विचार होने से जीव ही दहराकाश है, यदि ऐसी शङ्का हो तो यह उचित नहीं क्योंकि 'यह आत्मा पापशून्य है' । छां० ८।१।५ इस श्रुति में कहे हुए निष्पाप आदि धर्म जीव में संभव नहीं हो सकते ।। १८ ।।

उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ।।१९ ।।

सूत्रार्थः—'य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते' । छां० ८।७।४ इत्युत्तरात्प्र-जापतिवाक्याज्जीवेऽप्यपहतपापमत्वादिधर्मा अवगम्यन्तेऽतो जीव एव दहराकाशश्चेन्न । तु इति पूर्वपक्षनिरासार्थः । तत्राप्याविर्भूतस्वरूपस्य जीवस्य कथनात् । आविर्भूतस्वरूपं यस्येति जीवस्य ब्रह्मणश्चाभेदान्न जीवो दहराकाश इति ।। १९ ।।

पदार्थः—चेत्=यदि । उत्तरात्=उत्तर वाक्य से । तु=तो ऐसा नहीं । आविर्भूतस्वरूपः=स्वरूप का जिसने साक्षात्कार किया है ।। १९ ।।

भाषार्थः—'यह जो आँखों में पुरुष दीखता है' । छां० ८।७।४ इस का उत्तर प्रजापतिवाक्य से जीव में भी अमृत, अभय आदि धर्मों का कथन होने से जीव ही दहराकाश है । ऐसा कहना उचित नहीं है । क्योंकि यहां मुक्त जीव का कथन है । मुक्त जीव तथा ब्रह्म में अभेद होने से ब्रह्म ही दहराकाश है ।। १९ ।।

अन्यार्थश्च परामर्शः ।। २० ।।

सूत्रार्थः—'अथ य एष सम्प्रसादः' इति दहरवाक्यशेषे जीवपरामर्शो ब्रह्मप्रतिपादको न जीवप्रतिपादकः ।। २० ।।

पदार्थः—अन्यार्थ=जीव से अन्य ब्रह्म के लिये । परामर्शः=विचार । च=भी ।। २० ।।

भाषार्थः—'यह जो सम्प्रसाद है' इस दहरवाक्य में भी जीव का परामर्श ब्रह्मपरक है जीवपरक नहीं ।। २० ।।

अल्पश्रुतेरितिचेत्तदुक्तम् ।। २१ ।।

सूत्रार्थः—'दहरोस्मिन्नन्तराकाशः' इत्याकाशस्याल्पत्वं ब्रह्मणि न घटत इति चेत्तदुक्त समाधानं पूर्वम् १।२।७ सूत्रे ।। २० ।।

पदार्थः—चेत्=यदि । अल्पश्रुतेः=श्रुति में अल्प कथन होने से। इति=ऐसा (जीव ही दहराकाश है) । तत्=उसका समाधान। उक्तम्=कह दिया गया ।। २१ ।।

भाषार्थः—'इस हृदय में अल्प अन्तकराश है' इस श्रुति में दहराकाश को अल्प (छोटा) कहा है। अतः जीव ही दहराकाश है ब्रह्म नहीं । इस शंका का समाधान सू० १।२।७ में कर दिया गया है ।। २१ ।।

अनुकृत्यधिकरणम् ।। २२-२३ ।।

अनुकृतेस्तस्य च ।। २२ ।।

सूत्रार्थः—'तमेव मान्तमनुभाति सर्वम्' मुं० २।२।१० इत्यनुकृतेः तस्य भासा सर्वमिदं विभातीति वचनद्वयस्य ब्रह्मपरिग्रहे निदर्शनाद् ब्रह्मण एव सर्वभासकत्वम् न तेजो विशेषस्य ।। २२ ।।

पदार्थः—अनुकृतेः=अनुकरण करने से । च=और । तस्य=तस्य भासा इस वचन से ।। २२ ।।

भाषार्थः—'उसी के प्रकाश के पीछे सब सूर्यादिक प्रकाशित होते हैं'। मुं० २।२।१० इस अनुकृति से और उसके प्रकाश से 'सारा जगत्

प्रकाशित होता है।' इस शब्द से अर्थात् मु० उ० की २।२।१० इस एक ही श्रुति के इन दो वचनों से सब जगत् का प्रकाशक ब्रह्म ही है सूर्यादिक नहीं, यही सिद्ध होता है। श्रुतिमें अनुभाति शब्द सूत्रस्थ अनुकृति शब्द का बोधक है॥ २२॥

अपि च स्मर्यंते॥ २३॥

सूत्रार्थः—अपि च न तद्भासयते सूर्यः तथा यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलमिति गीतास्मृत्यापि स्मर्यंते ब्रह्मणो जगत्प्रकाशकत्वम्॥ २३॥

पदार्थः—च=तथा। अपि=भी। स्मर्यंते=गीतास्मृति ने। ऐसा ही प्रतिपादन किया है॥ २३॥

भाषार्थः—ब्रह्म को सूर्यादिक कोई भी प्रकाशित नहीं करते। ब्रह्म के प्रकाश से ही सूर्यादिक सब प्रकाशित होते हैं। ऐसा गीता स्मृति में भी कहा गया है।

प्रमिताधिकरणम्॥ २४-२५॥

शब्दादेव प्रमितः॥ २४॥

सूत्रार्थः—'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति' तथा—अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः…ईशानो भूतभव्यस्येति। कठ० २।४।१३ एवमत्राङ्गुष्ठपरिमाणकत्वेन प्रमिता पुरुषो ब्रह्मैव, कुतः? ईशानो भूतभव्येति शब्दात्॥ २४॥

पदार्थः—शब्दात्=ईशान शब्द से। एव=ही। प्रमितः=प्रमाणयुक्त

भाषार्थः—'अंगूठे के बराबर पुरुष शरीर के मध्य हृदय में स्थित है। जो सारे संसार का शासन करता है'। कठ० २।४।१३ इस श्रुति में अँगूठे के बराबर पुरुष को संसार का शासनकर्ता कहा है। अतः अङ्गुष्ठमात्र पुरुष परमात्मा ही है, जीव नहीं, क्योंकि जीव संसार का शासक नहीं हो सकता॥ २४॥

हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—शास्त्रे मनुष्याधिकारत्वात्तेषामङ्गुष्ठमात्रनियतप्रमाणं हृद्युक्तम् । वस्तुतः परमात्मा अनन्तः ॥ २५ ॥

पदार्थः—तु=अङ्गुष्ठमात्र तो । हृदि=हृदय में । अपेक्षया=अपेक्षा से । मनुष्याधिकारत्वात्=ध्यानादि में मनुष्य का ही अधिकार होने से कहा गया है ॥ २५ ॥

भाषार्थः—शास्त्रों में मनुष्यों का शास्त्रानुकूल ध्यानादि साधनों में अधिकार है । ध्यानादि हृदय में ही होते हैं और मनुष्य के हृदय का परिमाण अङ्गुष्ठमात्र (१० अंगुल) ही है । अतएव अनन्त आत्मा को अङ्गुष्ठमात्र कहा है ॥ २५ ॥

देवताधिकरणम् ॥ २६–३३ ॥

तदुपर्यपि वादरायणः सम्भवात् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—मनुष्याणामुपरिष्ठाद् ये देवास्तेषामपि ब्रह्मविद्यायामधिकारोस्ति मोक्षेच्छायाः सम्भवादिति वादरायणो मन्यते ॥ २६ ॥

पदार्थः—वादरायणः=वादरायणाचार्य । तद्=मनुष्यों के । उपरि=ऊपर (देवताओं का) । अपि=भी । सम्भवात्=सामर्थ्य तथा मोक्ष की इच्छा से सम्भव होने से ॥ २६ ॥

भाषार्थः—मनुष्यों के ऊपर जो देवता हैं उनका भी ब्रह्मविद्या में अधिकार है ऐसा वादरायण आचार्य मानते हैं, क्योंकि उनमें भी मोक्षेच्छापूर्वक ज्ञान का होना संभव है ॥ २६ ॥

विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—देवानां विग्रहवत्वस्याङ्गीकारे एकस्य शरीरस्यानेकत्र युगपत्सन्निधानासंभवात्कर्मणि देवताया उपकारत्वविरोधः प्रसज्येतेति चेन्नैष दोष एकस्य देवस्यानेकशरीराणां युगपत्प्राप्तेर्दर्शनात् । तथा हि 'महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाः' । बृ० ३।९।१।२

पदार्थः—चेत्=यदि कहो। कर्मणि=कर्म में। विरोधः=विरोध होगा। इति=ऐसा कहना। न=उचित नहीं। अनेक प्रतिपत्तेः=अनेक शरीरों की प्राप्ति। दर्शनात्=शास्त्रों में देखे जाने से ॥ २७ ॥

भाषार्थः—शरीर के बिना ज्ञान के विवेकादि साधन चतुष्टय कैसे सिद्ध होंगे। यदि देवताओं को शरीरधारी मानो तो एक शरीर से एक साथ अनेक यज्ञों में न पहुँच सकने से यज्ञादि कर्मों में विरोध होगा अर्थात् यज्ञों की पूर्ति न हो सकेगी, यदि ऐसी शंका हो तो यह शंका ठीक नहीं क्योंकि देवताओं का भी योगियों की तरह अनेक शरीरों को प्राप्त होना शास्त्रों में देखा गया है। अतः कर्म में विरोध नहीं ॥ २७ ॥

शब्द इतिचेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—ननु मास्तु कर्मणि विरोधः तथापि शब्दे वेदवाक्ये विरोधः स्यादेव। अनित्यशरीरवद्देवतायां नित्यवेदार्थत्वाङ्गीकारे शब्दस्यार्थेन नित्यसंबन्धाभावे नित्यानित्यसंयोगविरोधादिति चेन्नायमप्यस्ति विरोधः। कस्मात्? अतः प्रभवात् नित्याकृतिवाचकाद्वेदराशेरेव देवादिप्रपंचस्य प्रभवात्। वेदशब्दाज्जगत्प्रभवत्वं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां दर्शितम्। प्रामाण्यं प्रत्यनपेक्षात्वात्प्रत्यक्षं श्रुतिः। प्रामाण्यं प्रति सापेक्षत्वादनुमानं स्मृतिः। एते श्रुतिस्मृती शब्दपूर्वां सृष्टिं दर्शयतः—यथा हि—'एते इति वै प्रजापतिर्देवानसृजतासृग्रमिति मनुष्यानिन्दव इति पितॄंस्तिरः पवित्रमिति ग्रहानाशव इति स्तोत्रं विश्वानीति शास्त्रमभिसौभगेत्यन्याः प्रजाः, इति श्रुतिः। स्मृतिश्चतथाहि अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ॥

आदौ वेदत्रयी दिव्या यतः सर्वा प्रवृत्तयः। म० भा० शां० प० ॥ २२३।२४ ॥

नामरूपे च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम् ॥

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥ मनु० १।२१।२८ ॥

पदार्थः—शब्दे=वेदवाक्य में। इति=ऐसी शंका। चेत्=यदि हो तो। न=उचित नहीं, क्योंकि। अतः=वेद से ही। प्रभवात्=देवादि-

जगत् की उत्पत्ति होने से। प्रत्यक्षम्=श्रुति। अनुमानम्=स्मृति ॥ २८ ॥

भावार्थः—कर्म में विरोध मत हो, वेदवाक्य में तो विरोध होगा क्योंकि शरीरधारी देवता जन्ममृत्युग्रस्त होने से अनित्य माने जायेंगे और वेद नित्य है। नित्य वेद से उत्पन्न देवादि सृष्टि भी नित्य होनी चाहिये। नित्य वेद का नित्य अर्थ (देवादिसृष्टि) के साथ नित्यसम्बन्ध है। ऐसा वेद का प्रमाण है। उसका विरोध होगा क्योंकि नित्यानित्य का सम्बन्ध असम्भव है। वादी की ऐसी शंका उचित नहीं क्योंकि वैदिक शब्द से ही जगत की उत्पत्ति होती है। यदि यहां भी शंका हो कि-'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्र में जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से स्पष्ट है। तब तुम वेद से जगत् की उत्पत्ति कैसे कहते हो? इसका समाधान यह है कि शब्दों का सम्बन्ध जातियों के साथ है व्यक्तियों के साथ नहीं। जैसे गौ शब्द का अर्थ शरीरधारी गौ में रहनेवाला गोत्व जाति है। गौ की अनित्य व्यक्ति (शरीर) का नाश होने पर भी नित्य गोत्व (जाति) का नाश नहीं होता। इसी प्रकार देव आदि व्यक्तियों की जन्ममृत्यु मानने पर भी जाति के नित्य होने से देवताओं को शरीरधारी मानने पर भी कोई विरोध नहीं। वेद से जगत् की उत्पत्ति वेद को ब्रह्म के समान उपादान कारण मानकर नहीं कही गयी किन्तु निमित्त कारण मानकर कही गयी है। इसमें प्रत्यक्ष (श्रुति) और अनुमान (स्मृति) दोनों प्रमाण हैं। यहां श्रुति को अपनी सिद्धि के लिये अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं क्योंकि वह स्वयं प्रत्यक्ष प्रमाण है तथा स्मृति सापेक्ष है। उसको अपनी सिद्धि के लिये श्रुति की अपेक्षा होने से वह अनुमान प्रमाण है। सृष्टि शब्द (वेद) पूर्वक है। यथा—प्रजापति ने 'एते' इस पद को स्मरण करके देवसृष्टि, 'असुग्रम' इस पद से मनुष्यों की, इन्दव इस पद से पितरों की, 'तिरः पवित्रम्' इस पद से ग्रहों की, 'आशव' इससे स्तोत्रों की 'विश्वानि' पद से शास्त्रों की और 'अभिसौभगा' इस पद से अन्य प्रजाओं की सृष्टि की। पहिले परमात्मा ने वेद की रचना कर पीछे वेदानुसार सृष्टि रची।

वेद (शब्द) से सृष्टि रची इस कथन का यही अभिप्राय है। यही बात स्मृतियों से भी सिद्ध है। यथा—'स्वयंभू ने पहिले वेदों की रचना की जिससे अन्य सृष्टियां हुईं'। महेश्वर ने नामरूपात्मक सृष्टि की रचना वेद से की। मनु० ॥ २८ ॥

अतएव च नित्यत्वम् ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—वेदशब्दाज्जगत्प्रभवत्वमत एव वेदस्य नित्यत्वं तदेवाह व्यासः—'युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान् सेतिहासान्महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥ २९ ॥

पदार्थः—अतएव=इसीलिये। नित्यत्वम्=वेद नित्य हैं।

भाषार्थः—वेदादि जगत् की उत्पत्ति वेद से होने के कारण ही वेदों का नित्यत्व सिद्ध है। 'प्रलयकाल में लुप्त हुए इतिहास सहित वेदों को ब्रह्मा जी की आज्ञा से तप द्वारा महर्षियों ने प्राप्त किया' यह व्यास-स्मृति वेदों के नित्यत्व में प्रमाण है ॥ २९ ॥

समाननामरूपत्वाच्चावृतावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयदितिदर्शनात्

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ॥
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥

इति स्मृतेश्चावृतौ पुनः-पुनः महाप्रलये महासृष्टौ चापि जगतः समाननामरूपत्वादेव शब्दार्थसम्बन्धान्नित्यत्वरूपविरोधो नास्ति ॥ ३० ॥

पदार्थः—आवृतौ=बारबार होने वाली महाप्रलय और महासृष्टि में। अपि=भी। समाननामरूपत्वात्=समान नामरूप होने से। अविरोधः=विरोध नहीं। दर्शनात्=श्रुति से। च=और। स्मृतेः=स्मृतियों से भी यह सिद्ध है ॥ ३० ॥

भाषार्थ—'विधाता ने सूर्य चन्द्रादि की सृष्टि पूर्वकल्पानुसार ही की' इस श्रुति से और 'ऋषियों के जो नाम और वेदों की जो शक्ति पूर्व कल्प में थी प्रलयान्त में उनके उत्पन्न होने पर वही नाम और वही शक्ति उन्हें दी' इस स्मृति से बार-बार महाप्रलय तथा महासृष्टि में नाम रूपों की समानता होने से शब्द और अर्थ के अनित्यतारूप विरोध भी नहीं हैं ॥ ३० ॥

मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—उपास्योपासकत्वासम्भवादन्मध्वादिविधायां सूर्यादिदेवानामधिकारासम्भवाद् विधात्वाविशेषेण ब्रह्मविद्यायामपितेषामनधिकारं जैमिनिराचार्योमन्यते ॥३१॥

पदार्थः—जैमिनिः=जैमिनि आचार्य । मध्वादिषु=मधु आदि विधाओं में । असम्भवात्=(देवादि का अधिकार) असम्भव होने से । अनधिकारं=(ब्रह्म विद्या में देवादि का) अधिकार नहीं मानते ॥३१॥

भाषार्थः—जैमिनि आचार्य मधु आदि विधाओं में देवता आदि का अधिकार असम्भव होने से ब्रह्म विद्या में भी देवताओं का अधिकार नहीं मानते । क्योंकि (आदित्यो देवमधुः छां० ३।१।१) (सूर्य देवताओं का मधु है ।) अर्थात् मधुवत् आनन्द देने वाला है यहां मधु के अभ्यास (भावना) से मनुष्य सूर्योपासना कर सकते हैं किन्तु सूर्य अपनी उपासना आप नहीं कर सकता । अतः उपास्य और उपासक में भेद न होने से देवताओं का मधुविद्या में अधिकार संभव नहीं । मधुविद्या और ब्रह्मविद्या एक सी होने से ब्रह्मविद्या में भी देवताओं का अधिकार नहीं है यह जैमिन का मत है ॥३१॥

ज्योतिषि भावाच्च ॥३२॥

सूत्रार्थः—सूर्यचन्द्रादिशब्दानां भ्रमणवत्तया परिदृश्यमानज्योतिर्मण्डल

एव प्रयोगसद्भावान्मण्डलस्य मृत् पिराडवदचेतनत्वेन विग्रहाभावादग्नि-वाय्वादीनामपि तत्तुल्यत्वेन सामर्थ्याच्चेतनधर्माभावादचेतनत्वाद्देवादीनां ब्रह्मविद्यायां नाधिकारः ॥३२॥

पदार्थः—ज्योतिषि=ज्योतिर्मण्डल में । भावात्=प्रयोग होने से । च=भी ॥३२॥

भाषार्थः—ज्योतिर्मण्डल में प्रयोग होने से अर्थात् सूर्य चन्द्र आदि देवताओं का घूमते हुए दिखाई देने से ज्योतिर्मण्डल में उनका प्रयोग होता है । पिण्डाकार ज्योतिर्मण्डल मिट्टी के पिण्डवत् जड़ होने से वे देवता शरीर धारी नहीं । अतः अशरीरी देवताओं का ब्रह्मविद्या में अधिकार नहीं ॥३२॥

भावन्तु बादरायणोऽस्ति हि ॥३३॥

सूत्रार्थः—तु शब्दः पूर्वपक्षंव्यावर्तयति । बादरायणो देवादीनां ब्रह्मविद्यायामधिकारस्यभावं मन्यते ॥३३॥

पदार्थः—वादरायणः=बादरायण आचार्य । भावम्=अधिकार होने को । हि=क्योंकि । अस्ति=अधिकार का कथन श्रुति में है । तु=पूर्व पक्ष का निवर्तक ॥३३॥

भाषार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष का निवर्तक है । वादरायण आचार्य मध्वादि विद्याओं में देवताओं का अधिकार न होने पर भी शुद्ध ब्रह्मविद्या में देवताओं का अधिकार मानते हैं । इस बात को श्रुति भी मानती है । जैसे—(यो-यो देवानां प्रत्यबुध्यत सएव तदभवत् । वृ० १।४।१०) अर्थात् (जिस-जिस देवता ने उस ब्रह्म को जाना वह ब्रह्म ही हो गया ॥१।४।१०) तथा अशरीरी होने पर भी देवताओं में शरीर धारण करने की शक्ति है । इस में स्मृति प्रमाण है । जैसे—(आदित्यः पुरुषोभूत्वा कुन्तीमुपजगामह । म० भा०) अर्थात् सूर्य मनुष्य शरीर से कुन्ती के पास गया ॥३३॥

अपशूद्राधिकरणम् ॥३४—३८॥

शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यतेहि ॥३४॥

सूत्रार्थः—न शूद्रस्य ब्रह्मविद्यायांमधिकारः । अस्य क्षत्रियस्य जानश्रुतेर्हंसवाक्यादात्मनोऽनादरश्रवणाद् या शुगुत्पन्ना सा शूद्रशब्देन शूच्य ते हि । तस्याः शुचोः जानश्रुतिं प्रत्याद्रवणादामनादित्यर्थः ।

पदार्थः—अस्य=इस जानश्रुति राजा को । तत्=हंस के मुख से अनादर श्रवणात्=अपना अनादर सुनने से । शुक्=जो शोक उत्पन्न हुआ । तत्=उस शोक के । आद्रवाणात्=आने से । सूच्यते= शूद्र शब्द से सूचित किया गया ।

भाषार्थः—जैसे देवता तथा द्विजातियों का ब्रह्मविद्या में अधिकार है वैसा शूद्रों का भी है या नहीं ? तहां सूत्रकार कहते हैं नहीं है। तब जानश्रुति को रैक्वा ने अरे शूद्र करके पुकारा और ब्रह्मविद्या का उपदेश भी दिया । इस वचन से ब्रह्मविद्या में शूद्र का भी अधिकार है । इसका निराकरण यह है कि तहाँ कहते हैं—जानश्रुति के दानादि शुभ कर्मों से प्रसन्न होकर ऋषियों ने हंसरूप से कहा अरे जानश्रुति का तेज स्वर्ग तक फैला हुआ है । उनमें एक हंस वोला इस अज्ञानी राजा से रैंक्व ऋषि का तेज अधिक है। ऋषियों का अभिप्राय था कि जानश्रुति रैक्व से ज्ञान प्राप्त कर अमर हो जाय और ऐसा ही हुआ । जानश्रुति को हंस के मुख से अपना अनादर सुनकर शोक हुआ । इस शोक को लक्ष्य करके उसे शूद्र शब्द से सूचित किया गया न कि जानश्रुति को शूद्र मान कर ॥३४॥

क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्रचैत्ररथेन लिङ्गात् ॥३५॥

सूत्रार्थः—जानश्रुतिर्नमुख्यशूद्रः । कुतः क्षत्रियत्वगतेः, सापि कुतः? उत्तरत्रसंवर्गविद्यावाक्यशेषे चैत्ररथेन प्रसिद्धक्षत्रियेणाभिप्रतारित नामकेन सह समभिव्याहाराद्घिनल्लिङ्गात् । सजातीयानामेव प्रायः सहचारो भवति ॥३५॥

पदार्थः—क्षत्रियत्वगतेः=क्षत्रियत्व का ज्ञान होने पर । उत्तरत्र= संवर्गविद्य के वाक्य शेष में । चैत्ररथेन=चैत्ररथ के साथ कथन रूप लिङ्गात्=हेतु से ॥३५॥

भाषार्थः—(अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं सूदेन परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी विभिक्षे ।।छां० ४।३।५।।) (कपिगोत्रीय काप्येय शौनक ब्राह्मण तथा कक्षिसेन का पुत्र काक्षसेनी अभिप्रतारी नामक क्षत्रिय ये दोनों जब जानश्रुति के घर में भोजन करने बैठे और पाचक भोजन परोस रहा था उसी समय संवर्गविद्यावेत्ता एक ब्रह्मचारी आकर भिक्षा मांगने लगा । छां० ४।३।५) संवर्ग-विद्या के इस अन्तिमवाक्य से सिद्ध है कि जानश्रुति क्षत्रिय था । यदि जानश्रुति शूद्र होता तो वे उसके हाथ का बना अन्न न खाते । समान जातियों में ही खानपानादि व्यवहार होता है ॥ ५॥

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥३६॥

सूत्रार्थः—न शूद्रस्याधिकारोविद्यायाम् । कास्माद् ? विद्याप्रदेशे-षूपनयनसंस्कारपरामर्शात् । ननु शूद्रस्याप्युपनयनं कल्प्यतामित्यत आह-उपनयनादिसंस्काराभावाभिलापाच्च तथा हि—(तान्हानुपनीयैवैतदुवाच । छां० ५।११।७) न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति मनु ॥३६॥

पदार्थः—संस्कारपरामर्शात्=उपनयन संस्कार का विधान होने से । च=और । तत्=शूद्र के लिये । अभाव=(संस्कार के) अभाव का । अभिलापात्=कथन होने से ॥३६॥

भाषार्थः—वेदाध्ययनार्थ उपनयन् संस्कार का विधान है । और शूद्र के लिये उपनयनादि संस्कारों के अभाव का शास्त्रों में कथन होने से शूद्र का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं है । (शूद्र संस्कार के योग्य नहीं मनु) (उपनयन करके उपदेश दिया श० ब्रा०) इत्यादि श्रुति स्मृतियां इस में प्रमाण हैं ॥३६॥

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥३७॥

सूत्रार्थः—सत्यवचनेन तस्य सत्यकामस्य शूद्रत्वस्याभावनिर्धारणे विद्योपदेशे प्रवृत्तिदर्शनाद्गौतमस्य ॥३७॥

पदार्थः—तत्=शूद्रत्व का। अभाव निर्धारणे=अभाव निश्चित होने पर। च=भी। प्रवृत्तेः=प्रबृत्त होने से।

भाषार्थः—गौतम ने सत्यकाम से पूछा तेरा गोत्र क्या है? सत्यकाम ने कहा मैं अपना गोत्र नहीं जानता हूँ। मैं इतना जानता हूँ कि मेरा नाम सत्यकाम और मेरी माता का नाम जाबाला है। गौतम ने कहा तेरे सत्य भाषण से सिद्ध है कि तू ब्राह्मण है। इस प्रकार उसके शूद्रत्व का अभाव तथा ब्राह्मणत्व का निश्चय होने पर गौतम विद्योपदेश के लिये प्रवृत्त हुए। इससे भी सिद्ध हुआ कि वेदविद्या में शूद्र का अधिकार नहीं है ॥३७॥

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥३८॥

सूत्रार्थः—(अथास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपंजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणाम्)। (न शूद्राय मतिदद्यात् मनु ।४।८०) इत्यादिना श्रवणाध्ययनार्थं प्रतिषेधान्न वेदेशूद्राधिकार इति स्थितम् ॥३८॥

पदार्थः—श्रवणाध्ययनार्थ=वेद का श्रवण, अध्ययन तथा अर्थानुसन्धान का। प्रतिषेधात्=निषध होने से। च=और। स्मृतेः=स्मृतियों से भी ॥३०॥

भाषार्थः—(ब्राह्मण शूद्र को ज्ञान न दे मनु ४।८०) इत्यादि स्मृतियों से भी शूद्र को वेद के श्रवण, पठन, अर्थज्ञान तथा अनुष्ठान का निषेध है ॥३८॥

कम्पनाधिकरणम्।

कम्पनात् ॥३९॥

सूत्रार्थः—(यदिदं किञ्चजगत्सर्वं प्राणएजति निसृतम् कठ० ।२।३।२)

इति श्रुतौ प्राणशब्दो ब्रह्मपरः । कुतः ? सर्वंजगत्कम्पकत्वादत्रैजयितृत्वं ब्रह्मण एवोपपद्यते, न वायुमात्रस्य ॥ ३९ ॥

पदार्थः—कम्पनात् = चेष्टा करने से ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—यह सारा जगत् प्राण से उत्पन्न होता है और प्राण से ही चेष्टा करता है; अतः प्राण शब्द ब्रह्मवाचक है, वायुवाचक नहीं ॥ ३९ ॥

ज्योतिरधिकरणम् ॥ ४० ॥

ज्योतिर्दर्शनात् ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—'एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ।' (छां० ८ । १२ । ३) अत्र ज्योतिःशब्दो ब्रह्मपरः । कुतः ? दर्शनात् । य आत्माऽपहतपाप्मेत्युपक्रमालोचनया ब्रह्मण एव प्रतिपाद्यतयानुवृत्तिदर्शनात् ॥ ४० ॥

पदार्थः—ज्योतिः = ब्रह्म । दर्शनात् = श्रुतियों में दीखने से ॥ ४० ॥

भाषार्थः—'यह जीव इस शरीर से उठकर परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने रूप को प्राप्त होता है ।' इस श्रुति में ज्योतिशब्द ब्रह्मवाचक है । क्योंकि 'यह आत्मा निष्पाप है' इस क्रमवाक्य के विचार से ज्योतिशब्द ब्रह्मपरक ही देखा जाता है ॥ ४० ॥

अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाधिकरणम् ॥ ४१ ॥

आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—'आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता ।' (छां० ८ । १४ । १) अत्राकाशशब्दो ब्रह्मपरः । कस्मात् ? 'ते यदन्तरा तद्ब्रह्म ।' (छां० ८ । १४ । १) इति नामरूपाभ्यामर्थान्तिर्भूतं यद्ब्रह्म तस्य व्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—आकाशः = परमात्मा । अर्थान्तरत्वादि = नाम-रूप से भिन्नार्थवाचक । व्यपदेशात् = कथन होने से ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—'आकाश ही नाम-रूप का निर्माणकर्ता है ।' 'वे दोनों जिसके भीतर हैं वह ब्रह्म है' इत्यादि श्रुतियों में नाम-रूपात्मक जगत् से भिन्नार्थवाची होने से आकाश शब्द ब्रह्मवाचक है ॥ ४१ ॥

सुषुप्त्युत्क्रान्त्यधिकरणम् ॥ ४२-४३ ॥

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—'कतम आत्मेति योऽयं विज्ञानमयः ।' (बृ० ४ । ३ । ७) इत्या ब्रह्मभेदप्रतिपादनपरोऽयं वाक्यसन्दर्भो न जीवानुवादकः । कस्मात् ? सुषुप्त्युत्क्रा न्त्योरवस्थयोः शारीराद्भेदेनेश्वरस्य व्यपदेशात् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—सुषुप्ति-उत्क्रान्त्योः = सुषुप्ति-अवस्था और मृत्यु-अवस्था का भेदेन = भेदपूर्वक कथन होने से ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—'यह जो प्राणों से भिन्न विज्ञानमय हृदय के अन्दर स्व ज्योति पुरुष है वह आत्मा है ।' इत्यादि श्रुतियों से प्रतिपादित पुरुष परमात्म ही है । क्योंकि इस श्रुति में जीव की सुषुप्ति तथा मृत्यु-अवस्था का वर्ण करके जीव से ईश्वर का भेद कथन किया है ॥ ४२ ॥

पत्यादिशब्देभ्यः ॥ ४३ ॥

सूत्रार्थः—'सर्वस्य वशी, सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः' (बृ० ४ । ४ । २२ इत्यादिशब्देभ्योऽप्यसंसारीस्वरूपेश्वरस्य व्यपदेशोऽत्रगम्यते ॥ ४३ ॥

पदार्थः—पत्यादिशब्देभ्यः = पति, परमपति, अधिपति इत्यादि शब्दों से।

भाषार्थः—'सबको वश में करनेवाला, सबका नियन्ता और सबक अधिपति' इत्यादि शब्दों से आकाश शब्द ब्रह्मवाचक होने के कारण असंसारी परमेश्वर का ही यहाँ कथन है, ऐसा सिद्ध होता है ॥ ४३ ॥

इतिश्रिवेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

अथ वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये
चतुर्थः पादः

आनुमानिकाधिकरणम् ॥ १–७ ॥

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्त-गृहीतेर्दर्शयति च ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—ईक्षतेर्नाशब्दमिति यदुक्तं प्रधानस्याशब्दत्वं तदसिद्धम् एकेषां शाखिनामनुमानगम्यं प्रधानमप्यव्यक्तशब्देन श्रूयमाणत्वात्। यथा हि काठके पठ्यते – 'महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः' इति चेन्न। कुतः? शरीरं रथमेव त्वित्यस्मिन् पूर्ववाक्ये रथरूपेण विन्यस्तस्य कल्पितस्य शरीरस्याव्यक्तशब्देन ग्रहणात्। तथा च दर्शयति—'अव्यक्तात्पुरुषः परः' (कठ०) ॥ १ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो। आनुमानिकं=अनुमानकल्पित प्रधान (प्रकृति)। अपि = भी। एकेषां = कोई शाखावाले (मानते हैं)। इति = ऐसा। न = उचित नहीं। शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेः=रथरूपसे कल्पित शरीर-रूपक के वर्णन का ग्रहण होने से। दर्शयति च = और ऐसा ही श्रुति भी दर्शाती है ॥ १ ॥

भाषार्थः—'महत्तत्त्व से परे अव्यक्त है।' (कठ०)—इस श्रुति के बल से किसी शाखावाले अव्यक्त शब्द से प्रधान का ग्रहण करते हैं। अतः प्रधान को अशब्द कहना उचित नहीं। इस पूर्वपक्षका खण्डनात्मक उत्तर सिद्धान्ती इस प्रकार देता है कि यह तुम्हारा कथन सत्य नहीं; क्योंकि यहाँ कठश्रुति में रथरूप से कल्पित शरीर को अव्यक्त शब्द से ग्रहण किया है, सांख्यकल्पित प्रधान को नहीं। अतः प्रधान अशब्द है ॥ १ ॥

सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—कथं स्थूलशरीरमव्यक्तशब्देनोच्यते ? तत्राह—सूक्ष्मशरीरं लिङ्गशरीरमव्यक्तशब्देनोच्यते अव्यक्तशब्दस्यार्हत्वात्। तुशब्दः पूर्वपक्ष-व्यावृत्त्यर्थः ॥ २ ॥

पदार्थः--तु = यह शब्द पूर्वपक्ष की निवृत्ति के लिये है। सूक्ष्मं = सूक्ष्मशरीर को। तत् = उस (अव्यक्त शब्द) के। अर्हत्वात् = योग्य होने से ॥ २॥

भाषार्थः—स्थूलशरीर को अव्यक्त कैसे कहा ? इसका उत्तर यह है कि यहाँ सूक्ष्मशरीर को अव्यक्त कहा है न कि स्थूलशरीर को। क्योंकि स्थूलशरीर की पूर्वावस्था सूक्ष्म (अव्यक्त) है। अतः सूक्ष्मशरीर अव्यक्त कहने योग्य है ॥ २ ॥

तदधीनत्वादर्थवत् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—ननु भूतसूक्ष्मात्मकाव्यक्ताङ्गीकारे प्रधानकारणवादसिद्धिः स्यात् सांख्यैस्तस्यैव प्रधानत्वस्याङ्गीकारादिति चेन्न। कुतः ? जगतः प्रागवस्थायाः ईश्वराधीनत्वादर्थवती जगतोऽव्यक्ता पूर्वावस्था ॥ ३ ॥

पदार्थः—तत् = जगत् की पूर्वावस्था की। अधीनत्वात् = ईश्वराधीन होने से। अर्थवत् = वह सार्थक है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—यदि हम जगत् की पूर्वावस्था अव्यक्तमाया को स्वतंत्र जगत् का कारण मानें, तब तो प्रधानकारणवाद का प्रसंग हो। किन्तु हम प्रकृति अर्थात् माया को ईश्वराधीन रहनेवाली उसी ईश्वर की शक्ति मानते हैं। शक्ति शक्तिमान् से अभिन्न होने के कारण माया अर्थवती अर्थात् सार्थक है ॥ ३ ॥

ज्ञेयत्वावचनाच्च ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—गुणपुरुषान्तरज्ञानात्कैवल्यमित्यत्र सांख्यैर्यत् प्रधानस्य ज्ञेयत्वं स्मर्यते तन्न युक्तम्। कुतः ? 'अव्यक्तात्पुरुषः परः' इत्यस्मिन् वाक्ये प्रधानस्य ज्ञेयत्वाप्रतिपादनात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—ज्ञेयत्वावचनात् = श्रुतियों ने प्रधान को ज्ञेय नहीं माना, इससे। च = भी ॥ ४॥

भाषार्थः—'गुणों की साम्यावस्थारूप प्रकृति और पुरुष के भेद (पार्थक्य) ज्ञान से कैवल्य मोक्ष होता है।' ऐसा सांख्यवादी मानते हैं। प्रधान (प्रकृति) को ज्ञेय माने बिना पुरुष का भेद-ज्ञान सम्भव नहीं। इसी से प्रधान ज्ञेय है, यह सांख्यवादियों का कथन ठीक नहीं। क्योंकि 'अव्यक्त से परे पुरुष' इस श्रुति में प्रधान को ज्ञेय नहीं माना। अतः अव्यक्त शब्द से प्रधान का ग्रहण नहीं ॥ ४ ॥

वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—'अशब्दमस्पर्शं......महतः परम् ।' (कठ० १ । ३ । १५) इत्यत्र श्रुतिः प्रधानस्य ज्ञेयत्वं वदतोति चेन्न । 'पुरुषान्न परं किञ्चित्' इतिप्रकरणात् प्राज्ञात्मा ह्यत्र निर्दिष्टो न तु प्रधानम् ॥ ५ ॥

पदार्थः-चेत् = यदि कहो कि । वदति = श्रुति प्रधान को कहती है । इति न = ऐसा नहीं । हि = क्योंकि । प्रकरणात् = प्राज्ञ का प्रकरण होने से ॥ ५ ॥

भाषार्थः—'वह अशब्द, अस्पर्शादि है तथा महत्तत्त्व से परे है।' (कठ० १ । ३ । १५) इस श्रुति में भी जैसा सांख्यवादियों ने शब्दादि से रहित और महत्तत्त्व से परे प्रधान का निरूपण किया है, वैसा ही निरूपण होने से यहाँ प्रधान ही ज्ञेय रूप से निर्दिष्ट है। यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं । क्योंकि यहाँ प्राज्ञ का प्रकरण होने से प्राज्ञ आत्मा हो ज्ञेय है ॥ ५ ॥

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः-अत्र कठश्रुतिषु त्रयाणामग्निजीवपरमात्मनां चैव प्रश्नः उपन्यासः प्रतिवचनं चोपलभ्यते नात्रानुमानिकनिरूपणावकाशः ॥ ६ ॥

पदार्थः—त्रयाणाम् = अग्नि, जीव, ब्रह्म-इन तीनों का । एव = ही । प्रश्नः= प्रश्न किया है । एवं च = और इसी प्रकार । उपन्यासः = प्रत्युत्तर भी दिया गया है ॥ ६ ॥

भाषार्थः-कठोपनिषद् में नचिकेताने अग्नि, जीव और ब्रह्म को जानने के लिये प्रश्न किया और यमराज ने तीनों का ही विस्तार से निरूपण किया है। अतः चौथे प्रधानविषयक प्रश्न तथा उत्तर को यहाँ स्थान नहीं ।

अग्निविषयक प्रश्न-'स त्वं अग्निमित्यादि' (१ । १ । १३) अर्थ-हे यम ! तुम स्वर्गकी प्राप्ति के साधन अग्निविद्या को जानते हो। उसे मुझ श्रद्धालु शिष्य को सुनाओ ।

जीवविषयक प्रश्न—'ये यं प्रेते०' इत्यादि ।

अर्थ—मरने पर जीव की क्या दशा होती है ?

ब्रह्मविषयक प्रश्न—'अन्यत्र धर्मात्.........यत्पश्यसि तद्वद' । अर्थ-धर्म-अधर्मसे अन्य, कार्य-कारण से अन्य तथा त्रिकालातीत तत्त्व को जैसा देखा वैसा कहो ॥ ६ ॥

महद्वच्च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—यथा सांख्योक्तो महच्छब्दो बुद्ध्याख्ये द्वितीयतत्त्वे प्रयुक्तोऽपि 'बुद्धेरात्मा महान्परः' इत्यादिवचनेन तथा वैदिके प्रयुक्तः। तथाऽव्यक्तशब्दोऽपि न वैदिके प्रयोगे प्रधानाभिधायकः। अतः प्रधानमशब्दम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—महद्वत् = महत् शब्दकी भाँति। च = भी ॥ ७ ॥

भाषार्थः—सांख्यशास्त्र में महत् शब्द बुद्धिनामक द्वितीय तत्त्व में प्रयुक्त होने पर भी 'बुद्धि से परे महानात्मा है' इत्यादि वैदिक श्रुतियों में बुद्धि के लिये प्रयुक्त न होकर आत्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है। वैसे ही अव्यक्त शब्द भी वैदिक प्रयोग में प्रधान का प्रतिपादक नहीं देखा गया। अतः प्रधान अशब्द (वेदोक्त नहीं) है ॥ ७ ॥

चमसाधिकरणम् ॥ ८-१० ॥

चमसवदविशेषात् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—'अर्वाग्बिलश्चमसऊर्ध्वबुध्नः' यथेत्यस्मिन्मन्त्रेऽर्वाग्बिलत्वादि-कल्पना चमस एव नाभिप्रेता किन्त्वन्यत्रापि। तथैव 'अजामेकाम्' इत्यत्राजा-शब्दोऽपि न प्रधानमभिप्रेत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

पदार्थः—चमसवत् = चमस की भाँति। अविशेषात् = अजा शब्द में भी कोई विशेषता न होने से ॥ ८ ॥

भाषार्थः—'जिसके अधोभाग में बिल हो, ऊपर गोल हो' इस मन्त्र में जो चमस (चमचा) का लक्षण किया है वह केवल चमस में ही नहीं घटता, किन्तु अन्यत्र भी अर्थात् इस प्रकार की अन्य वस्तुओं में भी घट सकता है। इसी प्रकार श्रुत्युक्त अजा शब्द प्रधान से अन्यत्र भी घट सकता है ॥ ८ ॥

ज्योतिरुपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तर्हि का नाम अजा इत्याह। निश्चयार्थकः तुशब्दः। ईश्वरात्समुत्पन्ना तेजोऽबन्नलक्षणा चतुर्विधभूतग्रामस्य कारणभूतेयमजा ज्ञेया न गुणत्रयलक्षणा। कस्मात्? तथा ह्येके शाखिनो ह्यधीयते—यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्येति ॥ ९ ॥

पदार्थः—ज्योतिः = तेज (अग्नि)। उपक्रमा = आरम्भ में। हि = क्योंकि। तथा तु = वैसा ही। एके = एक (छान्दोग्य) शाखावाले। अधीयते = अध्ययन करते हैं ॥ ९ ॥

भाषार्थः—ईश्वर से उत्पन्न, तेज-जल और अन्नरूप तथा अण्डज, पिण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज-इन चारों भूतग्राम की कारण जननी) है वही अजा है। सांख्य-प्रतिपादित त्रिगुणात्मिका नहीं ॥ ९ ॥

कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—तेजोऽबन्नेष्वजाकृत्यभावात् तेषां जन्मश्रवणाच्च प्रधानमेवाजेति चेत्तत्राह—नायमाकृत्यजन्मनिमित्तकोऽजाशब्दः । 'किन्त्वादित्यस्यामधुनो मधुत्वम्' (छां० ३ । १) इति कल्पनावत् तेजोऽबन्नेष्वजायाः कल्पनोपदेशान्न विरोधः ॥ १० ॥

पदार्थः—मध्वादिवत् = मधु आदि की भाँति । कल्पनोपदेशात् = अजा की कल्पना मात्र का उपदेश होने से । च = भी । अविरोधः = कोई विरोध नहीं ॥ १० ॥

भाषार्थः—तेज, जल और पृथिवी में अजा की आकृति नहीं है और इन तीनों का जन्म भी होता है, इसलिये इनमें अजा शब्द नहीं घट सकता । अतः प्रधान ही अजा है—सांख्यवादी का यह कथन उचित नहीं । क्योंकि जैसे सूर्य मधु न होने पर भी उसमें मधु की कल्पना की जाती है, ऐसे ही तेज, जल और पृथिवी में अजा की कल्पना की जाती है । इसमें विरोध नहीं । अतः अजा शब्द प्रधान का वाचक नहीं है ॥ १० ॥

संख्योपसंग्रहाधिकरणम् ॥ ११—१३ ॥

न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—'यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ।' (बृह० ४ । ४ । १७) इत्यत्र पञ्चशब्दद्वयदर्शनात् पञ्चविंशतिसंख्यया सांख्योक्तानि पञ्चविंशतितत्त्वानि संगृह्यन्त इति चेत्तत्राह—संख्योपसंग्रहादपि—पञ्चविंशतिसंख्यया तत्त्वानां संकलनादपि न प्रधानस्य श्रुतिमूलकत्वम् । कस्मान्नानाभावात्—सांख्यतत्त्वानां भिन्नार्थत्वात् । नैषां पञ्चशः पञ्चशः साधारणो धर्मोऽस्ति येन पञ्चविंशतिसंख्याग्रहणं स्यात् । यथा सप्तर्षयः सप्तैव तथा पञ्चजनाः पञ्चैव । यस्मिन् पञ्चेति वाक्यमात्माकाशाभ्यां पञ्चविंशतिसंख्याया अतिरेकादाधिक्यादपीत्यर्थः ॥ ११ ॥

पदार्थः--संख्योपसंग्रहात् = संख्या के ग्रहण करने से । अपि = भी । नाना-भावात् = सांख्यतत्त्वों के नाना होने से । अतिरेकात् = दो तत्त्व अधिक होने से । च = भी । न = नहीं ॥ ११ ॥

भाषार्थः—'जिसमें पञ्च पञ्चजन तथा आकाश स्थित हैं, उस मृत्युहीन ब्रह्म में अमृतस्वरूप (आत्मा) मानता हूँ ।' इस श्रुतिवाक्य में पञ्च शब्द दो बार आने से सांख्योक्त पचीस तत्त्वों का ग्रहण है । अतः प्रधान श्रुतिमूलक है। इसके प्रतिवाद में कहते हैं---पचीस तत्त्वों की गणना करने पर भी 'प्रधान' श्रुतिमूलक नहीं । क्योंकि ये सांख्योक्त २५ तत्त्व नानाभाववाले अर्थात् अलग-अलग अर्थसूचक हैं, और इस मन्त्र में २५ तत्त्वों से आकाश और आत्मा ये दो तत्त्व अधिक (२५ + २ = २७ तत्त्व) कहे हैं जो सांख्यसम्मत नहीं हैं । अतः प्रधान अशब्द है, अर्थात् श्रुतिमूलक नहीं ॥ ११ ॥

प्राणादयो वाक्यशेषात् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः---'प्राणस्य प्राणम्' इति वाक्यशेषात्पञ्चजनाः पञ्चप्राणादयो बोधव्याः ॥ १२ ॥

पदार्थः—वाक्यशेषात् = अग्रिम वाक्य से । प्राणादयः = पञ्चजन प्राण, मन, चक्षु आदि हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थः---'प्राण का भी प्राण है ।' इस वाक्यशेष से पञ्चजन प्राण आदि ही हैं । आदि शब्द से चक्षु, श्रोत्र, मन आदि जानने चाहिये ॥ १२ ॥

ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—काण्वशाखिनां 'प्राणस्य प्राणम्' इति वाक्येऽसत्यप्यन्ने ज्योतिषा तेषां पञ्चसंख्या पूर्येत ॥ १३ ॥

पदार्थः---अन्ने असति = अन्न शब्द के अभाव में । ज्योतिषा = ज्योतिशब्द से । एकेषाम् = काण्व शाखावालों को पूर्ति कर लेनी चाहिये ॥ १३ ॥

भाषार्थः—माध्यन्दिनी शाखावाले 'प्राणस्य प्राणम्, अन्नस्यान्नम्'.... इस श्रुतिवाक्य में कहे हुए प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन तथा अन्न को लेकर पञ्च (पञ्चजनाः) शब्द की पूर्ति करते हैं किन्तु काण्वशाखावालों के पूर्वोक्त प्राणादि पञ्चजन में अन्न शब्द न होने से पूर्वोक्त बृ० ४ । ४ । १६ के ज्योतिशब्द से वे पांच की पूर्ति कर लेवें ॥ १३ ॥

कारणत्वाधिकरणम् ॥ १४-१५ ॥

कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः ॥१४॥

सूत्रार्थः – न कारणत्वेन विरोधोऽस्ति । कुतः ? व्यपदिष्टोक्तेः– यथैकस्मिन् वेदान्ते यथाभूत ईश्वर आकाशादिषु कारणत्वेन व्यपदिश्यते तथाभूतस्यैवापरवेदान्तेऽप्युक्तेरित्यर्थः ॥ १४ ॥

पदार्थः – यथा = जैसे । आकाशादिषु = आकाशादि तत्त्वों की उत्पत्ति में । कारणत्वेन = कारणरूप से । व्यपदिष्टोक्ते = वर्णन करके प्रतिपादन किया जाता है इसलिये । च = ही ॥ १४ ॥

भाषार्थः – जैसे एक वेदान्त में आकाशादि तत्त्वों की उत्पत्ति में ब्रह्म को जगत् का कारण कहा है वैसे ही दूसरे वेदान्त में भी वर्णन किया है । एवं सृष्टिक्रम में नानात्व के कारण श्रुतियों में विरोध है । किन्तु ब्रह्म के जगत्-कारणत्व में कोई विरोध नहीं है ॥ १४ ॥

समाकर्षात् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—'असदेवेदमग्र आसीत्तत्सदासीत्' (छां ३।१९।१) इत्यत्रासच्छब्देन सत एव ग्रहणम् । तत्सदासीदिति समाकर्षादतो नासतः कारणत्वशङ्का ॥१५॥

पदार्थः – समाकर्षात् = खिचाव अथवा सम्बन्ध होने से ॥ १५ ॥

भाषार्थः—'पहिले असत् ही था' इस श्रुति से असत् ही जगत् का कारण था ऐसा सिद्ध होता है । और असत् शब्द प्रधानवाचक है। अतः प्रधान ही जगत् का उपादान कारण है, ब्रह्म नहीं । इसका समाधान इसी श्रुति के अग्रिम वाक्य 'वह सत् था' से हो जाता है । यहाँ असत् का सारांश सत् है । अतः सद्ब्रह्म ही जगत् का कारण है ॥ १५ ॥

वालाक्यधिकरणम् ॥ १६–१८ ॥

जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—'यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत्कर्म स वेदितव्यः' (कौ०ब्रा० ४।१९) अत्र वेदितव्यः पुरुषाणां कर्ता परमात्मैव न जीवो न च मुख्य-प्राणः । क्रियते कर्म इति व्युत्पत्या कर्मशब्दस्य जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥

पदार्थः – जगद्वाचित्वात् = कर्म शब्द जगद्वाचक होने से ॥ १६ ॥

भाषार्थः—'हे बालाके ! जो इन पुरुषों का कर्ता है और जिस का यह कर्म है वह जानने योग्य है ।' इस श्रुति में जानने योग्य पुरुषों का कर्ता पर-

मात्मा ही है, न कि जीव न मुख्यप्राण; क्योंकि यहाँ कर्म शब्द जगत् का वाचक है। अतः चेतन ईश्वर ही जगत्कर्ता है, न जीव और न मुख्यप्राण ॥१६॥

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत्तद्व्याख्यातम् ॥१७॥

सूत्रार्थः—'एष प्रज्ञात्मा' इति वाक्यशेषे जीवलिङ्गात्। 'अथास्मिन् प्राणः' इति मुख्यप्राणलिङ्गाच्चात्रैतौ जीवप्राणौ ग्राह्यौ न ब्रह्मेति चेत्तद्व्याख्यातम् १।१।३१ सूत्रे ॥ १७॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो। जीवमुख्यप्राणलिङ्गात् = यहाँ वाक्यशेष में जीव तथा मुख्य प्राण का लक्षण होने से जीव तथा प्राण ही ग्राह्य हैं, ब्रह्म नहीं; तो इसका समाधान सूत्र १।१।३१ में कर दिया है। यहाँ पदार्थ में ही भाषार्थ आ गया है अतः भाषार्थ नहीं लिखा ॥ १७॥

अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ॥१८॥

सूत्रार्थः—अस्मिन् प्रकरणे जीवपरामर्शमन्यार्थं ब्रह्मबोधार्थमिति जैमिनिर्मन्यते। कस्मात्? अजातशत्रोर्बालाकेश्च प्रश्नप्रतिवचनाभ्यामिति। तत्र प्रश्नः—क्वैष एतद्बालाके पुरुषोऽशयिष्ट? क्व वा एतदभूदिति? उत्तरम्—यदा सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन पश्यति। अथास्मिन् प्राण एवैकधा भवतीति प्रश्नोत्तराभ्याम्। एवं वाजसनेयिनोऽपि जीवातिरिक्तं परमात्मानमामनन्ति। तत्र प्रश्नः क्वैष तदाभूत्? कुत एतदागात्?। उत्तरञ्च—य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते। इति प्रश्नोत्तराभ्यामिति ॥ १८॥

पदार्थः—जैमिनिः तु = जैमिनि तो। अन्यार्थम् = अन्य (ब्रह्म) के लिये। प्रश्नव्याख्यानाभ्याम् = प्रश्नोत्तरों से। च = और। एके = वाजसनेयी शाखा वाले। अपि = भी। एवम् = ऐसा ही मानते हैं ॥ १८॥

भाषार्थः—इस प्रकरण में जीव का ग्रहण ब्रह्म के लिये है यह जैमिनि का कथन है। अजातशत्रु और बालाकि के प्रश्नोत्तर से ऐसा ही सिद्ध होता है। वहाँ प्रश्न है—यह पुरुष कहाँ सोता था और कहाँ से यह आया? उत्तर—जहाँ पुरुष कोई स्वप्न नहीं देखता उस सुषुप्ति-अवस्था में सोता था। इसी प्रकार वाजसनेयी शाखावालों के प्रश्नोत्तर से सिद्ध होता है। वहाँ प्रश्न है—सुषुप्तावस्था में यह जीव क्या हुआ और कहाँ गया?। उत्तर—यह जीव हृदयाकाशस्थ ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन प्रश्नोत्तरों से सिद्ध है कि इस प्रकरण में जानने योग्य ज्ञेय तत्त्व ब्रह्म ही है जीव या प्राण नहीं ॥ १८॥

वाक्यान्वयाधिकरणम् ॥ १६–२२ ॥

वाक्यान्वयात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' इत्यत्र ब्रह्मैव द्रष्टव्यादितयोपदिष्टो न जीवः। कुतः ? वाक्यस्योपक्रमादिपर्यालोचनया ब्रह्मण्येवान्वयात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—वाक्यान्वयात्=पूर्वापर वाक्यों के सम्बन्ध से भी ॥ १६ ॥

भाषार्थः—'अरे मैत्रेयी ! आत्मा का ही श्रवण, मनन तथा साक्षात्कार करना चाहिये' इस श्रुति से श्रवण-मनन-दर्शन के योग्य उपदिष्ट ब्रह्म ही है, जीव नहीं ॥ १६ ॥

प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानमिति प्रतिज्ञासिद्धिसूचकं यदात्मनो द्रष्टव्यादिकीर्तनं तज्जीवात्मनोऽभेदांशमादायेत्याश्मरथ्यो मन्यते ॥ २० ॥

पदार्थः—प्रतिज्ञासिद्धेः=प्रतिज्ञा की सिद्धि के लिये। लिङ्गम्=सूचक है। आश्मरथ्यः=ऐसा आचार्य आश्मरथ्य मानते हैं ॥ २० ॥

भाषार्थः—'एक के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है।' इस प्रतिज्ञा की सिद्धि के लिये जो आत्मा का श्रवण-मननादि रूप लक्षण है, वह जीव-ब्रह्म की एकता को लेकर किया है। अर्थात् एक उपादानकारण ब्रह्म के ज्ञान से सब जगत् का ज्ञान हो जाता है। उस ब्रह्म-प्राप्तिरूप सिद्धि के लिये आत्मा का श्रवण-मननरूप साधन है। ऐसा आचार्य आश्मरथ्य मानते हैं ॥ २० ॥

उत्क्रमिष्यत एवम्भावादित्यौडुलोमिः ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—'एष सम्प्रसादः' एवं शरीरादुत्क्रमिष्यतो जीवन्मुक्तस्य ब्रह्माभिन्नभावात्स्थितिरित्यौडुलोम्याचार्यो मन्यते ॥ २१ ॥

पदार्थः—उत्क्रमिष्यतः=शरीर से निकलते हुए जीवन्मुक्त की। एवम्भावात्=ब्रह्माभिन्न भाव से स्थिति है। इति औडुलोमिः=ऐसा औडुलोमि आचार्य मानते हैं ॥ २१ ॥

भाषार्थः—'इस शरीर से निकल कर जीवन्मुक्त पुरुष ब्रह्मरूप से स्थित होता है' इस श्रुति-सिद्धान्त को औडुलोमि आचार्य मानते हैं ॥ २१ ॥

अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—परमात्मनोरेव जीवभावेनावस्थितेस्तयोरत्यन्ताऽभेद इति काशकृत्स्नो मन्यते। 'यथानेन जीवेनेति श्रुतिः' ॥ २२ ॥

पदार्थः—अवस्थितेः = जीव-ब्रह्म की अभेदभाव से स्थिति है। इति = ऐसा। काशकृत्स्नः = काशकृत्स्न मानते हैं ॥ २२ ॥

भाषार्थः—ईश्वर की जीव रूप से स्थिति है अतः दोनों का अभेद काशकृत्स्न मानते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जीव तथा मुख्य प्राण का वर्णन ब्रह्म को जगत् का उपादानकारण सिद्ध करने के लिये है ॥ २२ ॥

प्रकृत्यधिकरणम् ॥ २३-२७ ॥

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—प्रकृतिरुपादानं चकारान्निमित्तं च कारणं ब्रह्मैव। कुतः? प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। प्रतिज्ञा—'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति'। दृष्टान्तश्च—'यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यादिति' ॥ २३ ॥

पदार्थः—प्रकृतिः = उपादानकारण। च = निमित्तकारण ब्रह्म ही है। प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् = प्रतिज्ञा और दृष्टान्त के सामञ्जस्य से ॥ २३ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म ही जगत् का उपादान और निमित्तकारण है, प्रतिज्ञा और दृष्टान्त का सामञ्जस्य होने से। प्रतिज्ञा—जिसके जानने से न सुना हुआ सुना हुआ हो जाता है, असम्मत सम्मत और अज्ञात वस्तु जानी जाती है। दृष्टान्त—जैसे मिट्टी के ज्ञान से मिट्टी से बनी हुई घटादि सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है कि ये सब वस्तुएँ मिट्टी ही हैं। इसी प्रकार उपादानकारण ब्रह्म के ज्ञान से ब्रह्म से उत्पन्न सारा विश्व ब्रह्म रूप ही ज्ञात होता है ॥ २३ ॥

अभिध्योपदेशाच्च ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—कथमभिन्ननिमित्तोपादानं ब्रह्म। तत्राह—अभिध्या सृष्टिसङ्कल्पः 'सोऽकामयत' इति सृष्टिसङ्कल्पोपदेशाद् ब्रह्मणो निमित्तकारणत्वम्। 'बहु स्यां प्रजायेय' इति बहुवचनसङ्कल्पोपदेशाद् ब्रह्मण उपादानकारणत्वञ्च श्रुतिसम्मतमित्यर्थः ॥ २४ ॥

पदार्थः—अभिध्या = ब्रह्म के सृष्टि के सङ्कल्प का। उपदेशात् = उपदेश होने से। च = भी ॥ २४ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण कैसे है? इस पर कहते हैं–'उसने इच्छा की' इस श्रुति के अनुसार सङ्कल्प द्वारा सृष्टि की रचना करने से ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है। और 'मैं सृष्टिरूप से प्रकट होऊँ' इस श्रुत्युक्त सङ्कल्प से ब्रह्म उपादान कारण है। जैसे कुम्हार घट को बनाने से घट का निमित्त कारण है। तथा मिट्टी स्वयं घटरूप बन जाती है, अतः मिट्टी घट का उपादान कारण है। किन्तु ब्रह्म सङ्कल्प द्वारा निमित्त कारण है और स्वयं सृष्टिरूप बनता है अतः उपादान कारण है ॥ २४ ॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—२५, २६, २७ इति सूत्रत्रयेण ब्रह्मण उपादानत्वं प्रतिपाद्यते। 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यान्तीति' (छां० १। ९। १) साक्षाच्छ्रुत्या ब्रह्मण एव जगदुत्पत्तिप्रलयौ चाम्नायेते। अतो ब्रह्मैव जगदुपादानकारणम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—साक्षात् = प्रत्यक्ष। च = भी। उभयाम्नानात् = ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का श्रुति प्रतिपादन कर रही है ॥ २५ ॥

भाषार्थः—'ये सब भूत ब्रह्म से उत्पन्न और ब्रह्म में ही लीन होते हैं' यह साक्षात् श्रुति ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का प्रतिपादन करती है। अतः ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है ॥ २५ ॥

आत्मकृतेः परिणामात् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मैवोपादानकारणम्। कुतः? 'आत्मानं स्वयमकुरुत' (तै० २। ७) इत्यात्मकृतेः—आत्मसम्बन्धिनी कृतिरात्मकृतिस्तद्धेतोः। ननु कुतश्च ब्रह्मणः कृतिविषयत्वम्? परिणामात्। स्वशक्त्या स्वात्मानं जगदाकारं कृत्वा परिणम्येत्यर्थः। परिणतं भवति अतो तदुपादानत्वं सिद्धम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—आत्मकृतेः—स्वयं अपने कर्म से। परिणामात् = जगत् रूप में बदलने से ॥ २६ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म ने स्वयं अपने को जगत् रूप में रचा? कैसे रचा? परिणाम से। स्वशक्ति से जगत् रूप में परिणत किया। यहाँ श्रुति में 'आत्मानं' पद कर्म है। 'स्वयमकुरुत' पद कर्ता है। अतः कर्ता होने से निमित्त कारण और कर्मपद से उपादान कारण ब्रह्म ही है ॥ २६ ॥

योनिश्च हि गीयते ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—'यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः' (मु० १। १। ६) इति ब्रह्मणो योनित्वमुपादानत्वं श्रुत्या गीयते ॥ २७ ॥

पदार्थः—हि = क्योंकि । योनिः = उपादानकारण । च = भी । गीयते = कहा जाता है ॥ २७ ॥

भाषार्थः—'सब भूतों के उपादानकारण ब्रह्म को ज्ञानी देखते हैं' इस श्रुति ने भी ब्रह्म को उपादान कारण कहा है ॥ २७ ॥

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—इति प्रधानकारणवादो निराकृतः । एतेन सर्वे परमाण्वादिवादा निराकृतत्वेन व्याख्याताः । 'व्याख्याताः' इति द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था ॥ २८ ॥

पदार्थः—एतेन = इस प्रधानकारणवाद के निराकरण से । सर्वे = सब परमाणुवाद आदिकों का । व्याख्याताः = खण्डन हो गया । 'व्याख्याताः' शब्द की द्विरुक्ति अध्यायसमाप्ति के लिये है ॥ २८ ॥

भाषार्थः—इस प्रधानकारणवाद के खण्डन से परमाणु आदि सब वादों का खण्डन हो गया । 'व्याख्याता': शब्द की पुनरावृत्ति अध्यायसमाप्ति की सूचक है ॥ २८ ॥

इति वेदान्तदर्शने प्रथमाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

———

इति समन्वयाख्यः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—:❀:—

अथ वेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये

प्रथमः पादः

स्मृत्यधिकरणम् ।। १-२ ।।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाश-दोषप्रसङ्गात् ।। १ ।।

सूत्रार्थः—ननु कपिलस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गाद् ब्रह्मैव जगत्कारणमिति यदुक्तं तदयुक्तमिति चेन्नान्यगीतादिस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात्तद्युक्तमेव ।। १ ।।

पदार्थः—चेत् = यदि कहो कि । स्मृत्यनकाशदोषप्रसङ्गः = सांख्य (कपिल) स्मृति को मान्यता न देने से दोष का प्रसङ्ग प्राप्त होगा । इति न = ऐसा मत कहो; क्योंकि । अन्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् = इससे दूसरी गीता, मनु आदि स्मृतियों को मान्यता न देने का दोष प्राप्त होगा ।। १ ।।

भाषार्थः—यदि शंका हो कि ब्रह्म को जगत् का कारण मानने से प्रधान को जगत् का कारण माननेवाली सांख्यस्मृति की निरर्थकता का दोष होगा तो यह दोष नहीं है, क्योंकि सांख्य वेदानुकूल नहीं है । इस को मान्यता देने से अन्य वेदानुकूल गीता, मनु आदि स्मृतियों को मान्यता न देने का दोष प्राप्त होगा ।। १ ।।

इतरेषां चानुपलब्धेः ।। २ ।।

सूत्रार्थः—कथं वेदान्ते सांख्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गस्तत्राह यानि महदादीनि 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारः पञ्चतन्मात्राणीति' प्रधानादितराणि सांख्यस्मृतौ परिकल्पितानि प्रधानपरिणामत्वेन तानि वेदे लोके (शास्त्रे) वा नोपलभ्यन्ते ।। २ ।।

पदार्थः—इतरेषाम् = प्रधान से इतर (भिन्न) जो महत्तत्त्व, अहङ्कार आदि हैं उनकी । अनुपलब्धेः = उपलब्धि न होने से । च = भी ।। २ ।।

भाषार्थः--वेदान्त ने सांख्यस्मृति को इसलिये मान्यता नहीं दी कि सांख्य-स्मृति में कल्पित प्रधान से इतर प्रधान के परिणाम जो महत्तत्त्व, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्रा आदि हैं उनकी लोक (शास्त्र) तथा वेद में उपलब्धि नहीं होती। इसलिये सांख्यस्मृति मान्य नहीं है ॥ २ ॥

योगप्रत्युक्ताधिकरणम् ॥ ३ ॥

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—एतेन सांख्यस्मृतिप्रत्याख्यानेन योगस्मृतिरपि प्रत्याख्याता ॥ ३ ॥

पदार्थः—एतेन = सांख्यस्मृति के खण्डन से। योगः = योग-स्मृति भी प्रत्युक्तः = खण्डित हो गयी ॥ ३ ॥

भाषार्थः—सांख्यस्मृति के खण्डन से योगस्मृति का भी खण्डन हो गया। क्योंकि अन्य विषयों में योग का सांख्य से मतभेद होने पर भी जड प्रधान (प्रकृति) को जगत् का उपादानकारण मानने में दोनों सम्मत हैं ॥ ३ ॥

नविलक्षणत्वाधिकरणम् ॥ ४–११ ॥

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वञ्च शब्दात् ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—चेतनब्रह्म न जगत उपादानकारणम्। कुतः ? अस्य जगतश्चेतनाद्विलक्षणत्वात। तथात्वञ्च वैलक्षण्यं शब्दादपि श्रूयते। विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्चेति ॥ ४ ॥

पदार्थः—अस्य = इस जड जगत् के। विलक्षणत्वात् = चेतन ब्रह्म से विलक्षण (जड) होने से। च = और। तथात्वं = वह विलक्षणता। शब्दात् = श्रुति सिद्ध होने से। न = चेतन ब्रह्म जगत् कारण नहीं है ॥ ४ ॥

भाषार्थः—इस जड जगत् का उपादानकारण चेतन ब्रह्म नहीं हो सकता क्योंकि चेतन से चेतन ही उत्पन्न होता है। किन्तु जगत् चेतन ब्रह्म से विलक्षण अर्थात् जड है और यह विलक्षणता श्रुति से भी सिद्ध है। जैसे--'ब्रह्म विज्ञान (चेतन) और अविज्ञान (जड) हुआ।' (तै० २। ६) ॥ ४ ॥

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः--ननु ब्रह्मवज्जगदपि चेतनं श्रूयते। मृदब्रवीदिति वेदान्तकृतशङ्कां तु शब्दोऽपनयति। मृदब्रवीदित्यत्र मृदादिना तदभिमानिनीदेवताग्रहणम्। कुतः ? विशेषानुगतिभ्यां श्रुतिपुराणादिभ्य इति ॥ ५ ॥

पदार्थः—अभिमानिव्यपदेशः=मृत्तिका आदि तत्त्वों के अभिमानी देवता का वर्णन। विशेषानुगतिभ्याम्=विशेष (श्रुति), अनुगति (स्मृति-पुराणादि) से सिद्ध है। तु=तु शब्द वेदान्तकृत शङ्का के निवारणार्थ है॥ ५॥

भाषार्थः—'मिट्टी बोली, जल बोला' (श० ब्रा० ६।१।३।२।४) इस श्रुति में जगत् को भी चेतन कहा है। अतः चेतन ब्रह्म से चेतन जगत् की उत्पत्ति ठीक है। इस वेदान्त की शङ्का के निवारणार्थ तु शब्द है। ऐसी शङ्का उचित नहीं। मिट्टी आदि में बोलने का आरोपण मिट्टी आदि के अभिमानी देवताओं को लक्ष्य करके किया गया है, जैसा कि श्रुति-स्मृति आदि से सिद्ध है॥ ५॥

दृश्यते तु॥ ६॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वसूत्रद्वयकृतशङ्काव्यावर्तकः। दृश्यते लोके चेतनपुरुषादिभ्योऽचेतननखादीनामुत्पत्तिः॥ ६॥

पदार्थः—तु=तु शब्द ४-५ वें सूत्रकृत वेदान्त-शङ्का के निवारणार्थ है। दृश्यते=संसार में देखा जाता है॥ ६॥

भाषार्थः—तु शब्द ४-५ वें सूत्र में की गयी पूर्वपक्ष की शङ्का की निवृत्ति के लिये है। संसार में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि चेतन पुरुष से जड नख-केश आदि की उत्पत्ति होती है तथा जड गोमय से चेतन बिच्छू उत्पन्न होते हैं, अतः जड जगत् का उपादानकारण चेतन ब्रह्म है यह कथन समुचित है॥ ६॥

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात्॥ ७॥

सूत्रार्थः—प्रागुत्पत्तेरसत्कार्यमिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात्। प्रागुत्पत्तेः कार्यंजगतः कारणात्मनास्तित्वमस्त्येव॥ ७॥

पदार्थः—चेत्=यदि कहो कि। असत्=उत्पत्ति से पूर्व जगत् असत् था। इति न=तो यह बात नहीं है क्योंकि। प्रतिषेधमात्रत्वात्=यह असत् शब्द प्रतिषेधमात्र है॥ ७॥

भाषार्थः—शुद्ध ब्रह्म को अशुद्ध जगत् का कारण मानने में सत्कार्यवाद (असत् से सत् की उत्पत्ति) में दोष आवेगा, क्योंकि जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व असत् था एवं असत् से सत् की उत्पत्ति माननी पड़ेगी, जो वेदान्त-मत के विरुद्ध होगा, क्योंकि वेदान्त असत् (अभाव) से सत् (भाव) की उत्पत्ति

नहीं मानता ऐसी शङ्का उचित नहीं क्योंकि जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व असत् नहीं था, किन्तु अपने कारण ब्रह्मरूप से स्थित था। अतः ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानने में कोई दोष नहीं। जगत् जैसे अब सत् है वैसे ही उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण ब्रह्मरूप से सत् था ॥ ७ ॥

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—ननु शुद्ध्यादिगुणकं ब्रह्म जगत उपादानमित्यसमञ्जसम्। कुतः? अपीतौ प्रलये जाड्याशुद्ध्यादिगुणक जगद् ब्रह्मणि लीयमानं स्वकीयजाड्यादिधर्मैर्ब्रह्म दूषयेत् ॥ ८ ॥

पदार्थः अपीतौ = प्रलये। तद्वत् = कार्यजगत् की तरह। प्रसङ्गात् = सम्बन्ध से। असमञ्जसम् = अयुक्त है ॥ ८ ॥

भाषार्थः—पूर्वपक्षी-सत्, चित् आदि शुद्ध गुणों से युक्त ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानना उपयुक्त नहीं क्योंकि प्रलयकाल में ब्रह्म में लीन हुआ जगत् अपने उत्पत्ति-नाशादि अशुद्ध गुणों से ब्रह्म को दूषित कर देगा ॥ ८ ॥

न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—त्विति पक्षं व्यावर्तयति। नासमञ्जसं ब्रह्मणो जगदुपादानकारणत्वम्। कुतः? कटककुण्डलादिवद् दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥

पदार्थः - तु = तु पूर्वपक्ष का निराकरण करता है। न = अयुक्त नहीं। दृष्टान्तभावात् = दृष्टान्त के उपलब्ध होने से ॥ ९ ॥

भाषार्थः—सिद्धान्ती-ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानना अयुक्त नहीं है। जैसे सोने का कड़ा अपने कारण सोने में मिलकर सोने को दूषित नहीं करता, इस दृष्टान्त की तरह जगत् भी ब्रह्म को दूषित नहीं करता ॥ ९ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—स्वपक्षे सांख्यपक्षेऽपि ते दोषाः समाना अतो नायुक्तम् ॥ १० ॥

पदार्थः—स्वपक्षदोषात् = वे दोष सांख्यपक्ष में। च = भी हैं ॥ १० ॥

भाषार्थः—सांख्य ने जो दोष वेदान्त-पक्ष में बताये हैं, वे दोष वेदान्त के समान सांख्य-पक्ष में भी हैं। जैसे—प्रलयकाल में साकार जगत् जब अपने

कारण निराकार प्रधान में मिलता है तब अपनें उत्पत्ति-नाशादि धर्मों से अव्यक्त (प्रधान) को दूषित नहीं करता, ऐसे ही प्रलय में ब्रह्म में लीन जगत् भी ब्रह्म को दूषित नहीं करता ॥ १० ॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—तर्काप्रतिष्ठितत्वादपि न तेन समन्वयविरोधाशङ्का युक्ता । कपिलकणादादीनां परस्परविरोधदर्शनात् । सर्वतर्काप्रतिष्ठायां लोकव्यवहारोच्छेद इत्यनुमेयमिति चेत्तत्राप्यविमोक्षप्रसङ्ग एव सम्यग्ज्ञानस्य वस्तुतन्त्रत्वात् ॥ ११ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि । इति = ऐसा कहो कि । तर्काप्रतिष्ठानात् = तर्कों के अस्थिर होने से । अपि = भी । अन्यथा = दूसरे प्रकार से । अनुमेयम् = समन्वयविरोधका अनुमान करना चाहिये । एवमपि = इस प्रकार भी । अविमोक्षप्रसङ्गः = तर्क से मोक्ष नहीं होता ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होगा ॥ ११ ॥

भाषार्थः—यदि कहो कि तर्क अस्थिर है तो किसी दूसरी युक्ति या प्रतिष्ठित तर्क से वेदान्त के समन्वय के विरोध का हम अनुमान करें। ऐसा यदि सांख्यवादी कहे तो भी प्रकृत विषय तर्क के अप्रतिष्ठत्वरूप दोष से मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि तर्क अस्थिर है। एक के तर्क को दूसरों का तर्क खण्डन कर देता है। यहाँ तक कि कपिल-कणाद आदि के तर्क भी परस्पर विरुद्ध हैं। ऐसे अप्रतिष्ठित तर्कों से मोक्ष असम्भव है। ब्रह्मज्ञान से मोक्ष निश्चित है। अतः सिद्ध हुआ कि जगत् का निमित्त-उपादान कारण ब्रह्म है ॥ ११ ॥

शिष्टापरिग्रहाधिकरणम् ॥ १२ ॥

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—एतेन प्रधानकारणवादनिराकरणेनाण्वादिप्रधानकारणवादा अपि निराकृताः ॥ १२ ॥

पदार्थः—एतेन = इस प्रधानकारणवाद के खण्डन से । शिष्टापरिग्रहाः = शिष्टों द्वारा अमान्य अण्वादिप्रधानकारणवाद । अपि = भी । व्याख्याताः = खण्डित हो गये ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इस प्रधानकारणवाद के खण्डन से मनु, व्यास आदि शिष्ट पुरुषों से अमान्य अण्वादिप्रधानकारणवाद भी खण्डित हो गये ॥ १२ ॥

भोक्त्रापत्त्यधिकरणम् ॥ १३ ॥

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मणो जगदुपादानत्वे भोक्तृभोग्यप्रपञ्चस्य सर्वत्र ब्रह्मानन्यत्वेन भोग्यस्य भोक्तात्मकत्वापत्तेर्भोक्तुर्वा भोग्यात्मकत्वापत्तेः प्रत्यक्षः सिद्धः परस्परविभागो न स्यादिति। समाधत्ते—स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥

पदार्थः—चेत्=यदि कहो। भोक्त्रापत्तेः=ब्रह्म में भोक्तापन की प्राप्ति से। अविभागः=जीव-ईश्वर तथा जड-चेतन का परस्पर विभाग सिद्ध न होगा। इति न=ऐसा न कहो। लोकवत्=संसार में घट-मृत्तिकावत् भेद। स्यात्=हो सकता है ॥ १३ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानने में समस्त भोक्ता-भोग्यरूप जगत् की ब्रह्म के साथ एकता हो जाने से भोग्य भोक्ता-भावको और भोक्ता भोग्यभाव को प्राप्त हो जायगा तथा जीव-ईश्वर और जड-चेतन का भेद सिद्ध न होगा। इस शङ्का का सिद्धान्ती समाधान करता है—जैसे संसार में मिट्टी से बने घटादि पदार्थों में और मिट्टी में अभेद होने पर भी भेद देखा जाता है, वैसे ही ब्रह्म और जगत् में अभेद होने पर भी भेद देखा जा सकता है ॥ १३ ॥

आरम्भणाधिकरणम् ॥ १४-२० ॥

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तस्माद् ब्रह्मणः प्रपञ्चस्यानन्यत्वमस्ति। कुतः? 'यथैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' (छां० ६।१।४), 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' (छां० ६।८।७) 'नेह नानास्ति किञ्चन' (बृ० ४।४।१९) इत्यादि-आरम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥

पदार्थः—तत्=तस्मात्=उस ब्रह्म से। अनन्यत्वं=जगत् की अनन्यता है, जैसा कि। आरम्भणशब्दादिभ्यः=आरम्भणादि शब्दों से सिद्ध है ॥ १४ ॥

भाषार्थः—मिट्टी और मिट्टी से बने पात्रों में भेद मानने से कार्य-कारण की एकता कैसे सिद्ध होगी? इस शङ्का का समाधान यों है कि भेद केवल नाम

में है, वास्तविक नहीं। जैसे मिट्टी के बनें सब पात्रों में मिट्टी ही सत्य है, नाम-रूपवाले घटादि पात्र विकारमात्र (कल्पित) हैं इसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न जगत् ब्रह्मरूप ही है। जैसा कि 'यह सब ब्रह्म है', 'यह सब आत्मा है', 'यहाँ नानात्व नहीं है' इत्यादि आरम्भण शब्दों से सिद्ध है॥ १४॥

भावे चोपलब्धेः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—विकारः कारणादनन्यः; कारणसत्वे कार्यस्योपलब्धेः ॥१५॥

पदार्थः—भावे = कारण होने पर। उपलब्धेः = (कार्य की) उपलब्धि होनें से। च = भी ॥ १५ ॥

भाषार्थः—कार्यरूप विकार कारण से अभिन्न है, क्योंकि कारण में ही कार्य की उपलब्धि होती है ॥ १५ ॥

सत्त्वाच्चावरस्य ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—अवरस्य कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् कारणादनन्यत्वश्रवणात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—अवरस्य = कार्य को। सत्त्वात् = (कार्यरूप से) स्थिति होने से। च = भी ॥ १६ ॥

भाषार्थः—कार्यरूप जगत् उत्पत्ति से पूर्व ब्रह्मरूप था। अतः कार्य-कारण में भेद नहीं है यह श्रुतिसम्मत है ॥ १६ ॥

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—'असद्वा इदमग्र आसीत्' (तै० २।७।१) इत्यस्माद् व्यपदेशात् प्रागुत्पत्तेः कार्यस्याभाव इति चेन्न। 'तत्सदासीत्' इति वाक्यशेषाद् धर्मान्तरेणैवायं व्यपदेशः ॥ १७ ॥

पदार्थः—असद्व्यपदेशात् = (श्रुति में) असत् के कथन से। न = (सृष्टि के पहले) उसका अस्तित्व नहीं था। इति चेत् = यदि ऐसा कहो तो। न = ऐसा नहीं है। धर्मान्तरेण = अन्य धर्म से उसके अस्तित्व का श्रुति में कथन है। वाक्यशेषात् = ऐसा तै० श्रुति २।७ में वाक्यशेष से सिद्ध है ॥ १७ ॥

भाषार्थः—यदि कहो कि सृष्टि से पूर्व 'यह जगत् असत् था' इस श्रुति से कारणरूप से जगत् का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। तो यह कथन युक्त

नहीं, क्योंकि श्रुति में असत् शब्द नामरूपात्मक जगत् के सूक्ष्म अव्यक्तता
धर्म की दृष्टि से कहा गया है, न कि जगत् के अत्यन्त अभाव की दृष्टि से
जैसा कि 'वह जगत् सृष्टि के पूर्व सत् था' इस वाक्यशेष से सिद्ध है। अत:
कार्य कारण से अभिन्न है ॥ १७ ॥

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—युक्तेः 'एकमेवाद्वयम्' (छां० ६। २) इति शब्दान्तराच्च
प्रागुत्पत्तेः कार्यभाव एव ॥ १८ ॥

पदार्थः—युक्तेः = युक्ति से। च = तथा। शब्दान्तरात् = अन्य श्रुति
॥ १८ ॥

भाषार्थः—घट से पूर्व मृत्तिका का अभाव और सृष्टि से पूर्व जगत् का
अभाव मानने पर घट और जगत् की उत्पत्ति कैसे होगी ? इस युक्ति से और
'ब्रह्म एक अद्वैत है' इस अन्य श्रुति से सिद्ध है कि सृष्टि के पूर्व यह जगत्
सत् था, असत् नहीं ॥ १८ ॥

पटवच्च ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—प्रसारितपरिवेष्टितपटवच्च कार्यकारणयोरभेद एव ॥ १९ ॥

पदार्थः—च = तथा। पटवत् = फैलाये हुए और लपेटे हुए वस्त्र
वत् ॥ १९ ॥

भाषार्थः—जैसे फैलाये हुए और लपेटे हुए पट में कोई अन्तर नहीं
इसी प्रकार कार्यरूप जगत् कारणरूप ब्रह्म से अभिन्न है ॥ १९ ॥

यथा च प्राणादि ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—प्राणादिवदपि जगद्ब्रह्मणोऽभेद एव ॥ २० ॥

पदार्थः—च = तथा। यथा = जैसे। प्राणादि = प्राण आदि ॥ २० ॥

भाषार्थः—जैसे समाधिकाल में प्राण अस्पष्ट और उत्थानकाल में स्प
भासते हैं, वैसे ही प्रलयकाल में सृष्टि से पूर्व ब्रह्मलीन जगत् अस्पष्ट और सृष्टिकाल
में स्पष्ट भासता है। अतः सिद्ध हुआ कि जगत् अपने कारण ब्रह्म से भिन्न
नहीं है ॥ २० ॥

इतरव्यपदेशाधिकरणम् ॥ २१-२३ ॥

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—इतरस्य जीवस्य तत्त्वमस्यादिना ब्रह्मत्वव्यपदेशात्। यद्वा इतरस्य ब्रह्मणः 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' (छां० ६। ३।२) इत्यादिना शारीरत्वव्यपदेशाद् ब्रह्मणः सृष्टित्वे जीवस्यैव सृष्टत्वं स्यात्तथा च हिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥

पदार्थः--इतरव्यपदेशात्=अन्य का (जीव का) कथन होने से। हिताकरणादिदोषप्रसक्तिः=अपना अहित करने आदि के दोष का प्रसङ्ग प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

भाषार्थः—'तू ब्रह्म है' (छां० ६।८।७) इस से जीव को ब्रह्मस्वरूप कहा है। अथवा 'परमात्मा ने जीवरूप से शरीर में प्रवेश करके नाम-रूपात्मक सृष्टि रची' इत्यादि श्रुतियों से जीव-ब्रह्म की एकता सिद्ध है। एवं ब्रह्म की सृष्टि-रचना से जीव की सृष्टि हुई। इस प्रकार जीवरूप से आधि-व्याधियुक्त सृष्टि-को रचकर अपना ही अहित करने आदि का दोष प्राप्त होगा। अपना अहितकर कर्म कोई कर नहीं सकता। अतः ब्रह्म जगत् का उपादान कारण नहीं है—यह शङ्का पूर्वपक्षी ने की ॥ २१ ॥

अधिकं तु भेदनिर्देशात् ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—शारीरादधिकं भिन्नं सर्वज्ञं सर्वशक्तिमद् ब्रह्म जगदुपादानकारणमतो न हिताकरणदोषप्रसक्तिः। कुतः ? 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' (बृ० २।४।५) इत्यादिना जीवब्रह्मणो भेदनिर्देशात् ॥ २२ ॥

पदार्थः—तु=तु शब्द पूर्वपक्षनिवारणार्थ है। अधिकम्=श्रेष्ठ, भिन्न। भेदनिर्देशात्=जीव-ब्रह्म में भेद का कथन होने से ॥ २२ ॥

भाषार्थः—जीव से ब्रह्म अधिक अर्थात् श्रेष्ठ है। तथा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् आदि उत्कृष्टगुणयुक्त होने से उसमें हिताकरणादि दोष नहीं घट सकते। 'आत्मा द्रष्टव्य है, श्रोतव्य है' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार बद्ध जीव तथा ब्रह्म में भेद है, मुक्त जीव में नहीं ॥ २२ ॥

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—ननु एकरूपब्रह्मणो जगत्कारणत्वे कार्यवैचित्र्यं न स्यादिति दोषं दृष्टान्तेन परिहरति। यथैकपृथ्वीजन्यानामश्मनां वज्रवैडूर्यादिभेदैः वैचित्र्यमेवं ब्रह्मकार्याणामपि वैचित्र्यदोषानुपपत्तिः ॥ २३ ॥

पदार्थः—च=और। अश्मादिवत् = पत्थर आदि की तरह। तदनुपपत्तिः दोष नही है ॥ २३ ॥

भाषार्थः—शङ्का-एकरस ब्रह्म से अनेक नाम-रूपवाला विचित्र जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? समाधान—जैसे एकरूप पृथिवी से उत्पन्न पत्थरों में वज्र वैडूर्य आदि भेद से विचित्रता है। अतः ब्रह्म के कार्य जगत् को विचित्रता: वादी द्वारा कथित दोष को स्थान नहीं है ॥ २३ ॥

उपसंहारदर्शनाधिकरणम् ॥ २४–२५ ॥

उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—कर्तुः कुलालस्य दण्डचक्राद्युपसंहारदर्शनान्न ब्रह्मणो जगदुपादानत्वमिति चेन्नास्त्येव क्षीरवत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—उपसंहारदर्शनात् = (साधनसामग्री के) संग्रह को देखते हुए न = (ब्रह्म जगत् का कारण) नहीं। इति चेत् = यदि ऐसी शङ्का हो तो। नः यह शङ्का उचित नहीं है। हि=क्योंकि। क्षीरवत् = दूध की तरह ॥ २४ ॥

भाषार्थः—जैसे कुम्हार को घट आदि बनाने के लिये दण्ड-चक्रादि साधन सामग्री की अपेक्षा रहती है, वैसे ही जगत् के निर्माण के लिये ब्रह्म को सामग्री की आवश्यकता है। किन्तु ब्रह्म असहाय है, अतः वह जगत् का उपादान तथा निमित्तकारण नहीं हो सकता, वादी का ऐसा कथन उचित नहीं, क्योंकि जैसे दूध बिना साधन के दही का रूप धारण कर लेता है, वैसे ही ब्रह्म भी जगत् रूप से भासमान हो जाता है ॥ २४ ॥

देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—यथा लोके साधनविहीना देवादय ऐश्वर्यसम्पन्ना दृश्यन्ते तद्वद् ब्रह्मणोऽपि सृष्टिकर्तृत्वे साधनापेक्षा नास्ति ॥ २५ ॥

पदार्थः—लोके = संसार में। देवादिवत् = देवता आदि की तरह अपि = भी ॥ २५ ॥

भाषार्थः—जैसे संसार में देवता, यक्ष, गन्धर्व आदि बाह्य साधन के बिना संकल्पमात्र से पदार्थ उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार परमात्मा को भी सृष्टि-रचना के लिये साधन की अपेक्षा नहीं है ॥ २५ ॥

कृत्स्नप्रसक्त्यधिकरणम् ॥ २६—२९ ॥

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—क्षीरादिवद्ब्रह्मणो जगत्कारणत्वं न संघटते। यतः कृत्स्नस्य ब्रह्मणः कार्याकारेण परिणामप्रसक्तिः। निरवयवत्वशब्दकोपो वा अर्थादेकांशपरिणामे 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' (श्वे० ६ । १९) इत्यादिनिरवयवत्वप्रतिपादकशब्दकोपो वा स्यादिति पूर्वपक्षः ॥ २६ ॥

पदार्थः—कृत्स्नप्रसक्तिः = पूर्णब्रह्म का कार्यरूप में परिणत होने का दोष। वा = अथवा। निरवयव त्वशब्दकोपः = निरवयव-प्रतिपादक श्रुतियों से विरोध होगा ॥ २६ ॥

भाषार्थः—जैसे दूध बिना साधन के दधिरूप में परिणत हो जाता है वैसे ब्रह्म भी बिना साधन-सामग्री के जगत् रूप में परिणत हो जाता है—ऐसा मानने में पूर्णब्रह्म के परिणामी होने का प्रसङ्ग प्राप्त होगा। यदि पूर्णब्रह्म को नहीं किन्तु ब्रह्म के एक अंश को जगत् रूप में परिणत हुआ मानेंगे तो 'ब्रह्म निष्कल, निष्क्रिय तथा शान्त है' इत्यादि श्रुतियाँ जो ब्रह्म को निरवयव सिद्ध करती हैं उनसे विरोध होगा। एवं दोनों प्रकार से ब्रह्म जगत् का उपादान या निमित्त कारण सिद्ध नहीं हो सकता। यह पूर्वपक्ष है ॥ २६ ॥

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—त्विति पूर्वपक्षव्यावर्तकः। न तावत्कृत्स्नप्रसक्तिः। कुतः ? 'एतावानस्य महिमा' (यजु० ३१ । ३) इति श्रुतेः। ननु कथं श्रुतिः कार्यातिरेकेण ब्रह्मणः सत्त्वं बोधयेत् ? अत आह—श्रुतेः शब्दमूलकत्वाद् ब्रह्मणः शब्दैकप्रमाणत्वात् ॥ २७ ॥

पदार्थः—तु = तु पूर्वपक्षनिरासार्थ है। श्रुतेः = 'त्रिपादस्यामृतं दिवि' (यजु० ३१ । ३) इस श्रुति से ब्रह्म के निर्विकारत्व में। शब्दमूलत्वात् = वेद ही प्रमाण होने से ॥ २७ ॥

भाषार्थः—तुशब्द पूर्वपक्ष के निराकरण के लिये है। परिणामी होने का दोष हमारे पक्ष में नहीं। क्योंकि 'ब्रह्म की इतनी महिमा है कि उसके एक अंश में जगत् स्थित है, और तीन पाद अमृतस्वरूप स्वात्मप्रकाश में स्थित हैं।' इस श्रुति से प्रमाणित है कि ब्रह्म में जगत् की स्थिति होते हुए भी ब्रह्म निर्विकार है। जगत् के जन्म-स्थिति-लय ब्रह्म से होते हैं, यही उसकी महिमा है ॥ २७ ॥

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—यथा स्वप्ने ह्यात्मनि विचित्रा सृष्टिर्दृश्यते तथा ब्रह्मण्यपि ॥ २८ ॥

पदार्थः—च = और। आत्मनि = आत्मा में। हि = निश्चय करके। विचित्राः = अनेक प्रकार की सृष्टि स्वप्न में देखी जाती है। एवं च = इसी प्रकार ब्रह्म में भी विविध सृष्टि देखी जाती है। यहाँ पदार्थ में ही भाषार्थ आ गया है ॥ २८ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—ते कृत्स्नप्रसक्त्यादिदोषाः सांख्यपक्षेऽपि समाना एवातो नोपक्षेप्तव्याः ॥ २९ ॥

पदार्थः—स्वपक्षदोषात् = (वेदान्त में लगाये दोष). सांख्यपक्ष में। च = भी। (समानाः = समान हैं) ॥ २९ ॥

भाषार्थः—ये दोष जो सांख्य ने वेदान्त पर लगाये हैं वे सांख्यपक्ष में भी हैं। सांख्य भी प्रधान को निर्विकार तथा निरवयव मानता है। उस निर्विकार, निरवयव प्रधान से सविकार तथा सावयव जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? इस प्रकार प्रधान में भी वे दोष हैं तब वेदान्त-पक्ष में ही दोष लगाना उचित नहीं। अतः ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है ॥ २९ ॥

सर्वोपेताधिकरणम् ॥ ३०–३१ ॥

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—सर्वशक्तियुक्ता च परदेवता। कुतः ? 'सर्वकर्मा सर्वकामः (छां० ३। १४। ४) इत्यादिश्रुतौ तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

पदार्थः--च = और। सर्वोपेता = वह परदेवता सर्वशक्तियुक्त है। तद्दर्शनात् = यह श्रुतियों से सिद्ध है॥ ३०॥

भाषार्थः वह परदेवता (ब्रह्म) सर्वशक्तियुक्त है। 'वह सब कर्म करता है और सर्वशक्तियुक्त है' इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म का सर्वशक्तिपन सिद्ध है॥ ३०॥

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम्॥ ३१॥

सूत्रार्थः--'अचक्षुष्कमश्रोत्रम्' (बृ० ३।८।८) इति श्रुत्या ब्रह्मणश्चक्षुःश्रोत्रादि करणविहीनत्वान्न ब्रह्मणो जगत्कर्तृत्वमिति चेत्तदुक्तं २।१।२५ सूत्रे॥ ३१॥

पदार्थः—विकरणत्वात् = इन्द्रियहीन होने से। न = ब्रह्म जगत्कारण नहीं। चेत् = यदि। इति = ऐसा कहो तो। तदुक्तम् = इस का उत्तर सूत्र २।१।१५ में दे दिया है॥ ३१॥

भाषार्थः—परमात्मा चक्षु-श्रोत्र-हस्त-पादादि इन्द्रियों से रहित है। अतः वह सृष्टिकर्ता नहीं हो सकता। यदि ऐसी शङ्का हो तो इसका उत्तर २।१।१५ में दे दिया है॥ ३१॥

नप्रयोजनवत्त्वाधिकरणम्॥ ३२-३३॥

न प्रयोजनवत्त्वात्॥ ३२॥

सूत्रार्थः—प्रयोजनाभावान्न ब्रह्मणो जगत्कर्तृत्वं सम्भवतीति पूर्वपक्षः॥ ३२॥

पदार्थः—प्रयोजनवत्त्वात् = प्रयोजन से युक्त। न = न होने से॥ ३२॥

भाषार्थः—प्रयोजन न होने से ब्रह्म सृष्टिकर्त्ता नहीं हो सकता। यह पूर्वपक्ष है॥ ३२॥

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥ ३३॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः। यथा लोके पुरुषस्योच्छ्वासादयो विनैव प्रयोजनं सम्भवन्ति तथैवेश्वरस्यापि केवलं स्वभावादेव सृष्टिरूपा लीला भवति॥ ३३॥

पदार्थः—तु = तु शब्द पूर्वपक्ष के निरासार्थ है। लोकवत् = संसार की तरह। लीलाकैवल्यम् = केवल लीलामात्र है॥ ३३॥

भाषार्थः—संसार में जैसे पुरुष के श्वास-प्रश्वास विना प्रयोजन के चलते हैं, वैसे ही ईश्वर की सृष्टिरूप लीला केवल स्वाभाविक होती है ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्याधिकरणम् ॥ ३४–३६ ॥

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—सृष्टौ सुखदुःखादिवैषम्यनैर्घृण्यत्वान्न ब्रह्मणो जगत्कारणत्वमिति चेन्न। कुतः? सापेक्षत्वात्। जीवानां धर्माधर्माद्यपेक्षयैवेश्वरः सृष्टिं निर्मिमीते। तथा हि श्रुतिर्दर्शयति 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' (बृ० ३। २। १३) ॥ ३४ ॥

पदार्थः—वैषम्यम् = विषमता। नैर्घृण्यम् = निर्दयता। न = दोष नहीं। सापेक्षत्वात् = जीवों के धर्माधर्मादि की अपेक्षा से। तथा हि = वैसा ही। दर्शयति = श्रुति भी दिखाती है ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—सम ब्रह्म में सात्त्विक, राजस तथा तामस-रूप विषम सृष्टि रचने से विषमता तथा निर्दयतादि दोष प्राप्त होते हैं। इस पूर्वपक्ष का खण्डन न शब्द करता है, अर्थात् ईश्वर में विषमता, क्रूरता आदि कोई दोष नहीं है क्योंकि ईश्वर सृष्टि की रचना जीवों के पाप-पुण्य की अपेक्षा से करता है जैसा कि 'जीवों को अपने किये पुण्य से सुख और पाप से दुःख मिलता है' इत्यादि श्रुतियों से स्पष्ट है ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—सृष्टेः प्रागविभागावधारणान्न तदा कर्म, अतः कर्मापेक्षया विषमा सृष्टिरित्यसंगतमिति चेन्न संसारस्यानादित्वात् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—कर्माविभागात् = ब्रह्म और सृष्टि में विभाग न होने से। न = कर्म की अपेक्षा से सृष्टि-रचना नहीं हो सकती। चेत् = यदि। इति = ऐसी शङ्का हो तो। न = यह उचित नहीं। अनादित्वात् = सृष्टि के अनादि होने से ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—यदि कहो कि सृष्टि से पूर्व 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छां० ६। २। १) इस श्रुति के अनुसार एक सत् वस्तु ब्रह्म ही था ब्रह्म और कर्म का भेद नहीं था। अतः जीवों के शुभाशुभकर्मों की अपेक्षा से विषम सृष्टि की रचना की तो पूर्वपक्षी का यह तर्क उचित नहीं है क्योंकि संसार अनादि है। वैसे ही कर्मानुसार सृष्टि-रचना भी अनादि है। 'यथा-पूर्वं सृष्टि के अनुसार ही ब्रह्मा ने सृष्टि रची' इस श्रुति से यह सिद्ध है ॥ ३५ ॥

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः--संसारस्यानादित्वमुपपद्यते, अन्यथा ह्यकस्मादेव सृष्ट्यङ्गीकारे मुक्तस्यापि पुनर्जन्मप्रसङ्गात्, पूर्वसृष्टिसादृश्योपपत्तेश्च श्रुतिस्मृत्योः संसारानादित्वमप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

पदार्थः-- च=इसके सिवा (संसार का अनादित्व)। उपपद्यते=युक्तिसिद्ध है। च=तथा। अपि=(श्रुति में प्रमाण) भी। उपलभ्यते=प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥

भाषार्थः--संसार का अनादित्व सिद्ध है। अन्यथा विना कर्मों के अकस्मात् सृष्टि के अङ्गीकार करने पर मुक्त पुरुषों के जन्म की सम्भावना हो जायगी। एवं सृष्टि का अनादित्व तथा पूर्व सृष्टि की सदृशता 'ब्रह्मा ने सूर्यचन्द्रादि सृष्टि की रचना पूर्वसृष्टि के अनुसार ही की' इस श्रुति से सिद्ध है ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्त्यधिकरणम् ॥ ३७ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः-- सर्वज्ञत्वादिसर्वधर्माणां ब्रह्मण्युपपत्तेश्चोपनिषद्दर्शनं निर्दोषम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः--सर्वधर्मोपपत्तेः=ब्रह्म में सम्पूर्ण धर्मों की संगति होने से। च=भी ॥ ३७ ॥

भाषार्थः--ब्रह्म में सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व आदि सब धर्मों की संगति होने से निर्गुण ब्रह्म भी जगत् का उपादान तथा निमित्त कारण हो सकता है। इस प्रकार उपनिषद्दर्शन निर्दोष है ॥ ३७ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
प्रथमः पादः ॥ १ ॥

भाषार्थः—संसार में जैसे पुरुष के श्वास-प्रश्वास विना प्रयोजन के होते हैं, वैसे ही ईश्वर की सृष्टिरूप लीला केवल स्वाभाविक होती है ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्याधिकरणम् ॥ ३४-३६ ॥

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—सृष्टौ सुखदुःखादिवैषम्यनैर्घृण्यत्वान्न ब्रह्मणो जगत्कारणत्व-मिति चेन्न । कुतः ? सापेक्षत्वात् । जीवानां धर्माधर्माद्यपेक्षयैवेश्वरः सृष्टिं निर्मिमीते । तथा हि श्रुतिर्दर्शयति 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' (बृ० ३ । २ । १३) ॥ ३४ ॥

पदार्थः—वैषम्यम् = विषमता । नैर्घृण्यम् = निर्दयता । न = दोष नहीं । सापेक्षत्वात् = जीवों के धर्माधर्मादि की अपेक्षा से । तथा हि = वैसा ही दर्शयति = श्रुति भी दिखाती है ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—सम ब्रह्म में सात्त्विक, राजस तथा तामस-रूप विषम सृष्टि रचने से विषमता तथा निर्दयतादि दोष प्राप्त होते हैं । इस पूर्वपक्ष का खण्डन न शब्द करता है, अर्थात् ईश्वर में विषमता, क्रूरता आदि कोई दोष नहीं है क्योंकि ईश्वर सृष्टि की रचना जीवों के पाप-पुण्य की अपेक्षा से करता है जैसा कि 'जीवों को अपने किये पुण्य से सुख और पाप से दुःख मिलता है' इत्यादि श्रुतियों से स्पष्ट है ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—सृष्टेः प्रागविभागावधारणान्न तदा कर्म, अतः कर्मापेक्षया विषमा सृष्टिरित्यसंगतमिति चेन्न संसारस्यानादित्वात् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—कर्माविभागात् = ब्रह्म और सृष्टि में विभाग न होने से । न = कर्म की अपेक्षा से सृष्टि-रचना नहीं हो सकती । चेत् = यदि । इति = ऐसी शङ्का हो तो । न = यह उचित नहीं । अनादित्वात् = सृष्टि के अनादि होने से ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—यदि कहो कि सृष्टि से पूर्व 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छां० ६ । २ । १) इस श्रुति के अनुसार एक सत् वस्तु ब्रह्म ही था, ब्रह्म और कर्म का भेद नहीं था । अतः जीवों के शुभाशुभकर्मों की अपेक्षा से विषम सृष्टि की रचना की तो पूर्वपक्षी का यह तर्क उचित नहीं है क्योंकि संसार अनादि है । वैसे ही कर्मानुसार सृष्टि-रचना भी अनादि है । 'यथा-पूर्वं सृष्टि के अनुसार ही ब्रह्मा ने सृष्टि रची' इस श्रुति से यह सिद्ध है ॥ ३५ ॥

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः--संसारस्यानादित्वमुपपद्यते, अन्यथा ह्यकस्मादेव सृष्ट्यङ्गीकारे मुक्तस्यापि पुनर्जन्मप्रसङ्गात्, पूर्वसृष्टिसादृश्योपपत्तेश्च श्रुतिस्मृत्योः संसारानादित्वमप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

पदार्थः— च=इसके सिवा (संसार का अनादित्व)। उपपद्यते=युक्तिसिद्ध है। च=तथा। अपि=(श्रुति में प्रमाण) भी। उपलभ्यते=प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—संसार का अनादित्व सिद्ध है। अन्यथा विना कर्मों के अकस्मात् सृष्टि के अङ्गीकार करने पर मुक्त पुरुषों के जन्म की सम्भावना हो जायगी। एवं सृष्टि का अनादित्व तथा पूर्व सृष्टि की सदृशता 'ब्रह्मा ने सूर्यचन्द्रादि सृष्टि की रचना पूर्वसृष्टि के अनुसार ही की' इस श्रुति से सिद्ध है ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्त्यधिकरणम् ॥ ३७ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः— सर्वज्ञत्वादिसर्वधर्माणां ब्रह्मण्युपपत्तेश्चोपनिषद्दर्शनं निर्दोषम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—सर्वधर्मोपपत्तेः=ब्रह्म में सम्पूर्ण धर्मों की संगति होने से। च=भी ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म में सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्त्व आदि सब धर्मों की संगति होने से निर्गुण ब्रह्म भी जगत् का उपादान तथा निमित्त कारण हो सकता है। इस प्रकार उपनिषद्दर्शन निर्दोष है ॥ ३७ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
प्रथमः पादः ॥ १ ॥

———

अथ वेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये
द्वितीयः पादः

रचनानुपपत्त्यधिकरणम् ॥ १–१० ॥

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—वेदान्तविरोधिनां सांख्यादिदर्शनानां खण्डनमस्मिन् द्वितीयपा[illegible] क्रियते। अचेतनप्रधानेन रचनानुपपत्तेश्च हेतोर्नाचेतनं जगत्कारणमित्य[illegible] मातव्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—रचनानुपपत्तेः=संसार-रचना की उपपत्ति न लगने से। च= भी। अनुमानम्=अचेतन प्रधान। न=(जगत् का कारण) नहीं [illegible] सकता ॥ १ ॥

भाषार्थः—विविध सृष्टि की रचना की सिद्धि अचेतन प्रधान द्वारा [illegible] होने से प्रधान जगत् का कारण नहीं हो सकता ॥ १ ॥

प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—चशब्दोऽनुपपत्तिपदानुवृत्त्यर्थः। सृष्ट्यादौ साम्यावस्थापरित्याग[illegible] रूपप्रधानस्य प्रवृत्तिरिति चेत्तथाऽपि रचनानुपपत्तिः। यथा लोके चेतनाभाव[illegible] न्मृदादीनामप्रवृत्तिः ॥ २ ॥

पदार्थः—प्रवृत्ते.=सृष्टि के लिये प्रधान की प्रवृत्ति की उपपत्ति न लग[illegible] के कारण। च=भी ॥ २ ॥

भाषार्थः—सृष्टि के आदि में साम्यावस्था का परित्याग करके प्रधान [illegible] जगत्-रचना में प्रवृत्ति होती है, ऐसा सांख्य का तर्क उचित नहीं, क्योंकि बिना चेतन के जड प्रकृति में सृष्टि-रचना की प्रवृत्ति ही नहीं होती ॥ २॥

पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—यथा वत्सविवृद्ध्यर्थं दुग्धं स्वभावेनैव प्रवर्तते तथा प्रधानम[illegible] पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं स्वभावेनैव प्रवर्तते इति चेन्न। चेतनधेनुस्नेहेनाचेतनदुग्ध[illegible]

वृत्तिर्निम्नभूम्यपेक्षया च जलप्रवृत्तिर्भवति–'सोऽप्सु तिष्ठन् योऽपोऽन्तरो यमयति' (बृ० ३।७।४) 'एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते' (बृ० ३।८।७)॥ ३॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो कि। पयोऽम्बुवत् = दुग्ध और जल की तरह। तत्र = उस प्रधान में। अपि = भी (प्रवृत्ति होती है)॥ ३॥

भाषार्थः—जैसे बछड़े की वृद्धि के लिये स्वभाव से दुग्ध स्तनों में उतर आता है और जल स्वभाव से ही लोगों के उपकारार्थ नीचे की ओर बहता है। ऐसे ही प्रधान भी स्वभाव से ही सृष्टि-रचनार्थ प्रवृत्त होता है—यह कहना उचित नहीं। क्योंकि उन जड दुग्ध और जल का प्रेरक चेतन ही है। जैसा कि 'जो जल में रहकर जल का प्रेरक है', 'हे गार्गि! इस अक्षर ब्रह्म की आज्ञा से सब नदियाँ चलती हैं' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध है। लोक में देखते हैं कि चेतन गाय के स्नेह से तथा चेतन बछड़े के चूसने से दूध स्तनों में उतरता है और निम्न भूमि में ही जल स्वभाव से बहता है। अतः सिद्ध हुआ कि जड प्रधान जगत् का कारण नहीं है॥ ३॥

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात्॥ ४॥

सूत्रार्थः—सांख्यमते गुणानां साम्यावस्थाया व्यतिरेकेण प्रधानस्य प्रवर्तकं निवर्तकं वा न किञ्चिद् बाह्यवस्त्वपेक्ष्यमस्ति। पुरुषस्तूदासीन एवेति प्रधानस्यानपेक्षत्वान्न प्रधानस्य जगत्कारणत्वम्॥ ४॥

पदार्थः—च = और। व्यतिरेकानवस्थितेः = (प्रधान से) भिन्न की स्थिति न होने से। अनपेक्षत्वात् = अपेक्षा न रखने के कारण (प्रधान जगत् का कारण नहीं है)॥ ४॥

भाषार्थः—सांख्यमत में तीन गुणों की साम्यावस्था को ही प्रधान कहते हैं। इन गुणों के अतिरिक्त प्रधान का प्रवर्तक (प्रेरक) अथवा निवर्तक (निवारक) कोई नहीं है। और प्रधान स्वयं अपेक्षा नहीं रखता। पुरुष उदासीन है। अतः प्रधान जगत् का कारण नहीं है॥ ४॥

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत्॥ ५॥

सूत्रार्थः—यथा तृणपल्लवादीनां स्वभावेनैव दुग्धाकारेण परिणामस्तथा प्रधानस्य स्वभावेनैव महदाद्याकारेण परिणामो भवतीति चेन्न चेतनधेन्वादि-

निमित्तापेक्षयैव तृणादीनां दुग्धाकारत्वं संभवति। अन्यत्र वृषभादिषु ताह
परिणामाभावात् ॥ ५ ॥

पदार्थः—अन्यत्र = गाय से अन्य बैल आदि में। अभावात् = दुग्ध
अभाव होने से। च = भी। तृणादिवत् = तृणादि की तरह। न = नहीं दे
जाता ॥ ५ ॥

भाषार्थः—जैसे तृण-पत्र आदि का स्वभाव से ही दुग्धाकार में परिव
हो जाता है वैसे ही प्रधान का भी महत्तत्त्व; अहंकारादि में परिवर्तन हो जा
है, यदि ऐसा कहो तो यह उचित नहीं है; क्योंकि चेतन धेनु आदि के निमि
से ही तृण आदि दुग्ध रूप में परिणत होते हैं, अन्यत्र बैल आदि में ऐ
परिणाम नहीं होता ॥ ५ ॥

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—प्रधानस्य स्वाभाविक्याःप्रवृत्तेरभ्युपगमेऽपि मोक्षादिपुरुषार्थाभा
स्यात्। तत्स्वाभाविकीं प्रवृत्तिं विनाऽन्यस्यानपेक्षत्वात्पुरुषस्याप्यनपेक्षत्व
तथा च पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं प्रधानस्य प्रवृत्तिरिति सांख्यप्रतिज्ञाहानिः ॥ ६॥

पदार्थः—अभ्युपगमे = प्रधान की प्रवृत्ति स्वीकार करने पर। अपि = भी
अर्थाभावात् = प्रयोजन के न होने से दोष ज्यों-का-त्यों है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—प्रधान की स्वाभाविकी प्रवृत्ति मानने पर भी भोग-मोक्षा
पुरुषार्थ का अभाव होगा; क्योंकि जो प्रधान अपनी प्रवृत्ति के लिये भी कि
की अपेक्षा नहीं रखता, वह भोग-मोक्षादि पुरुषार्थ की भी अपेक्षा न
करेगा। इससे पुरुष के भोग और मोक्ष के लिये प्रधान की प्रवृत्ति हो
है, इस सांख्य-प्रतिज्ञा की हानि होगी ॥ ६ ॥

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—यथा पङ्गुरन्धं पुरुषमधिष्ठाय प्रवर्तते, यथा चायस्कान्तोऽय
ऽयः प्रवर्तयति तथा प्रधानमपि पुरुषः प्रवर्तयति चेत्तथापि न दोषविमोक्षो य
पुरुषश्चोदासीनोऽतः प्रवृत्त्यभावः। पुरुषस्य स्वभावात्प्रवृत्तिरिति सांख्यसिद्धा
हानिः ॥ ७ ॥

पदार्थः—पुरुषाश्मवत् = (अन्धे को) पंगु पुरुष के समान अश्म
(लोहे को) चुम्बक के समान। चेत् = यदि ऐसा कहो। तथापि = तो भी
दोष से मुक्ति नहीं होगी ॥ ७ ॥

भाषार्थः—जैसे लँगड़ा अंधे पुरुष पर चढ़कर उसको चलाता है, और पत्थर अयस्कान्तमणि लोहे को चलाती है; वैसे ही प्रधान को भी पुरुष चलाता है। यदि ऐसा कहो तो भी उक्त दोष से मुक्ति नहीं होगी और पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये प्रधान की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है—इस सांख्य-सिद्धान्त की हानि हो जायगी ॥ ७ ॥

अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—प्रधानप्रवृत्तौ सत्यां गुणानां विषमत्वेऽङ्गाङ्गीभावः स्यात्। अङ्गाङ्गीभावे साम्यावस्थारूपप्रधानस्य विनाशश्च स्यादतो नाङ्गाङ्गीभावः ॥ ८ ॥

पदार्थः—च = और। अङ्गित्वानुपपत्तेः = अङ्गाङ्गीभाव अर्थात् गुणों की न्यूनाधिकता सिद्ध न होने से प्रधान जगत्कारण नहीं है ॥ ८ ॥

भाषार्थः—सांख्यमतमें गुणों के अङ्गाङ्गीभाव को मानकर प्रधान का जगत् के रूप में परिणत होना माना गया है। अङ्गाङ्गीभाव गुणों की विषमता अर्थात् न्यूनाधिकता के बिना नहीं हो सकता, क्योंकि जो गुण अधिक होगा वह दूसरे अल्पगुण का अङ्ग होगा। एवं गुणों की विषमता से साम्यावस्था का ह्रास होगा और साम्यावस्था के ह्रास से प्रधान का नाश होगा, क्योंकि सांख्यसिद्धान्त में गुणों की साम्यावस्था ही प्रधान का लक्षण है। प्रधान के नाश से प्रधानकारणवाद का नाश सिद्ध है ॥ ८ ॥

अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—अन्यथानुमितौ कार्यवशेन गुणानां विषमस्वभावाभ्युपगमेऽपि ज्ञानशक्तिवियोगात्प्रधानस्य रचनानुपपत्तिः। प्रधाने ज्ञशक्तिभावेऽपि न तत्सिद्धिः। कुतः ? चेतनस्य जगदुपादानत्वे ब्रह्मवादप्रसङ्गात् ॥ ९ ॥

पदार्थः—अन्यथा = दूसरे प्रकार से। अनुमितौ = अनुमान करने पर। च = भी। ज्ञशक्तिवियोगात् = ज्ञानशक्ति न होने से ॥ ९ ॥

भाषार्थः—दूसरे प्रकार से भी कार्यानुसार गुणों की विषमता मान लेने पर प्रधान में ज्ञानशक्ति के अभाव से सृष्टि-रचना का असम्भव होना आदि दोष ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। प्रधान में ज्ञानशक्ति मान लेने से चेतन ही जगत् का कारण है ऐसा ब्रह्मकारणवाद सिद्ध हो जायगा ॥ ९ ॥

प्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—प्रतिषेधात् परस्परविरोधान्न सांख्यानां मतं समीचीनम् ॥ १० ॥

पदार्थः—प्रतिषेधात् = परस्पर विरोध होने से। च = भी। असमञ्जसम् = असंगत है ॥ १० ॥

भाषार्थः—सांख्यवादी कहीं सात इन्द्रियाँ, कहीं ग्यारह इन्द्रियाँ मानते हैं, इस प्रकार परस्पर विरोधी होने से भी सांख्यसिद्धान्त सर्वथा असंगत है ॥१०॥

महद्दीर्घाधिकरणम् ॥ ११ ॥

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—परिमण्डलं परमाणुस्तत्परिमाणं पारिमाण्डल्यम्, यथा नैयायिकानां मते परिमण्डलादणुह्रस्वपरिमाणकं द्व्यणुकमुत्पद्यते। तस्मिन् द्व्यणुके परिमाणुगतं पारिमाण्डल्यं पारिमाण्डल्यान्तरं नोत्पादयति। तथा च द्व्यणुकान्महद्दीर्घपरिमाणकस्त्र्यणुक उत्पद्यते, तद्गतश्च ह्रस्वपरिमाणं नोत्पद्यते, तथैव चेतनब्रह्मणो जगदुत्पद्यते, ब्रह्मगतश्च चेतनं नोत्पद्यते ॥ ११ ॥

पदार्थः—ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् = ह्रस्व-द्व्यणुक (दो परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न वस्तु) और परिमण्डल-परमाणु से (परमाणु के स्वरूपगत विशेष परिमाण को पारिमाण्डल्य कहते हैं)। महद्दीर्घवत् = महत्-त्र्यणुक के परिमाण और दीर्घ—चतुरणुक के परिमाण की भाँति। वा = ही ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जैसे नैयायिकों के मत में परिमण्डल से अणु ह्रस्व परिमाणवाला द्व्यणुक उत्पन्न होता है, उस द्व्यणुक में परिमाणगत पारिमाण्डल्य दूसरे पारिमाण्डल्य को नहीं उत्पन्न करता है। वैसे ही द्व्यणुक से महद्दीर्घ परिमाणवाला त्र्यणुक उत्पन्न होता है, तद्गत ह्रस्वपरिमाण नहीं। इसी प्रकार चेतन ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होता है, ब्रह्मगत चेतन नहीं उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

परमाणुजगदकारणाधिकरणम् ॥ १२-१७ ॥

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—सृष्ट्यादौ परमाणुसंयोगात्पञ्चभूतोत्पत्तिः प्रलये च द्व्यणुकादिविभागात्पञ्चभूतविनाश इति वैशेषिकोक्तिर्न सम्यक्। कुतः ? सृष्टेराद्यन्तकाले

परमाणूनां कर्मनिमित्ताभावात्संयोगविभागौ नैव संघटेते। तस्माद्धेतोः सृष्टि-प्रलयौ च न संघटेते ॥ १२ ॥

पदार्थः—उभयथा=दोनों प्रकार से। अपि=भी। कर्म=परमाणुओं में क्रिया का होना। न=सिद्ध न होगा। अतः=इसलिये कर्म के अभाव से। तदभावः=द्वयणुकादि से जगदुत्पत्ति का अभाव हो जायगा ॥ १२ ॥

भाषार्थः—सृष्टि के आदि में परमाणुओं के संयोग से पञ्चभूतों की उत्पत्ति और प्रलय में द्वयणुकादिविभाग से पञ्चभूतों का विनाश—इन दोनों प्रकारों से यह वैशेषिकों का सिद्धान्त असंगत है। क्योंकि सृष्टि के आदि तथा अन्त में कर्महीन परमाणुओं से संयोग और विभाग असंभव हैं, संयोग-विभाग के अभाव से सृष्टि के उत्पत्ति-प्रलय भी असंभव होंगे ॥ १२ ॥

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—वैशेषिकमते समवायाङ्गीकारेऽपि कस्मिंश्चिदन्यसमवाये समवायस्य समवायोपलब्धेर्न सृष्टिप्रलयसिद्धिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—समवायाभ्युपगमात्=समवाय के स्वीकार करने पर। च=भी। साम्यात्=समता होने से। अनवस्थितेः=अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी ॥ १३ ॥

भाषार्थः—वैशेषिक मत में समवाय के अङ्गीकार करने पर भी जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का अभाव ही सिद्ध होगा; क्योंकि जैसे दो परमाणुओं से उत्पन्न द्वयणुक नामक कार्य उन अणुओं से अत्यन्त भिन्न होकर भी समवाय-सम्बन्ध उन दो अणुओं में रहता है, इसी प्रकार परमाणुओं से अत्यन्त भिन्न समवाय भी किसी अन्य समवाय-सम्बन्ध से परमाणुओं में रहेगा, क्योंकि भेद दोनों में समान है। एवं एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे समवाय-सम्बन्ध की कल्पना होते रहने से अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी। अतः समवाय की सिद्धि न होने से द्वयणुक की उत्पत्त्यादि क्रम से सृष्टि-प्रलय दोनों सिद्ध नहीं हो सकते। अतः परमाणुकारणवाद उपयुक्त नहीं है ॥ १३ ॥

नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—परमाणूनां प्रवृत्तिस्वभावत्वे स्वीकारे नित्यमेव प्रवृत्तेः प्रलयाभावः। तेषां निवृत्तिस्वभावत्वे च नित्यमेव निवृत्तेः सृष्ट्यभावः। उभयस्वभावत्वे च विरोधादसङ्गतिः। तस्मादपि न परमाणुकारणवादसिद्धिः ॥ १४ ॥

पदार्थः— च = तथा । नित्यमेव = सदा ही । भावात् = सृष्टि तथा प्रलय का भाव बना रहने से ॥ १४ ॥

भाषार्थः—परमाणुओं को प्रवृत्तिस्वभाववाला मानने से सदा ही जगत् की उत्पत्ति की प्रवृत्ति बनी रहने से जगत् का प्रलय नहीं होगा । परमाणुओं को निवृत्तिस्वभाववाला मानने से नित्य ही निवृत्तिस्वभाव के कारण सृष्टि की उत्पत्ति ही नहीं होगी । उभयस्वभाववाला मानने से एक वस्तु में दो विरोधी धर्म टिक नहीं सकते, अतः किसी प्रकार भी परमाणुकारणवाद सिद्ध नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—भूम्युदकतेजःपवनेति चतुर्विधाः परमाणवो रूपादिमन्तो नित्याश्चेति वैशेषिका अभ्युपगच्छन्ति । तन्निरालम्बनमेव । यतो रूपमत्त्वात् परमाणूनामणुत्वनित्यत्वविपर्ययः प्रसज्येत । परमकारणापेक्षया स्थूलत्वम् नित्यत्वञ्च तेषामभिप्रेतविपरीतप्रसङ्गः स्यात् । कुतः ? लोके पटस्य स्वकारण भूततन्त्वपेक्षया स्थूलत्वमनित्यत्वञ्च दृष्टत्वात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—रूपादिमत्त्वात् = रूपवान् होने से । च = भी । विपर्ययः = विपरीत । दर्शनात् = देखा गया है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—वैशेषिक पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चार प्रकार के परमाणुओं को रूपवाला तथा नित्य मानते हैं । उनका यह सिद्धान्त सर्वथा निराधार है, क्योंकि परमाणुओं को रूपवाला मानने से उनमें नित्यत्व और अणुत्व के विपरीत अनित्यत्व तथा स्थूलत्व का प्रसङ्ग होगा । क्योंकि परमकारण की अपेक्षा से वे स्थूल और अनित्य हो जायँगे । इस प्रकार वैशेषिकों के अभिप्राय से विपरीत होगा । क्योंकि संसार में देखा जाता है कि वस्त्र अपने परमकारण तन्तुओं की अपेक्षा से स्थूल और अनित्य है ॥ १५ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—चतुर्विधभूतानि स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतरसूक्ष्मतमेति न्यूनाधिक गुणोपेतानि लोके दृश्यन्ते । तद्वत्परमाणूनामपि न्यूनाधिकगुणवत्त्वं स्यान्न वेत्युभयथापि दोषादविमुक्तिः ॥ १६ ॥

पदार्थः--उभयथा = दोनों प्रकार से। च = भी। दोषात् = दोष होने से ॥ १६ ॥

भाषार्थः—संसार में स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम—ये न्यूनाधिक गुणोंवाले चार प्रकार के भूत देखे जाते हैं। इसी प्रकार परमाणुओं को भी न्यूनाधिक गुणोंवाले मानें या गुणों से रहित मानें, दोनों प्रकार से दोष आता है। अतः परमाणुकारणवाद दोषमुक्त नहीं है ॥ १६ ॥

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः--अयं परमाणुकारणवादो न शिष्टैः परिगृहीतोऽतो वेदवादिभिरत्यन्तमेवानादरणीयः ॥ १७ ॥

पदार्थः--अपरिग्रहात् = मनु आदि वेदवादी श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा अग्राह्य होने से। च = भी। अत्यन्तमनपेक्षा = सर्वथा अत्यन्त उपेक्षणीय है ॥ १७ ॥

भाषार्थः—मनु आदि श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा अग्राह्य होने से यह परमाणु कारणवाद अत्यन्त उपेक्षणीय है ॥ १७ ॥

समुदायाधिकरणम् ॥ १८-२७ ॥

समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः--परिमाणहेतुको भूतभौतिकसमुदायो बाह्यः। रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारा इति पञ्चस्कन्धहेतुकश्चित्तचैत्त्यसमुदाय आन्तर इत्युभयहेतुके समुदाये स्वीकृतेऽपि तदप्राप्तिः, समुदायाप्राप्तिरित्यर्थः; समुदायिनामचेतनत्वात् ॥ १८ ॥

पदार्थः—उभयहेतुके = बाह्य और आन्तर ऐसे दो प्रकारके। समुदाये = समुदायों के स्वीकार करने पर। अपि = भी। तदप्राप्तिः = उस समुदाय की सिद्धि नहीं होती ॥ १८ ॥

भाषार्थः—परमाणु जिनके हेतु हैं ऐसे पृथिवी, जल, तेज और वायु ये चार भूत-समुदाय और रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चार भौतिक-समुदाय हैं। इन दोनों भूत-भौतिक समुदायों को बाह्य समुदाय कहते हैं। रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार ये पाँच स्कन्ध जिनके हेतु हैं ऐसा चित्त-चैत्य आन्तर समुदाय कहलाता है। प्रत्येक स्कन्ध का लक्षण इस प्रकार है। विषयसहित इन्द्रियों को रूपस्कन्ध कहते हैं। यही बाह्य समुदाय है। आलय-

विज्ञान अर्थात् आभ्यन्तरीय विज्ञान-प्रवाह को विज्ञानस्कन्ध कहते हैं; इसीसे अहं की प्रतीति होती है। सुख-दुःख का अनुभव ही वेदनास्कन्ध है। गाय, घोड़ा आदि नामविशिष्ट प्रतीति ही संज्ञास्कन्ध है। राग-द्वेष-मोह, धर्म-अधर्म आदि संस्कारस्कन्ध हैं। इनमें चित्तस्वरूप विज्ञानस्कन्ध ही आत्मा माना जाता है। अन्य चार स्कन्ध चैत्य हैं। एवं बाह्य-आन्तर समुदाय के स्वीकार करने पर भी वह समुदाय सिद्ध नहीं होता, क्योंकि समुदायों के अन्तर्गत जो पदार्थ हैं वे अचेतन हैं। उनसे समुदाय (समूह) बनना असम्भव है। दो समुदायों के अतिरिक्त तीसरी प्रेरक चेतन वस्तु बौद्धमत में है नहीं। एवं समुदाय के अभाव से लोकयात्रा का भी लोप हो जायगा। अतः वैभाषिक तथा सौत्रान्तिकों का मत मान्य नहीं है। बुद्ध के चार प्रधान शिष्य थे – सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक; इन चारों सिद्धान्तों में कुछ-कुछ भेद होने से बौद्धमत इन चारों के नाम से चार भागों में विभाजित हो गया। इनमें सौत्रान्तिक और वैभाषिक मत की कुछ समानता का इस प्रकरण में खण्डन किया है ॥ १८ ॥

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—इतरेतरप्रत्ययत्वादविद्यादयः परस्परहेतुकाः। तत्राप्यविद्यादयो जन्मादीनां कारणम्। जन्मादयश्चाविद्यादीनां कारणमित्येव समुदायोत्पत्तेर्लोकयात्रासिद्धिरिति चेन्न। कस्मात्? उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वादविद्यादीनां पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरस्योत्पत्तिनिमित्तत्वात्संघातोत्पत्तेर्निमित्तत्वाभावस्तदभावान्न लोकयात्रासिद्धिः ॥ १९ ॥

पदार्थः—इतरेतरप्रत्ययत्वात् = अविद्यादि के परस्पर एक दूसरे के कारण होने से संघात बन सकेगा। चेत् = यदि। इति = ऐसा कहो तो। न = यह कहना उचित नहीं है। उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् = क्योंकि अविद्यादि केवल उत्पत्ति में कारण हैं ॥ १९ ॥

भाषार्थः—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण, शोक, परिवेदना, दुःख और दुर्मनस्ता—ये परस्पर एक दूसरे के कारण हैं। इनमें अविद्या, संस्कार आदि जन्मादि के कारण और जन्मादि अविद्या आदि के कारण हैं। एवं परस्पर कार्यकारणभाव से घटीयन्त्र (अरघट्ट) के समान सदा चलते रहने से संघात (समुदाय) सिद्ध होता है। उससे लोक-व्यवहार की सिद्धि हो जायगी।

यह क्षणभङ्गवादी सुगत-मत का सिद्धांन्त समीचीन नहीं है; क्योंकि अविद्या आदि यद्यपि परस्पर में कारण हैं, तो भी अविद्या आदि में जो पूर्व-पूर्व कहे हैं वे बाद में कहे हुए संस्कार आदि की उत्पत्तिमात्र में कारण हैं, संघात की उत्पत्ति में नहीं। अतः संघात के अभाव से लोक-व्यवहार असम्भव है॥ १९॥

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॥ २०॥

सूत्रार्थः—यदुक्तमविद्यादिकमुत्पत्तिमात्रनिमित्तकं न समुदायस्येति तन्निराकरोति। पूर्वक्षणनिरोधाद् विनष्टत्वात्तस्योत्तरक्षणस्य कारणत्वमसिद्धमित्येवं न सौगतमतसिद्धिः॥ २०॥

पदार्थः उत्तरोत्पादे = उत्तरक्षण की उत्पत्ति होने पर। पूर्वनिरोधात् = पूर्वक्षण के कार्य का नाश हो जाने से। च = तथा॥ २०॥

भाषार्थः—अविद्यादिक परस्पर उत्पत्तिमात्र के निमित्त हैं, संघात के नहीं। ऐसा पूर्व में कहा, किन्तु वस्तुतः वे उत्पत्तिमात्र में भी निमित्त नहीं हैं; क्योंकि जब उत्तरक्षण की उत्पत्ति होती है, तब पूर्वक्षण का कार्य नष्ट हो जाता है। जो नष्ट हो गया वह उत्तरक्षण का कारण नहीं हो सकता। इसी से सुगत-मत असंगत है॥ २०॥

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा॥ २१॥

सूत्रार्थः— असति हेतौ विषयकरणसहकारिसंस्काररूपहेतुचतुष्टयाच्चित्तचैत्ता उत्पद्यन्त इति क्षणिकवादो हीयेत। अथोत्तरक्षणोत्पत्तिर्यावत् पूर्वक्षणोऽवतिष्ठत इति चेत्तत्रापि हेतुफलयोः (कारणकार्ययोः) यौगपद्यत्वात्क्षणिकाः सर्वे संस्कारा इति प्रतिज्ञोपरोधः स्यात्॥ २१॥

पदार्थः—असति = कारण के अभाव में। प्रतिज्ञोपरोधः = प्रतिज्ञा की हानि है। अन्यथा = नहीं तो। यौगपद्यम् = कार्य-कारण की एक काल में स्थिति माननी पड़ेगी॥ २१॥

भाषार्थः—यदि कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति मानें तो विषय, करण, सहकारी और संस्कार इन चार प्रकार के कारणों से चित्त (रूप आदि का ज्ञान) और चैत्त (चित्तात्मक सुखादि) रूप कार्य उत्पन्न होते हैं। इस क्षणिकवाद की प्रतिज्ञा का बाध होगा और जो उत्तरक्षण की उत्पत्तिपर्यन्त पूर्वक्षण रहता है ऐसा कहें तो कार्य-कारण की एक काल में स्थिति होने से सब

संस्कार (पदार्थ) क्षणिक हैं–क्षणिकवाद की यह प्रतिज्ञा बाधित हो जायगी, अतः क्षणिकवाद अग्राह्य है ॥ २१ ॥

प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधयोरसंभवः । कस्मात् ? उत्तरपूर्व क्षणयोः कार्यकारणप्रवाहस्याविच्छेदात् ॥ २२ ॥

पदार्थः–प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिः = प्रतिसंख्यानिरोध—बुद्धिपूर्वक सहेतुक पदार्थों का नाश, अप्रतिसंख्यानिरोध—अबुद्धिपूर्वक अहेतुक पदार्थों का नाश, अप्राप्ति–असम्भव हैं । अविच्छेदात् = अच्छेद्य होने से ॥ २२ ॥

भाषार्थः—प्रतिसंख्यानिरोध और अप्रतिसंख्यानिरोध ये दोनों निरोध (नाश) असम्भव हैं । क्योंकि उत्तरक्षण और पूर्वक्षण का जो कार्य-कारणरूप प्रवाह है वह अच्छेद्य है ॥ २२ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधान्तर्भूतोऽविद्यादिकानां निरोध इति क्षणिकवादोक्तिर्न सम्यक् । कुतः ? अविद्यानिरोधसहेतुकत्वे सर्वपदार्थानां क्षणिकत्वं स्वाभाविकमिति बौद्धमतस्यासिद्धिः । निर्हेतुकत्वे चाविद्यानिरोधोपदेशो निरर्थक इत्युभयथा दोषात् ॥ २३ ॥

पदार्थः—उभयथा = दोनों प्रकार से । च = भी । दोषात्—दोष होने से ॥ २३ ॥

भाषार्थः—प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोध के अन्तर्भूत अविद्या आदि का नाश मानना—यह क्षणिकवाद का मत युक्तिसंगत नहीं, क्योंकि अविद्या का नाश सहेतुक अर्थात् यम-नियमादि अङ्गों सहित ज्ञान से होता है या निर्हेतुक–(बिना साधन के) अपने आप हो जाता है । प्रथम पक्ष में अप्रतिसंख्यानिरोध की (निर्हेतुक–अपने आप सब पदार्थों के नाशरूप प्रतिज्ञा की) हानि होगी । दूसरे पक्ष में यम-नियमादिपूर्वक ज्ञानोपदेश निष्फल होगा । इस तरह दोनों प्रकार से दोष है ॥ २३ ॥

आकाशे चाविशेषात् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—आवरणाभाव आकाश इति क्षणिक (बौद्ध) वादो न समीचीनः । कुतः ? प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधयोरिव पृथिव्यादिभिरविशेषादाकाशस्यापि

वस्तुत्वम् । 'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' (तै० २।१) यथेति श्रुत्योक्तम् ॥ २४॥

पदार्थः—आकाशे = आकाश में। च = भी। अविशेषात् = अन्तर न होने से ॥ २४॥

भाषार्थः—आवरण के अभाव को आकाश कहते हैं। यह बौद्धवाद का वचन समीचीन नहीं, क्योंकि प्रतिसंख्या अप्रतिसंख्या की भाँति पृथ्वी आदि से कोई अन्तर न होने से आकाश की भी सत्ता है। 'इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ' यह श्रुति इसमें प्रमाण है ॥ २४॥

अनुस्मृतेश्च ॥ २५॥

सूत्रार्थः—वैनाशिकः (क्षणिकवादो बौद्धो वा) आत्मादिसर्ववस्तूनां क्षणिकत्वं यद्वदति तन्न सम्भवति। कुतः? आत्मनः क्षणिकत्वं पुरुषान्तरदृष्टविषये पुरुषान्तरस्य स्मृत्यदर्शनात् ॥ २५॥

पदार्थः—अनुस्मृतेः = देखी हुई वस्तु का स्मरण करने से। च=भी ॥ २५॥

भाषार्थः—वैनाशिक आत्मा आदि सब वस्तुओं को क्षणिक मानता है, यह असम्भव है। क्योंकि अनुभव अथवा उपलब्धि के बाद वस्तु का स्मरण करना अनुस्मृति है। जो अनुभव करता है वही पीछे उसका स्मरण करता है। एक पुरुष की अनुभूत वस्तु का दूसरा पुरुष स्मरण नहीं कर सकता। क्षणिकवादी के मत में अनुभव करनेवाला एक क्षण में ही नष्ट हो जायगा, फिर उसका स्मरण कौन करेगा? मनुष्यों को पिछले जन्म की अनुस्मृति इस जन्म में होती है। आत्मा के नित्य होने पर ही इतने दीर्घकाल की अनुस्मृति हो सकती है। आत्मा को क्षणिक मानने पर यह असम्भव है। अतः क्षणिकवादी बौद्धमत अग्राह्य है ॥ २५॥

नासतोऽदृष्टत्वात् ॥ २६॥

सूत्रार्थः—नष्टबीजादंकुरोत्पत्तिर्नष्टक्षीराद्दधि तथा विनष्टमृत्पिण्डाद्घट इति सौगतमतमसिद्धम् ॥ २६॥

पदार्थः—असतः=असत् से सत् को उत्पत्ति। अदृष्टत्वात्=देखी नहीं गयी ॥ २६॥

भाषार्थः—नष्ट बीज से अंकुर पैदा होता है, नष्ट दुग्ध से दही और नष्ट मिट्टी के पिण्ड से घड़ा उत्पन्न होता है—ऐसा माननेवाले सौगत (बौद्ध) मत असिद्ध है, क्योंकि अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं देखी गयी है ।। २६ ।।

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ।। २७ ।।

सूत्रार्थः—अभावाद् भावोत्पत्तौ सत्यामुदासीनानामपि यत्नविनैवार्थसिद्धिः स्यात्तस्मान्नासतः सदुत्पत्तिः ।। २७ ।।

पदार्थः—च = और । एवम् = इस प्रकार अभाव से भाव की उत्पत्ति मानने से । उदासीनानाम् = उदासीन पुरुषों को । अपि = भी । सिद्धिः = यत्न के बिना ही अभीष्ट सिद्धि हो जायगी ।। २७ ।।

भाषार्थः— उपर्युक्त प्रकार से अभाव से भाव की उत्पत्ति मान लेनेपर उदासीन पुरुष को भी बिना यत्न के ही अभीष्ट सिद्धि हो जायगी, जो सर्वथा असम्भव है । अतः सिद्ध हुआ कि वैभाषिकों और सौत्रान्तिकों का मत भ्रान्तिमूलक ही है ।। २७ ।।

अभावाधिकरणम् ।। २८-३२ ।।

नाभाव उपलब्धेः ।। २८ ।।

सूत्रार्थः—घटपटादीनां बाह्यपदार्थानामनुभवविषयत्वान्नाभावसिद्धिः ।। २८ ।।

पदार्थः—अभावः = बाह्य पदार्थों का अभाव । न = नहीं होता । उपलब्धेः = उनके अस्तित्व की उपलब्धि होने के कारण ।। २८ ।।

भाषार्थः—यहाँ तक बौद्धों के क्षणिकवाद का खण्डन हुआ । अब विज्ञानवाद का खण्डन किया जाता है। विज्ञानवादी बौद्ध (योगाचार) मानते हैं कि प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले घट-पट आदि बाह्य पदार्थ वस्तुतः कुछ हैं नहीं, स्वप्नवत् बुद्धि की कल्पना मात्र हैं। यह कहना ठीक नहीं। घट-पट आदि बाह्य पदार्थों का अभाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उनकी प्रत्यक्ष उपलब्धि (प्राप्ति) होती है ।। २८ ।।

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ।। २९ ।।

सूत्रार्थः—स्वप्नादिप्रत्ययदृष्टान्तेनापि जाग्रत्प्रत्ययार्थाभावो नोपयुक्तः । कुतः? वैधर्म्यात्-स्वप्नादिप्रत्ययस्य जाग्रत्प्रत्ययस्य च बाधिताबाधितविषयत्व-वैधर्म्यात् ।। २९ ।।

पदार्थः—वैधर्म्यात् = स्वप्न तथा जाग्रत् के पदार्थों में भेद होने से। च = भी। स्वप्नादिवत् = स्वप्नादि की भाँति। न = जाग्रत् के पदार्थ नहीं हो सकते ॥ २९ ॥

भाषार्थः—स्वप्नादि के दृष्टान्त से भी जाग्रत् के प्रत्यक्ष पदार्थों का अभाव युक्त नहीं, क्योंकि स्वप्न और जाग्रत् के पदार्थों में भेद होने से जाग्रत् के पदार्थ स्वप्नवत् नहीं हो सकते ॥ २९ ॥

न भावोऽनुपलब्धेः ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—विनाप्यर्थेन (वस्तुना) वासनावैचित्र्याद् घटपटादिज्ञानवैचित्र्यं न युक्तम्। कुतः ? बाह्यपदार्थानामनुपलब्धेः ॥ ३० ॥

पदार्थः—भावः = वासनाओं का अस्तित्व (सत्ता) न = नहीं है। अनुपलब्धेः = बाह्य वस्तु की उपलब्धि (प्राप्ति) न होने से ॥ ३० ॥

भाषार्थः—वस्तु के बिना ही वासना की विचित्रता से घट-पटादि पदार्थों की विचित्रता है ऐसा कहना उचित नहीं। क्योंकि तुम्हारे पक्ष में बाह्य वस्तुओं का अभाव है। अनुभव किये हुए बाह्य पदार्थ ही वासना के कारण हैं। बाह्य पदार्थों के ज्ञान बिना वासना असम्भव है। अतः विज्ञानवाद असङ्गत है। बाह्य पदार्थसत्य ही हैं ॥ ३० ॥

क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—अहमहमित्यालयविज्ञानं वासनाश्रयमिति बौद्धवादो न समीचीनः तस्यालयविज्ञानस्यापि क्षणिकत्वात् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—क्षणिकत्वात् = अलयविज्ञान के क्षणिक होने से ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—'मैं जानता हूँ' इस आलयविज्ञानरूप बुद्धि को क्षणिकविज्ञान-वादी योगाचार वासनाओं का आधार मानते हैं। यह ठीक नहीं। क्योंकि आलयविज्ञान भी घट-पटादिवत् क्षणिक होने से वासनाओं का आधार नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

सर्वथानुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—किं बहुना सर्वथा प्रत्यक्षादिप्रमाणाभावादनादरणीयोऽयं क्षणिक-वादः श्रेयस्कामैः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—सर्वथानुपपत्तेः = सब प्रकार युक्तिहीन होने से । च = भी ॥ ३२॥

भाषार्थः—सब प्रकार से युक्तिहीन होनें के कारण यह क्षणिकवादी बौद्ध मत आदरणीय नहीं है ॥ ३२ ॥

नैकस्मिन्नसंभवाधिकरणम् ॥ ३३-३६ ॥

नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—सप्तभङ्गीन्यायोऽपि न तेषां समीचीनः । कुतः ? एकस्मिन्नखण्डपरमार्थरूपे वस्तुनि सदसत्त्वादिविरुद्धधर्माणां युगपदसम्भवात् ॥ ३३॥

पदार्थः—एकस्मिन् = एक अखण्ड परमार्थ वस्तु में सत्-असत् रूप दो विरुद्ध धर्म । असम्भवात् = असम्भव होने से । न = समीचीन नहीं है ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—बौद्धमत का खण्डन करके अब जैन (दिगम्बर) मत का खण्डन करते हैं । जैनमत को विवसन मत भी कहते हैं । जैनियों का सप्तभंगी न्याय भी समीचीन नहीं, क्योंकि एक अखण्ड वस्तु में सत्-असत् रूप दो विरूद्ध धर्मों की एकत्र स्थिति असम्भव है । जैनी सात पदार्थ मानते हैं—१. जीव, २. अजीव, ३. आस्रव, ४. संवर, ५. निर्जर, ६. बन्ध, ७. मोक्ष; और पाँच अस्तिकाय मानते हैं—१. जीवास्तिकाय, २ पुद्गलास्तिकाय, ३. धर्मास्तिकाय, ४. अधर्मास्तिकाय, ५. आकाशास्तिकाय । जैनी स्याद्वाद सप्तभङ्गी न्याय को अपना सिद्धान्त मानते हैं । वे सात भङ्ग ये हैं—१. 'स्यादस्ति' = किसी प्रकार से है २. स्यान्नास्ति' = 'कथंचित् नहीं है, ३. 'स्यादस्ति च नास्ति च' = कथंचित् है और नहीं है, ४. 'स्यादवक्तव्यः' = कथंचित् अवाच्य है, ५. 'स्यादस्ति चावक्तव्यः' = कथंचित् है और अवाच्य है, ६. 'स्यान्नास्ति चावक्तव्यः' = कथंचित् नहीं है और अवाच्य है, ७. 'स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः' कथंचित् है और नहीं है एवं अवक्तव्य है ॥ ३३ ॥

एवं चात्माऽकार्त्स्न्यम् ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—अथैकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धधर्मासम्भवो दोषः स्याद्वादे प्रसक्त एवं शरीरपरिमाणत्वेनाङ्गीकृतस्य जीवस्य परिच्छिन्नदोषो द्वितीयः प्रसज्यते । परिछिन्नत्वाद्घटादिवदनित्यत्वञ्चात्मनः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—एवं च=इसी प्रकार। आत्माऽकात्स्न्यम्=आत्मा को परिच्छिन्न (शरीरप्रमाण का) बताना है॥ ३४॥

भाषार्थः—जैसे स्याद्वाद (जैनधर्म) में एक वस्तु में अनेक विरुद्ध धर्मों का समावेशरूप दोष प्रसक्त है, उसी प्रकार जीव को शरीर के बराबर परिमाणवाला मानने से जीव के घटवत् परिच्छिन्न (एकदेशीय) तथा अनित्य होने का दोष भी जैनधर्म को दूषित करता है॥ ३४॥

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः॥ ३५॥

सूत्रार्थः—आत्मनो बृहच्छरीरे वृद्धिः सूक्ष्मशरीरेऽपचय इति पर्यायादपि न च जीवस्य देहपरिमाणत्वं संघटते। कुतः? देहवज्जीवस्याप्युपचयापचयादिदोषप्रसङ्गात्॥ ३५॥

पदार्थः—च=और। पर्यायात्=क्रमशः घटने-बढ़ने से। अपि=भी। न अविरोधः=अविरोध नहीं है। विकारादिभ्यः=जीव में भी जन्मादि विकाररूप दोष की प्राप्ति होने से॥ ३५॥

भाषार्थः—आत्मा हाथी आदि के शरीरों में बड़ा और कीट आदि के शरीरों में छोटे माप का हो जाता है अतः हमारे मत में कोई विरोध नहीं। यह जैनियों का तर्क उपयुक्त नहीं। क्योंकि ऐसा मानने से जीव भी देह के समान जन्मादि दोषों से विकारी हो जायगा॥ ३५॥

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः॥ ३६॥

सूत्रार्थः—मोक्षावस्थायामन्त्यपरिमाणस्य जीवस्य नित्यत्वमिति जैनवादो न समीचीनः। कुतः? अन्त्यपरिमाणवदाद्यमध्यपरिमाणयोर्नित्यत्वप्रसङ्गात् परिमाणत्रयाविशेषोऽतो न सौगतवज्जैनवाद आदरणीयः॥ ३६॥

पदार्थः—च=और। अन्त्यावस्थितेः=अन्तिम मोक्षावस्थामें। उभयनित्यत्वात्=आदि और मध्य दोनों अवस्थाओं के नित्य होने से। अविशेषः=तीनों आदि, मध्य तथा अन्त्य अवस्थाओं में अन्तर न रहेगा॥३६॥

भाषार्थः—मोक्षावस्था में अन्त्यपरिमाण में स्थित जीव नित्य है यह जैनवाद का कथन समुचित नहीं। क्योंकि अन्त्यपरिमाणवत् आदि और मध्य परिमाण के भी नित्य होने से तीनों में समानता होगी। अतः सौगतमत की भाँति जैनमत भी आदरणीय नहीं है॥ ३६॥

पत्यधिकरणम् ॥ ३७–४१ ॥

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः—पत्युरीश्वरस्य जगन्निमित्तमात्रत्वमेव नोपादानत्वमिति पाशुपत शास्त्रमुपेक्षणीयम्। कुतः ? असामञ्जस्यात् । ईश्वरस्य जगत्सर्जने प्रवृत्तौ रागद्वेषादिप्रसङ्गात् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—पत्युः = पशुपति-मत भी । असामञ्जस्यात् = असंगत होने से।

भावार्थः—ईश्वर को जगत् का केवल निमित्त कारण मात्र मानने के कारण पाशुपत मत असङ्गत है। क्योंकि जैसे कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है। उसको अच्छा घड़ा बनने पर राग (प्रेम) और बुरा बनने पर द्वेष होता है। वैसे ही ईश्वर को जगत् का केवल निमित्त कारण मानने से उसको विषम सृष्टि रचने में राग-द्वेष होंगे, जो असंगत हैं ॥ ३७ ॥

सम्बन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—संयोगसमवायादिसम्बन्धानुपपत्तेश्च न पाशुपतशास्त्रसिद्धिः ॥३८॥

पदार्थः—च = और । सम्बन्धानुपपत्तेः = संयोगादि सम्बन्ध के संगत न होने से ॥ ३८ ॥

भावार्थः—संयोगादि सम्बन्ध के संगत न होने से पाशुपत मत आदरणीय नहीं है ॥ ३८ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थः—कुम्भकार इवेश्वरोऽपि प्रधानादीन्यधिष्ठाय प्रवर्तते चेत्तन्न। मृदादिवैलक्षण्यान्न प्रधानमीश्वरस्याधिष्ठेयं भवति ॥ ३९ ॥

पदार्थः—अधिष्ठानानुपपत्तेः = प्रधानादि को लेकर असङ्गत होने से। च = भी ॥ ३९ ॥

भावार्थः—कुम्हार की तरह ईश्वर भी प्रधानरूप उपादान कारण को लेकर जगत् रचने में प्रवृत्त होता है, ऐसा तार्किकों का तर्क युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि कुम्हार साकार है और मिट्टी भी साकार है। किन्तु ईश्वर निराकार है और प्रधान भी निराकार है। शरीररहित निराकार ईश्वर द्वारा निराकार प्रधान से सृष्टि रचना असम्भव है ॥ ३९ ॥

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—यथा जीवो रूपादिविहीनमप्रत्यक्षं चक्षुरादिकरणग्राममधिष्ठाय प्रवर्तते तद्वदीश्वरोऽपि रूपादिहीनमप्रत्यक्षं प्रधानमधिष्ठाय प्रवर्तते चेन्न जीववदीश्वरस्यापि भोगादिप्रसक्तेः ॥ ४० ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो कि। करणादिवत् = जीव के इन्द्रियों का प्रेरक होने की तरह है। न = तो यह ठीक नहीं। भोगादिभ्यः = ईश्वर में भी भोगादि दोष की प्राप्ति होने से ॥ ४० ॥

भाषार्थः—जैसे निराकार जीव निराकार चक्षुरादि इन्द्रियों का प्रेरक है, वैसे ही निराकार ईश्वर निराकार प्रधान का प्रेरक हो सकता है। यह तर्क भी उचित नहीं है, क्योंकि जीव प्रारब्ध भोगों के कारण इन्द्रियों (के विषयों) में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार ईश्वर को मानने से उसमें भोगादि दोषों की प्राप्ति होगी ॥ ४० ॥

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—ईश्वरोऽनन्तः सर्वज्ञश्च प्रधानं पुरुषाश्चानन्ता इति तार्किका मन्यन्ते। तत्रेश्वरः प्रधानस्य पुरुषाणामात्मनश्च संख्यां परिमाणञ्च वेत्ति न वा। वेत्ति चेत्तत्र प्रधानपुरुषेश्वराणामनित्यत्वं स्याल्लोकवत्। न वेत्ति चेत्तत्रेश्वरस्यासर्वज्ञता स्यादतो न सङ्गतः तार्किकवादः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—अन्तवत्त्वम् = नाशवान् होना। वा = अथवा। असर्वज्ञता = सर्वज्ञता का अभाव ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—ईश्वर अनन्त और सर्वज्ञ है। प्रधान और पुरुष अनन्त हैं, ऐसा तार्किक मानते हैं। वहाँ प्रश्न है कि ईश्वर प्रधान की, पुरुषों की और अपनी संख्या तथा परिमाण जानता है या नहीं। यदि जानता है तो तीनों नाशवान् होंगे, क्योंकि लोक में जाना हुआ पदार्थ अनित्य होता है। यदि नहीं जानता तो ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है। इस प्रकार तार्किक (पाशुपत) का परिकल्पित ईश्वरकारणवाद असंगत है ॥ ४१ ॥

उत्पत्त्यसम्भवाधिकरणम् ॥ ४२–४५ ॥

उत्पत्त्यसम्भवात् ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—एवं वेदविरुद्धधर्मान्निराकृत्य वेदाविरुद्धांशशङ्कां निराकर्तुमिदं प्रकरणमारभ्यते। यथा—

न वासुदेवात्संकर्षणोत्पत्तिः सम्भवति । संकर्षणजीवस्योत्पत्तेः तस्य नित्यत्वदोषप्रसङ्गात् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—उत्पत्त्यसम्भवात् = संकर्षण की उत्पत्ति असम्भव है ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—एक भगवान् वासुदेव ही संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इ चतुर्व्यूहरूप से स्थित हैं। वासुदेव तो ईश्वर है, संकर्षण जीव है, प्रद्यु म्न मन है और अनिरुद्ध अहंकार है। वासुदेव से संकर्षण, संकर्षण से प्रद्यु म्न और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ। ऐसा भागवत में माना गया है, व ठीक नहीं है। वासुदेव से संकर्षण की उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि इससे जी में जन्म-मरणादि दोषों की प्राप्ति होगी और श्रुति में जीव को जन्म-मरण दोषों से रहित बताया है—'न जन्मता है न मरता है।' 'अज, नित्य, शाश्व है।' (कठ० १।२।१८)। जन्मादि दोषों से जीव को भगवत्-प्राप्ति मोक्ष का अभाव होगा। अतः यह भागवत-धर्म वेदविरुद्ध है ॥ ४२ ॥

न च कर्तुः करणम् ॥ ४३ ॥

सूत्रार्थः—कर्तुः संकर्षणसंज्ञाज्जीवात्करणं प्रद्युम्नसंज्ञकं मन उत्पद्यते तस्मादनिरुद्धसंज्ञकोऽहंकारश्चेति भागवता मन्यन्ते तन्न युक्तम्। कर्तुर्देवदत्ता कुठारादिकरणोत्पत्त्यदर्शनात् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—च = तथा। कर्तुः = संकर्षण संज्ञक जीव से। करणम् = प्रद्युम्न संज्ञक मन। न = नहीं उत्पन्न होता है ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—कर्ता संकर्षण से प्रद्युम्न संज्ञक मनरूप करण नहीं उत्पन्न हो सकता है, एवं प्रद्युम्नरूप मन से अनिरुद्धरूप अहंकार भी नहीं उत्पन्न हो सकता, जैसे कि देवदत्त कर्ता में कुठारादि करण नहीं उत्पन्न हो सकते। अ वेदविरुद्ध भागवत-धर्म आदरणीय नहीं है ॥ ४३ ॥

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॥ ४४ ॥

सूत्रार्थः—संकर्षणादीनां त्रयाणां वासुदेववद् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजो रीश्वरीयधर्मभावे तदप्रतिषेधः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—विज्ञानादिभावे = पाञ्चरात्र शास्त्र द्वारा विज्ञानादि षडैश्वर्य सम्पन्न होने पर। वा = भी। तदप्रतिषेधः—उन संकर्षणादि जीवों के जन्मादि का निषेध नहीं होता। यह पूर्वपक्ष है ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—पाञ्चरात्र शास्त्र के अनुसार संकर्षणादि तीनों का वासुदेव के समान विज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज इन छः ऐश्वर्यों से सम्पन्न होने पर भी उन तीनों के जन्मादि का वेद में निषेध नहीं किया, अतः उन संकर्षण आदि तीनों का ईश्वरत्व सिद्ध है। यह पूर्वपक्ष है। इसका खण्डन आगे सूत्र ४५ में किया है ॥ ४४ ॥

विप्रतिषेधाच्च ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थः—वेदप्रतिषेधाच्चासङ्गतमेतन्मतमिति सिद्धम् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—विप्रतिषेधात् = वेदविरुद्ध होने से। च = भी ॥ ४५॥

भाषार्थः—वासुदेव की भांति संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को भी ईश्वर मानने से अनेक ईश्वरवाद सिद्ध होगा और 'एक वासुदेव परमार्थ तत्त्व है' इस तुम्हारे सिद्धान्त की हानि होगी। अतः भागवत-धर्म वेदविरुद्ध होने से सर्वथा असिद्ध है ॥ ४५ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्री-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

———

विवरण

अथ वेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये

तृतीयः पादः

वियदधिकरणम् ॥ १–७ ॥

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—न वियदुत्पत्तिः । कुतः ? अश्रुतेः 'तत्तेजोऽसृजत' (छां० ६।२।३) इत्यत्राकाशस्योत्पत्त्यदर्शनात् ॥ १ ॥

पदार्थः—अश्रुतेः=श्रुति में न होने से । वियत्=आकाश की उत्पत्ति न=नहीं दीखती ॥ १ ॥

भाषार्थः—'उसने तेज (अग्नि) को उत्पन्न किया ।' इस श्रुति से आकाश की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती ऐसा एकदेशी मानता है । यह पूर्वपक्ष है ॥ १ ॥

अस्ति तु ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षपक्षान्तरपरिग्रहे । मास्तु छान्दोग्ये वियदुत्पत्ति 'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः' (तै० २।१) इति तैत्तिरीयके त्वस्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—अस्ति तु=है तो ॥ २ ॥

भाषार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के निराकरण के लिये है । छान्दोग्य में भले ही आकाश की उत्पत्ति न हो । 'इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ' इस तैत्तिरीय श्रुति में तो आकाश की उत्पत्ति स्पष्ट है ॥ २ ॥

गौण्यसम्भवात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—एषा तैत्तिरीयश्रुतिर्गौणी । कस्मात् ? असम्भवात् । कारणसामग्र्यसम्भवान्नाकाशस्योत्पत्तिः ॥ ३ ॥

पदार्थः—असम्भवात्=आकाश की उत्पत्ति असम्भव होने से । गौणी=यह तैत्तिरीय श्रुति गौण है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—यह तैत्तिरीय श्रुति गौण है मुख्य नहीं, क्योंकि आकाश की उत्पत्ति में समवायिकारण आदि सामग्री के अभाव से आकाश की उत्पत्ति असम्भव है ॥ ३ ॥

शब्दाच्च ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—'वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्' (बृ० २ । ३ । ७) इति शब्दाच्च न वियदुत्पत्तिः ॥ ४ ॥

पदार्थः—शब्दात् = श्रुति से । च = भी ॥ ४ ॥

भाषार्थः—'वायु और आकाश नित्य हैं' इस श्रुति से भी आकाश की उत्पत्ति नहीं है ॥ ४ ॥

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—एकस्य सम्भूतशब्दस्य गौणत्वं मुख्यत्वञ्च स्याद् ब्रह्मशब्दवत्–'अन्नं ब्रह्म आनन्दो ब्रह्म' (तै० ३ । २) यथात्र ब्रह्मशब्दोऽन्ने गौण आनन्दे मुख्यश्च तद्वत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—च = और । एकस्य = एक संभूत शब्द का । ब्रह्मशब्दवत् = ब्रह्म शब्द की तरह । स्यात् = हो सकता है ॥ ५ ॥

भाषार्थः—'अन्न ब्रह्म है, आनन्द ब्रह्म है' इस श्रुति में जैसे ब्रह्म शब्द अन्न में गौण और आनन्द में मुख्य है, इसी तरह एक 'संभूत' शब्द आकाश में गौण और तेज में मुख्य है ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञाऽहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—३, ४, ५ इति सूत्रोक्तपूर्वपक्षान् क्रमशो दूषयति । आकाशादि-वस्तुजातस्य ब्रह्माभिन्नत्वान्न प्रतिज्ञाहानिः 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' (छां० ६ । ८ । ७) इत्यादिशब्देभ्यश्च । यदि नाकाशं ब्रह्मकार्यं स्यात्तदा न ब्रह्मणि विज्ञाते आकाशज्ञानं स्यात्ततश्च 'कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' (बृ० ४ । ५ । ६) इति प्रतिज्ञाहानिः स्यात् ॥ ६ ॥

पदार्थः—अव्यतिरेकात्=ब्रह्म से आकाशादि समस्त द्रव्य का अभेद होने से। प्रतिज्ञा-अहानिः = प्रतिज्ञा की रक्षा हो सकती है । शब्देभ्यः=और श्रुतियों से भी यही सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—आकाश को ब्रह्म से अभिन्न मानने पर ही 'एक कारण के ज्ञान से सब कार्य का ज्ञान हो जाता है' इस प्रतिज्ञा की रक्षा हो सकती है। 'किसको जानने से सब जाना जाता है' इत्यादि श्रुतियों से भी यही सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—यावत्किञ्चिद्विकारजातं कटककेयूरकुण्डलादि दृश्यते तावानेव विभागो लोके दृश्यते। तुशब्दः शङ्कानिवारकः। नाविकारे ब्रह्मणि विभागोऽस्ति। पृथिव्यादिविकारेभ्योऽविभागत्वादाकाशोऽपि विकार एव ॥ ७ ॥

पदार्थः—तु = शङ्का-निवारक है। यावद्विकारम् = जितना विकार है वह। लोकवत् = संसार में। विभागः = भेददृष्टि से है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—जैसे सोने के विकार कटक-कुण्डलादि को संसार सोने से भिन्न भेद-दृष्टि से देखता है वैसे ही आकाश, स्त्री-पुत्रादि को ब्रह्म से भिन्न समझता है। वस्तुतः ब्रह्म से उत्पन्न होने से सब जगत् ब्रह्मरूप है ॥ ७ ॥

मातरिश्वाधिकरणम् ॥ ८ ॥

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—एतेन वियदाख्यानेन तदाश्रयो वायुरपि व्याख्यातः ॥ ८ ॥

पदार्थः—एतेन = इस आकाश की उत्पत्तिविषयक व्याख्यान से। मातरिश्वा = वायु को भी। व्याख्यातः = उत्पत्तिवाला तथा विकारी सिद्ध कर दिया ॥ ८ ॥

भाषार्थः—उपर्युक्त आकाश की उत्पत्तिविषयक स्पष्टीकरण से यह सिद्ध हो गया कि वायु भी उत्पत्तिशील और विकारी है ॥ ८ ॥

असम्भवाधिकरणम् ॥ ९ ॥

असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—वियदादिवद्ब्रह्मणोऽप्युत्पत्तिः स्यात्तत्राह—सतो ब्रह्मण उत्पत्त्य सम्भवः। कुतः ? जगत्कारणोत्पत्त्यसम्भवात् ॥ ९ ॥

पदार्थः—असम्भवः = ब्रह्म की उत्पत्ति असम्भव है, क्योंकि। सतः = सत्स्वरूप ब्रह्म की उत्पत्ति। तु = तो। अनुपपत्तेः = सिद्ध नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

भाषार्थः—'आकाश आदि की तरह ब्रह्म की भी उत्पत्ति हो सकती है' यह बात असम्भव है, क्योंकि सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

तेजोऽधिकरणम् ॥ १० ॥

तेजोऽतस्तथा ह्याह ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—कस्मात्तैजस उत्पत्तिः ? तत्राह—मातरिश्वनस्तेजो जायते । तथा ह्याह श्रुतिः—'वायोरग्निरिति' (तै० २ । १) ॥ १० ॥

पदार्थः—अतः = इस वायु से । तेजः=अग्नि उत्पन्न हुआ । तथा हि = वैसा ही । आह = श्रुति भी कहती है ॥ १० ॥

भाषार्थः—छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है—'उस ब्रह्म ने तेज उत्पन्न किया' और तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है—'आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ' इसका समाधान यह है कि अग्नि वायु से उत्पन्न हुई, जैसा कि 'वायु से अग्नि उत्पन्न हुई' इस श्रुति से सिद्ध है । 'ब्रह्म ने अग्नि उत्पन्न की' यह श्रुति परम्परा से अग्नि की उत्पत्ति कहती है, साक्षात् नहीं अर्थात् पहले आकाश और आकाश से वायु को रचकर फिर वायु से अग्नि को रचा, यह अभिप्राय है । अतः दोनों श्रुतियों में कोई भेद नहीं है ॥ १० ॥

अबधिकरणम् ॥ ११ ॥

आपः ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—अत इति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । अतस्तेजस आपो जायन्ते । 'अग्नेरापः' इति श्रुतिः ॥ ११ ॥

पदार्थः—आपः = जल ॥ ११ ॥

भाषार्थः—इस तेज से जल उत्पन्न हुआ, ऐसा ही यह तैत्तिरीय श्रुति भी कहती है—'अग्नेरापः' (तै० २ । १ । २) इति ॥ ११ ॥

पृथिव्यधिकाराधिकरणम् ॥ १२ ॥

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—'ता अन्नमसृजन्त' (छां० ६ । २ । ४) इत्यत्रान्नशब्दः पृथिवीवाचकः । कुतः ? अधिकाराद्, रूपात्, शब्दान्तराच्च । 'तत्तेजोऽसृजत' इत्यधिकारः । 'यत्कृष्णं तदन्नम्' इति रूपम् । 'अद्भ्यः पृथिवी' इति शब्दान्तरः ॥ १२ ॥

पदार्थः—पृथिवी = छां० ६ । २ । ४ इस श्रुति में अन्नशब्द पृथिवीवाचक

है। अधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः = अधिकार से, रूप से तथा शब्दान्तर अर्थात् अन्य श्रुतियों से ॥ १२ ॥

भाषार्थः—'जल ने अन्न रचा' (छां० ६ । २ । ४) इस श्रुति में अन्न शब्द पृथिवीवाचक है। अधिकार से, रूप से तथा दूसरी श्रुतियों से यह सिद्ध है। 'उसने अन्न रचा' यह अधिकार है। 'जो काला है वह अन्न है' यह रूप है। और 'जल से पृथिवी उत्पन्न हुई' यह दूसरी श्रुति है ॥ १२ ॥

तदभिध्यानाधिकरणम् ॥ १३ ॥

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात्सः ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—त्विति पूर्वपक्षव्यावर्तकः। 'तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त' (छां० ६ । २ । ४) इति तत्तत्कार्येक्षणात्मकाभिध्यानादेव सर्वं कार्यं सृजति। कस्मात् ? यत्पृथिव्यामिति लिङ्गात् ॥ १३ ॥

पदार्थः—तु = क्योंकि। तदभिध्यानात् = ईक्षणरूप चिन्तन से। एव=ही। सः = वह परमात्मा। तल्लिङ्गात् = नियन्तृत्वरूप लिङ्ग से ॥ १३ ॥

भाषार्थः—वह ईश्वर 'मैं सृष्टि रचूँ' इस ईक्षणरूप ध्यान से सृष्टि की रचना करता है। 'जो पृथिवी में स्थित होकर उसका नियामक है' (बृ० ३ । ७ । ३) इस श्रुति-लिङ्ग से भी परमात्मा का नियामक होना सिद्ध है ॥ १३ ॥

विपर्ययाधिकरणम् ॥ १४ ॥

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—भूतानामुत्पत्तिक्रमाद्विपर्ययेणैव (विपरीतेनैव) लयक्रम उपपद्यते स्वस्वकारणे कार्याणां लयदर्शनात् ॥ १४ ॥

पदार्थः—तु = किन्तु। अतः = इस भूतों की उत्पत्तिक्रम से। क्रमः = लय का क्रम। विपर्ययेण = विपरीत क्रम से होता है। उपपद्यते च = यही उपयुक्त भी है ॥ १४ ॥

भाषार्थः—भूतों की उत्पत्तिक्रम से लयक्रम विपरीत है। जैसे उत्पत्तिक्रम में ब्रह्म से आकाश आदि भूत उत्पन्न होते हैं, किन्तु लयक्रम में पृथिवी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में और आकाश का परमात्मा में लय होता है। कार्य का कारण में लय ही युक्त है ॥ १४ ॥

अन्तराविज्ञानाधिकरणम् ॥ १५ ॥

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—इन्द्रियबुद्धिमनांसि भूतानामात्मनश्चान्तराले तल्लिङ्गात् तस्याः सृष्टेः गमकात्। 'एतस्माज्जायते प्राणः' (मु० २। १। ३) इत्यादिवाक्यादनुक्रम्यन्ते। तथा चात्मन इन्द्रियबुद्धिमनांसि तेभ्यश्च भूतानीत्यनेन क्रमेणात्मन आकाशः सम्भूत इत्यादिक्रमस्य बाध इति चेन्नाविशेषात्—येनैव क्रमेण भूतोत्पत्तिस्तेनैव क्रमेण भौतिकोत्पत्तिरित्यविरोधः ॥ १५ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो। विज्ञानमनसी = बुद्धि और मन का। अन्तरा (अन्तराले) = भूत और आत्मा के बीच में अनुक्रम है। तल्लिङ्गात् = उस सृष्टिबोधक वाक्य का। क्रमेण = इस अनुक्रम से विरोध होगा। इति न = ऐसा न कहो। अविशेषात् = दोनों क्रमों में भेद न होने से ॥ १५ ॥

भाषार्थः—'इस आत्मा से प्राण, मन, सब इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी उत्पन्न हुई।' इस श्रुति में आत्मा और भूतों के बीच में मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की उत्पत्ति का अनुक्रम है। इस क्रम से 'इस आत्मा से आकाश पैदा हुआ इत्यादि' इस पूर्वोक्त श्रुति में कहे हुए सृष्टि के क्रम का विरोध है। यदि ऐसी शङ्का हो तो ठीक नहीं। क्योंकि भूतों की उत्पत्ति के क्रम से मन, बुद्धि और इन्द्रियों की उत्पत्ति की समानता है। मन आदि भी भौतिक ही हैं। जिस क्रम से भूतों की उत्पत्ति है उसी क्रम से भौतिक मन आदि की उत्पत्ति है। अतः विरोध नहीं है ॥ १५ ॥

चराचराधिकरणम् ॥ १६ ॥

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—जन्ममरणयोर्व्यपदेशः स्थावरजङ्गमदेहविषये मुख्यो जीवे तु भाक्तो गौणः स्यात्। कुतस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—तु = किन्तु। तद्व्यपदेशः = जन्म-मृत्यु का कथन। चराचरव्यपाश्रयः = स्थावर-जंगम देह-विषय में मुख्य और। भाक्तः = जीव में गौण। स्यात् = है। तद्भावभावित्वात् = शरीर से जन्म-मृत्यु का सम्बन्ध होने से ॥ १६ ॥

भाषार्थः—जन्म-मरण की भ्रान्ति स्थावर-जंगम शरीर के विषय में मुख्य

और जीव में गौण है। क्योंकि शरीर के साथ जन्म-मृत्यु का सम्बन्ध अवश्यंभावी है॥ १६॥

आत्माधिकरणम् ॥ १७॥

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७॥

सूत्रार्थः—जीवो नोत्पद्यते तदुत्पत्तिश्रवणाभावात्। ताभ्यः श्रुतिभ्यश्च नित्यत्वावगमाच्च ॥ १७॥

पदार्थः—आत्मा = जीवात्मा। न = जन्मता-मरता नहीं। अश्रुतेः = श्रुति में जीव की उत्पत्ति नहीं कही है। च=और। ताभ्यः = उन श्रुतियों से। नित्यत्वात् = जीव का नित्यत्व सिद्ध होता है॥ १७॥

भाषार्थः—जीवात्मा उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि श्रुतियों में कहीं भी जीव की उत्पत्ति का वर्णन नहीं, प्रत्युत उन श्रुतियों से तो जीव का नित्यत्व ही सिद्ध होता है॥ १७॥

ज्ञाधिकरणम् ॥ १८॥

ज्ञोऽत एव ॥ १८॥

सूत्रार्थः—आत्मा ज्ञोऽतो नोत्पद्यते ॥ १८॥

पदार्थः—ज्ञः = आत्मा चैतन्य है। अतः एव = इसीलिये ॥ १८॥

भाषार्थः—आत्मा चैतन्य है। इसीलिये जन्म-मृत्यु से रहित है॥ १८॥

उत्क्रान्तिगत्यधिकरणम् ॥ १९-३२॥

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ १९॥

सूत्रार्थः—पुनर्जीवस्य नित्यत्वं प्रकरणान्तरेण दृढयति—'स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति' (कौषीतकी ३।३) इत्युत्क्रान्तिः। 'ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति' (कौ० १।२) इति गतिः। 'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे' (बृ० ४।४।६) इत्यागतिः। एवमुत्क्रान्तिगत्यागतीनां श्रवणाज्जीवोऽणुः ॥ १९।

पदार्थः—उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् = उत्क्रान्ति—जीव का शरीर से निकलना, गति—चन्द्रादि लोकों में जाना, आगति—वहां से लौटना ॥ १९॥

भाषार्थः—जीव की मृत्यु अर्थात् शरीर का त्याग उत्क्रान्ति है। चन्द्रादि

लोकों में जाना गति है। उन लोकों से पुनः इस लोक में आना आगति है। इन तीन गतियों के कारण जीव अणु है ॥ १९ ॥

स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—उत्तरयोर्गत्यागत्योः स्वात्मनैव सम्भवाज्जीवोऽणुः ॥ २० ॥

पदार्थः—च = तथा। उत्तरयोः = पीछे की दो अर्थात् गमन और आगमन। स्वात्मना = अपने आत्मा से ही संभव हैं ॥ २० ॥

भाषार्थः—गमन और आगमन जीव में ही संभव हैं। अतः जीव अणु है ॥ २० ॥

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—'स वा एष महानज आत्मा' (बृ० ४।४।१२) इत्यणुत्वविपरीत-श्रवणान्न जीवोऽणुरिति चेन्न ह्यत्र परमात्मनोऽधिकारात् ॥ २१ ॥

पदार्थः—चेत्=यदि कहो कि। अणुः=जीव अणु। न=नहीं है। अतच्छ्रुतेः= क्योंकि श्रुति ने जीव को अणु नहीं किन्तु सर्वव्यापक कहा है। इति न= ऐसा नहीं। इतराधिकारात् = उक्त श्रुति में अन्य अर्थात् ब्रह्म का अधिकार होने से जीव अणु है ॥ २१ ॥

भाषार्थः—'यह महान् अज आत्मा है' इस श्रुति में जीव को महान् कहा है। अतः जीव अणु नहीं किन्तु सर्वव्यापक है। ऐसा तर्क उचित नहीं, क्योंकि यहाँ ब्रह्म का प्रकरण होने के कारण महान् शब्द ब्रह्मबोधक है ॥ २१ ॥

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' (मु० ३।१।९) इति-स्वस्याणुत्वस्य वाचकशब्दात्। 'वालाग्रशतभागस्य' (श्वे० ५।८) इति ऊन्मा-नाच्च जीवोऽणुः ॥ २२ ॥

पदार्थः—च = और। स्वशब्दोन्मानाभ्याम् = स्वशब्द—श्रुति में आत्मा शब्द के अणुवाचक होने से, और ऊन्मान—छोटे परिणांमवाला होनें से जीव अणु है ॥ २२ ॥

भाषार्थः—'यह आत्मा अणु है' इस श्रुति में स्व (आत्मा) शब्द के अणुवाचक होने से और सूक्ष्म परिमाणवाला 'बाल की नोक का सौवाँ भाग' होने से जीव अणु है ॥ २२ ॥

अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—आत्मनोऽणुत्वे न कृत्स्नशरीरे शीतोष्णानुभव इति चेन्न यथा देहस्यैकदेशस्थोऽपि चन्दनबिन्दुः कृत्स्नं देहमाह्लादयति तथैकदेशस्थोऽपि जीव-स्त्वक्संयोगेन कृत्स्नदेहव्यापिनं शीतोष्णादिज्ञानं करोत्येव नातो विरोधः ॥२३॥

पदार्थः—चन्दनवत् = चन्दन की भाँति है। अविरोधः = अतः विरोध नहीं है ॥ २३ ॥

भाषार्थः—आत्मा को अणु मानने से शरीर के किसी एक अंश में स्थित होने से सारे शरीर में शीतोष्ण का ज्ञान हो सकेगा, ऐसा तर्क उचित नहीं; क्योंकि जैसे चन्दनबिन्दु देह के एक भाग में स्थित होने पर भी सारे शरीर को आनन्दित कर देता है, वैसे ही देह के एक अंश में स्थित अणु जीव देहव्यापी शीतोष्ण का ज्ञान (अनुभव) कर सकता है। अतः विरोध नहीं है ॥ २३ ॥

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—यथा चन्दनस्यैकदेशस्थत्वं कृत्स्नदेहाह्लादनञ्चेत्येवं स्थितिवैशेष्यं प्रत्यक्षं तथा न जीवस्यातो दृष्टान्तवैषम्यमिति चेन्न 'हृदि ह्येष आत्मा' (प्रश्न० ३ । ६) इति चन्दनवज्जीवस्यापि स्थित्यभ्युपगमात् ॥ २४ ॥

पदार्थः—अवस्थितिवैशेष्यात् = अवस्थिति—चन्दन और आत्मा की स्थिति में वैशेष्य—अन्तर होने से। इति चेत् = यदि ऐसा कहो तो। न = यह कहना उचित नहीं। हि = क्योंकि। हृदि = हृदय में। अभ्युपगमात् = स्थिति होने से ॥ २४ ॥

भाषार्थः—जैसे चन्दनबिन्दु एक देश में है यह प्रत्यक्ष है, वैसे आत्मा का एक देश में होना प्रत्यक्ष नहीं है। अतः दृष्टान्त में विषमता है यह कहना उचित नहीं है; क्योंकि—'यह आत्मा हृदय में है' इस श्रुति में चन्दन की भाँति आत्मा की भी हृदयरूप एक देश में स्थिति कही गयी है। अतः दृष्टान्त और दार्ष्टान्त में विषमता न होने से विरोध नहीं है ॥ २४ ॥

गुणाद्वा लोकवत् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—जीवस्याणुत्वेऽपि तन्निष्ठस्य चैतन्यगुणस्य व्यापकत्वाङ्गीकाराद् व्यापिकार्यं भविष्यति लोके व्यापिप्रभागुणकदीपवत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—वा = अथवा। गुणात् = जीव के चैतन्यगुण से। लोकवत् = संसार में देखा जाता है ॥ २५ ॥

भाषार्थः—अथवा जैसे लोक में दीपक का प्रकाशरूप गुण सारे घर को प्रकाशित कर देता है, वैसे ही एक देश में स्थित जीव भी अपने चैतन्यगुण से समस्त शरीर को चैतन्य कर देता है ॥ २५ ॥

व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—यथा गन्धगुणस्य गुणव्यतिरेकेण वृत्तिरेवमणोर्जीवस्यापि चैतन्य-गुणव्यतिरेको भविष्यति ॥ २६ ॥

पदार्थः—गन्धवत् = गन्ध की भाँति । व्यतिरेकः = गुणो से अन्यत्र बर्तना ॥ २६ ॥

भाषार्थः—जैसे गन्धगुण अपने आश्रय पुष्प में रहता हुआ भी पुष्प से अन्य पदार्थों में सुगन्ध फैला देता है, ऐसे ही चैतन्यगुण भी अपने आश्रय अणु जीव में अभिन्न रूप से रहता हुआ भी सारे शरीर को चैतन्य कर देता है। अतः कोई विरोध नहीं है ॥ २६ ॥

तथा च दर्शयति ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—तथा च 'आ लोमभ्य आ नखाग्रेभ्यः (छां० ८।८।१) इति श्रुतिर्दर्शयति ॥ २७ ॥

पदार्थः—च = और । तथा = वैसा । दर्शयति = श्रुति दिखाती है ॥ २७ ॥

भाषार्थः—वैसा ही 'रोम-रोम में नख के सिरे तक आत्मा शरीर में प्रविष्ट हुआ' ऐसा कहकर यह जीवात्मा चैतन्यगुण से सब शरीर में व्याप्त रहता है—यह श्रुति भी प्रतिपादन करती है ॥ २७ ॥

पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—'प्रज्ञया शरीरं समारुह्य' (कौ० ३।६) इत्यात्मप्रज्ञयोः कर्तृ-करणभावेन पृथगुपदेशादात्माणुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—पृथक्=अलग । उपदेशात्=कथन करने से ॥ २८ ॥

भाषार्थः—'प्रज्ञा से शरीर में चढ़कर' इस श्रुति में आत्मा को कर्ता और प्रज्ञा (चेतनता) को करण बतलाते हुए आत्मा और प्रज्ञा को पृथक् करके आत्मा का चैतन्यगुण द्वारा शरीरव्यापी होना दिखलाया गया है। अतः आत्मा अणु है ॥ २८ ॥

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वोक्तैर्दशभिः सूत्रैः प्रतिपादितैकदेशीयपक्षव्यावृत्त्यर्थः। यथा प्राज्ञेश्वरस्य सगुणोपासनेषूपाधिगुणसारत्वादणीयस्त्वादिव्यपदेशस्तथैव तस्या बुद्धेर्गुणास्तद्गुणा इच्छाद्वेषसुखदुःखादयस्त एव सारः प्रधानं यस्यात्मनः संसारित्वे संभवति स तद्गुणसारस्तस्य भावस्तद्गुणसारत्वं तस्मात्तद्गुणसारत्वाद् बुद्धिपरिमाणेनास्यात्मनः परिमाणव्यपदेशः ॥ २९ ॥

पदार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के निरास के लिये है। तद्व्यपदेशः=वह अणुत्व का उपदेश। तद्गुणसारत्वाद्=बुद्धि के गुणों की प्रधानता को लेकर कहा गया। प्राज्ञवत्=ईश्वर की भाँति ॥ २९ ॥

भाषार्थः—अब २९ से ३२ तक ४ सूत्रों में सूत्रकार पूर्व १० सूत्रों में कहे गये पूर्वपक्ष का खण्डन करते हैं। यथा—

जैसे ईश्वर को सगुणोपासनार्थ सगुण-उपासकों के लिये उपाधि को लेकर हृदयादि अल्पदेश (स्थान) की अपेक्षा से अणु या दशाङ्गुल परिमाण का कहा गया है वैसे ही बुद्धिरूप उपाधि के तादात्म्यभाव को प्राप्त हुए जीव को बुद्धि के इच्छा, द्वेष, सुख,दुःखादि धर्मों की अपेक्षा से अणु कहा गया है, परमार्थ दृष्टि से नहीं ॥ २९ ॥

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—बुद्धिसंयोगादात्मनः संसारित्वे सति बुद्धिवियोगान्तस्यासंसारित्वदोषः स्यादत आह, न दोष इति। कुतः ? सम्यग्ज्ञानं यावद् बुद्धिसंयोगस्यात्मभावित्वात् तथा हि 'योऽयं विज्ञानमयः' (बृ० ४। ३। ४) इति श्रुतेर्दर्शनात् ॥ ३० ॥

पदार्थः—च=और। यावदात्मभावित्वात्=जबतक सम्यक् ज्ञान न होगा तबतक आत्मभावित्व—बुद्धिसंयोग से देहाध्यास अवश्यम्भावी है। न दोषः=इसमें कोई दोष नहीं। तद्दर्शनात्=श्रुति से भी यही बात सिद्ध होने से ॥ ३० ॥

भाषार्थः—जब बुद्धि के संयोग से ही आत्मा संसारी है, तब तो प्रलयकाल में बुद्धि का वियोग होने से बिना ज्ञान के ही जीव मुक्त हो जायगा; फिर ज्ञान तथा ज्ञान के साधनों की क्या आवश्यकता है। इसका उत्तर है कि जबतक ज्ञान न होगा तबतक जीव संसारी ही रहेगा। प्रलय में भी उसका

संयोग बना रहेगा, 'प्रलयकाल में यह जीव सब इन्द्रियों सहित उस परब्रह्म में स्थित होता है।' (प्र० उ० ४। ११) इस श्रुति से बिना ज्ञान के जीवों की मुक्ति तथा मुक्तों का पुनर्जन्म आदि दोष सम्भव नहीं ॥ ३० ॥

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—अस्य बुद्धिसंयोगादेः सुषुप्तिप्रलययोः सूक्ष्मात्मना सत एव अभिव्यक्तिसम्भवात् पुंस्त्वादिवत्। यथा पुंस्त्वादेर्बाल्ये सत एव यौवनेऽभिव्यक्तिः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—अस्य = इस जीव के इन्दिय-संयोगादि सुषुप्ति तथा प्रलय में। सतः तु = सत् परमात्मा में ही सूक्ष्मरूप से स्थित रहते हैं। पुंस्त्वादिवत् = जैसे कि बाल्यावस्था में विद्यमान पुंस्त्वादि। अभिव्यक्तियोगात् = युवावस्था में प्रकट होते हैं ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—प्रलय में सब विकार बुद्धिसंयोग के सहित नष्ट हो जाते हैं। उस समय जीव बुद्धि आदि के सहित कैसे रहता है? इसका समाधान यह है कि सुषुप्ति तथा प्रलय में जीव बुद्धि आदि इन्द्रियों के सहित परमात्मा में सूक्ष्मरूप से ऐसे छिपे रहते हैं जैसे बाल्यावस्था में यौवन आदि भाव छिपे रहते हैं और युवावस्था में प्रकट हो जाते हैं। ऐसे ही प्रलयकाल में जीव के बुद्धि आदि छिपे हुए भाव सृष्टिकाल में प्रकट हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—इदं मनोरूपमन्तःकरणमवश्यमभ्युपगन्तव्यमन्यथाऽनभ्युपगमे सर्वेषामिन्द्रियाणां स्वस्वविषयसन्निधानदशायां नित्योपलब्धिप्रसङ्गः। युगपत्सर्वविषयोपलब्धिप्रसङ्गः। मनोव्यतिरिक्तज्ञानसामग्र्याः सत्वात्। यदि सत्यामपि सामग्र्यां ज्ञानाभावस्तदा नित्यमनुपलब्धिप्रसङ्गः। एकस्याप्युपलब्धिर्न स्यादथवैकस्योपलब्धिमितरेषामनुपलब्धिमिच्छता ज्ञानसामग्रीमध्येऽन्यतरस्यात्मनः इन्द्रियस्य वा नियमशक्तिप्रबन्धः स्वीकर्तव्यः; स न सम्भवति ॥ ३२ ॥

पदार्थः—अन्यथा = अन्तःकरण के न मानने पर। नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गः = नित्योपलब्धि–विषयों के नित्य अनुभव का अथवा अनुपलब्धि-

विषयों के नित्य अभाव का प्रसंग होगा । वा = अथवा । अन्यतरनियमः=आत्मा या इन्द्रियों के विषयों का अभाव होगा । यह असम्भव है ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—मनरूप अन्तःकरण को मानना ही चाहिये । न मानने पर सब इन्द्रियों के अपने-अपने विषयों की सन्निधि होने पर सब विषयों का एक ही समय ज्ञान होगा, क्योंकि मन के सिवाय और सब ज्ञान की सामग्री उपस्थित है । यदि सामग्री रहते ज्ञान न हो तो विषयों का ग्रहण ही न होगा । अथवा एक विषय के भोगने की इच्छा, अन्य विषयों की अनिच्छा करने वाले पुरुषको मनकी शक्ति का निरोध मानना चाहिये । यह असम्भव है । क्योंकि मन अपने विषय को रोक नहीं सकता और मन के बिना इन्द्रिय आदि कोई कुछ नहीं कर सकते, अतः मन को मानना ही चाहिये ॥ ३२ ॥

कर्त्रधिकरणम् ॥ ३३-३९ ॥

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—'यजेत, जुहुयात्, दद्यात्' इत्येवंविधस्य शास्त्रस्यार्थवत्त्वाज्जीवः कर्ता स्यात् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—कर्ता=जीव कर्ता है । शास्त्रार्थवत्त्वात् = शास्त्र की सार्थकता जीव के कर्ता होने से ही हो सकती है ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—'यज्ञ करे, हवन करे तथा दान दे' इत्यादि शास्त्र-आज्ञा के पालन की सार्थकता जीव के कर्ता हुए बिना नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

विहारोपदेशात् ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—स ईयतेऽमृतो यत्र कामम्' (बृ० ४ । ३ । १२) इति विहारोपदेशादपि जीवस्य कर्तृत्वं सिद्धम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—विहारोपदेशात्=विहार का उपदेश होने से ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—'जीव स्वप्नावस्था में स्वेच्छा से विहार करता है ।' इस उपदेश से भी जीव कर्ता है ॥ ३४ ॥

उपादानात् ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—'तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय' (बृ० २१ । १ । १७) इति प्राणेन्द्रियादीनामुपादानत्वप्रतिपादनाज्जीवस्य कर्तृत्वं सिद्धम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—उपादानात् = ग्रहण करने से ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—यह आत्मा स्वप्नावस्था में प्राणरूप इन्द्रियों को ग्रहण करके विचरता है। एवं ग्रहणरूप कर्तृत्व से भी जीव कर्ता है॥ ३५॥

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः–'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च (तै० २। ५। १) लौकिक-वैदिकक्रियायां विज्ञानशब्दवाचकस्यात्मनः कर्तृत्वव्यपदेशाच्चात्मनः कर्तृत्वम्। ननु विज्ञानशब्दो बुद्धिपरो न जीवपर इति चेन्निर्देशविपर्ययः स्याद्। बुद्धेः करणत्वेन कर्तृत्वव्यपदेशो न स्यात् किन्तु विज्ञानेनेति स्यात्॥ ३६॥

पदार्थः—क्रियायाम् = कर्म करने में। व्यपदेशात् = कर्तृत्व का कथन होने से। च=भी जीव कर्ता है। चेत्=यदि। न = विज्ञानशब्द जीववाची न होकर बुद्धिवाची होता तो। निर्देशविपर्ययः=विज्ञानं शब्द में विपरीत संकेत अर्थात् 'विज्ञानेन' होता ॥ ३६॥

भाषार्थः—'आत्मा यज्ञ का विस्तार करता है।' इत्यादि श्रुतियाँ लौकिक तथा वैदिक कर्मों में जीवात्मा को कर्ता मानती हैं। यहाँ विज्ञान शब्द जीव-वाचक है, बुद्धिवाचक नहीं। यदि विज्ञान शब्द बुद्धिवाचक होता तो विपरीत संकेत होता अर्थात् विज्ञान शब्द कर्तावाचक प्रथमान्त न होकर तृतीयान्त होता, क्योंकि करण में तृतीया होती है। अतः आत्मा कर्ता है, बुद्धि नहीं॥ ३६॥

उपलब्धिवदनियमः ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः—स्वतन्त्र आत्माऽऽत्मनोऽनिष्टं न कुर्यात् किन्त्विष्टमेव कुर्यात्। तत्राह—स्वतन्त्रोऽप्यात्मेष्टमनिष्टञ्चोपलभते। तद्वदिष्टमनिष्टञ्च सम्पादयिष्यतीति नियमो नास्ति ॥ ३७॥

पदार्थः—उपलब्धिवत्=अनुभव की भाँति। अनियमः=जीवात्मा की प्रवृत्ति का कोई नियम नहीं है॥ ३७॥

भाषार्थः—आत्मा स्वतन्त्र है। अतः वह ऐसा कर्म क्यों करेगा जिससे उसका अनिष्ट हो। इस विषय में कहते हैं कि जैसे प्रारब्धानुसार इच्छा न होने पर भी इष्ट तथा अनिष्ट अर्थात् शुभ-अशुभ भोगों की प्राप्ति होती है, ऐसे ही नूतन कर्मों में भी इष्ट तथा अनिष्ट कर्म का कोई नियम नहीं है॥ ३७॥

शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—बुद्धिव्यतिरिक्तो जीव एव कर्ता, न बुद्धिः। अन्यथा बुद्धेः कर्तृत्वे करणशक्तिर्हीयेत ॥ ३८ ॥

पदार्थः—शक्तिविपर्ययात् = शक्ति का ह्रास होने से ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—बुद्धि से भिन्न जीव ही कर्ता है बुद्धि नहीं। यदि बुद्धि को कर्ता मानो तो बुद्धि की करणशक्ति का ह्रास होगा। और जड बुद्धि में कर्तृत्व-प्रयोग असम्भव होने से जीव ही कर्ता है यह सिद्ध हुआ ॥ ३८ ॥

समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थः—'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्' (मु० २ । २ । ६) इत्येवंलक्षणः समाधिरात्मनः कर्तृत्वे समुत्पद्यते अन्यथा समाध्यभावः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—च=तथा। समाध्यभावात् = समाधि का अभाव होने से ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—'ॐ' इस प्रकार उच्चारण कर आत्मा का ध्यान करें' ऐसी समाधि जीवात्मा को कर्ता मानकर ही सम्भव है। अन्यथा बुद्धि को कर्त्ता मानने से समाधि का अभाव होगा। अतः सिद्ध हुआ कि आत्मा ही कर्त्ता है बुद्धि नहीं ॥ ३९ ॥

तक्षाधिकरणम् ॥ ४० ॥

यथा च तक्षोभयथा ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—जीवस्य कर्तृत्वं स्वाभाविकमुतौपाधिकं वा ? तत्राह, यथा तक्षुः कर्तृत्वाकर्तृत्वे तस्य वास्यादिकरणाकरणापेक्षयोभयथा भवतः, तथा जीवस्यापि कर्तृत्वाकर्तृत्वे मन आदिकरणाकरणापेक्षयोभयथा भवतः। अर्थात् जागरित-स्वप्नयोरात्मनो मन आदिकरणसंम्पर्कात् कर्तृत्वं सुषुप्तिमुक्तावस्थयोर्मन आदि-करणाभावादकर्तृत्वञ्च भवति ॥ ४० ॥

पदार्थः—यथा च = और जैसे। तक्षा = बढ़ई। उभयथा = दोनों प्रकार से ॥ ४० ॥

भाषार्थः—जीव का कर्तृत्व उपाधि से है या स्वाभाविक ? इस विषय में कहते हैं कि जीव उपाधि से कर्ता है स्वाभाविक नहीं। जैसे बढ़ई जब बसूला आदि उपकरणों से कार्य करता है तब कर्ता कहलाता है। और जब सायं सब उपकरणों को त्यागकर आराम करता है तब अकर्ता

कहलाता है, वैसे ही जीव भी जब मन-इन्द्रिय आदि उपकरणरूप उपाधि-से युक्त होकर जाग्रत् तथा स्वप्न-अवस्था के सुख-दुःखरूप भोगों को भोगता है तब कर्ता कहलाता है और जब मन आदि उपाधि को त्यागकर सुषुप्ति या मुक्तावस्था को प्राप्त होता है तब अकर्ता कहलाता है। अतः जीव उपाधि से ही कर्ता है, स्वाभाविक नहीं ॥ ४० ॥

परायत्ताधिकरणम् ॥ ४१-४२ ॥

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—परमेश्वरादेव तज्जीवस्य कर्तृत्वं न स्वभावतः। 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति' (कौ० ३ । ८) इति श्रुतेः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—तत् = उस जीव में कर्तृत्व। परात् = परमेश्वर से। तु = ही है। श्रुतेः = श्रुति से भी यही सिद्ध है ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—जीव स्वभावतः कर्ता नहीं है। उसमें अज्ञान के कारण कर्माध्यक्ष ईश्वर से ही कर्तापन, भोक्तापन आदि संसारित्व है, 'वही इस जीव से शुभ कर्म कराता है' इस श्रुति से भी यही सिद्ध है। इसी ईश्वर के अनुग्रह से ज्ञान द्वारा जीव का मोक्ष होता है ॥ ४१ ॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्द ईश्वरस्य कारयितृत्वे वैषम्यनैर्घृण्यदोषनिरासार्थः। जीव-कृतोऽयं प्रयत्नो धर्माधर्मादिलक्षणः तदपेक्षयैवेश्वरः कारयिता न स्वतो विहित-प्रतिषिद्धयोर्वैयर्थ्यात् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—कृतप्रयत्नापेक्षः—पूर्वजन्म में जीव के किये हुए पाप-पुण्यरूप कर्मों की अपेक्षा से। तु = ही। विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः = विहित—शास्त्रोक्त शुभकर्म, प्रतिषिद्ध—अशास्त्रीय अशुभकर्म की। अवैयर्थ्यादिभ्यः = सार्थकता है ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—जीव से शुभाशुभ कर्म कराने से प्राप्त ईश्वर के विषमता आदि दोष को दूर करने के लिये तु शब्द है। जीव के पूर्वजन्म में किये हुए पुण्य और पापरूप कर्मों की अपेक्षा से ही ईश्वर जीवों से इस जन्म में शुभाशुभ कर्म कराता है। जैसा कि 'ईश्वर जीवों से शुभ कर्म कराता है' (कौ० ३ । ८) इस श्रुति से सिद्ध है। अतः ईश्वर में विषमता आदि कोई दोष नहीं है ॥ ४२ ॥

अंशाधिकरणम् ॥ ४३-५३ ॥

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके॥४३॥

सूत्रार्थः—जीव ईश्वरांशः। कुतः ? जीवेश्वरयोर्नानात्वव्यपदेशात्। य आत्मनि तिष्ठन्निति। अन्यथा चाप्यनानात्वव्यपदेशात्तथैके शाखिन (आथर्वणिकाः) पठन्ति 'ब्रह्म दाशाः' इति ॥ ४३ ॥

पदार्थः—अंशः=जीव ईश्वर का अंश है। नानाव्यपदेशात्=ईश्वर की माया से बहुरूपता का कथन होने से। च=और। अन्यथा=अन्य प्रकार से। अपि=भी। एके=एक शाखावाले। दाशकितवादित्वम्=ब्रह्म को दाश, जुआरी आदि नामों से। अधीयते=पढ़ते हैं ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—जीव ईश्वर का कल्पित अंश है; जैसे सूर्य का जल में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब कल्पित अंश है, यथार्थ अंश नहीं। क्योंकि 'इन्द्र माया से बहुरूपिया बनता है' इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म का नानात्व माया से है, यथार्थ में नहीं। यह जीव ब्रह्म का अंश है इसे अन्य प्रकार से भी दिखलाया गया है—आथर्वणिक शाखावाले कहते हैं—'दाश ब्रह्म ही हैं, कितव (जुआरी) आदि सब ब्रह्म हैं ॥ ४३ ॥

मन्त्रवर्णाच्च ॥ ४४ ॥

सूत्रार्थः—'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इत्यादि मन्त्रवर्णादपि जीवो ब्रह्मांशः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—मन्त्रवर्णात्=साक्षात् वेद के मन्त्रों से। च=भी ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—'सब प्राणी ब्रह्म के एक पाद में स्थित हैं' (यजु०) इस वेदमन्त्र के वर्णन से भी सिद्ध है कि सब जीव ब्रह्म के अंश हैं ॥ ४४ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थः—'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।' (१५।७) इति गीतास्मृत्यापि जीवस्य ब्रह्मांशत्वं स्मर्यते ॥ ४५ ।

पदार्थः—च=और। स्मर्यते अपि=गीता में भी जीव ब्रह्म का अंश कहा गया है ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—भगवान् ने गीता में भी कहा है कि 'संसार में जीव मेरा सनातन अंश है' ॥ ४५ ॥

प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः—जीववदीश्वरस्यापि सुखदुःखादिभोक्तृत्वं सम्भवेत्तत्राह—जीवेश्वरयोरंशांशिभावेऽपि नेश्वरो जीववत् संसारदुःखमनुभवति प्रकाशादिवत् ॥४६॥

पदार्थः—परः = ब्रह्म । एवम्=इस प्रकार (जीव की भाँति) । न = सुख-दुःखादि से लिप्त नहीं है । प्रकाशादिवत् = प्रकाश आदि की तरह ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—जीव ईश्वर का अंश होने पर भी जीव के सुख-दुःखादि धर्मों से ईश्वर लिपायमान नहीं होता । जैसे सूर्य का प्रकाश पवित्र या अपवित्र वस्तुओं पर पड़ने पर भी पवित्र या अपवित्र नहीं हो जाता ॥ ४६ ॥

स्मरन्ति च ॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः—तत्र यः परमात्मा हि स नित्यो निर्गुणः स्मृतः ।
न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

इत्यादिना व्यासादय ईश्वरस्य सांसारिकदुःखस्यास्पर्शित्वं प्रतिपादयन्ति ॥ ४७ ॥

पदार्थः—च = और । स्मरन्ति = व्यासादि स्मृतियाँ भी कहती हैं ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—जैसे कमलपत्र जल में रहता हुआ भी जल को नहीं छूता, वैसे ही ईश्वर भी जीव के धर्माधर्मादि से लिप्त नहीं होता, ऐसा व्यासादि स्मृतियाँ भी कहती हैं ॥ ४७ ॥

अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् ॥ ४८ ॥

सूत्रार्थः—आत्मन एकत्वेऽपि देहसम्बन्धाज्जीवस्यानुज्ञापरिहारौ विधिनिषेधावुपपद्येते । यथा ज्योतिष एकत्वेऽपि श्मशानाग्निः परिहर्तव्यो नेतर इत्यादिवत् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—अनुज्ञापरिहारौ = विधि और निषेध । देहसम्बन्धात् = शरीर के सम्बन्ध से होते हैं । ज्योतिरादिवत् = अग्नि आदि की तरह ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—जीव को विधि (शुभकर्मों का पालन) और निषेध (अशुभ कर्मों का त्याग) ये दोनों देह के सम्बन्ध से हैं । जैसे अग्नि एक होने पर भी चिता के सम्बन्ध से श्मशानाग्नि त्याज्य है, दूसरी नहीं ॥ ४८ ॥

असन्ततेश्चाव्यतिकरः ॥ ४९ ॥

सूत्रार्थः—असन्ततेश्च सर्वैः शरीरैः सम्बन्धाभावान्नैकपुरुषस्य कर्मफलमन्योऽश्नुते ॥ ४९ ॥

पदार्थः--च=और। असन्ततेः = सम्बन्ध न होने से। अव्यतिकरः = कर्मों का मिश्रण नहीं होता ॥ ४६ ॥

भावार्थः—आत्मा का सब शरीरों से सम्बन्ध होने से एक का कर्मफल दूसरा क्यों नहीं भोगता? इसका उत्तर इस प्रकार है कि जीव का अन्तःकरण की उपाधि के कारण सब शरीरों से सम्बन्ध न होने से एक के कर्म का फल दूसरा नहीं भोग सकता ॥ ४६ ॥

आभास एव च ॥ ५० ॥

सूत्रार्थः—परमात्मन आभास एव जीवः। न स साक्षादीश्वरः जलसूर्यकादिवत्। यथैकस्मिन् सूर्यप्रतिबिम्बे कम्पिते न प्रतिबिम्बान्तरं कम्पते, तथा जीवोऽपि जीवन्तरस्य कर्मफलं नाश्नुते ॥ ५० ॥

पदार्थः—च = तथा। आभासः = प्रतिबिम्ब। एव = ही है ॥ ५० ॥

भावार्थः—उसी अर्थ को सदृष्टान्त समझाते हैं। जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है, वह साक्षात् ईश्वर नहीं। जैसे एक सूर्य-प्रतिबिम्ब के हिलने से दूसरा प्रतिबिम्ब नहीं हिलता, वैसे ही एक जीव दूसरे जीव का कर्मफल नहीं भोग सकता ॥ ५० ॥

अदृष्टानियमात् ॥ ५१ ॥

सूत्रार्थः—ननु अदृष्टनियमात्फलनियम इति चेत्तत्राह—इदमस्यादृष्टमस्य नेत्येवंरूपस्यादृष्टनियमाभावात्फलानियमः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—अदृष्टानियमात् = प्रारब्ध कर्म के नियम का अभाव होने से ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जिस अदृष्ट (पूर्वजन्मकृत कर्मों) से जिस आत्मा का अन्तःकरण से संयोग हुआ है वही संयोग उसी आत्मा के सुख-दुःखादि का कारण है यह वैशेषिक का कहना उचित नहीं। क्योंकि यह इसका अदृष्ट है यह इसका, इस प्रकार अदृष्ट नियमों का अभाव होने से कर्मफल के भोग का भी कोई नियम नहीं हो सकता ॥ ५१ ॥

अभिसंध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थः—अभिसंध्यादिषु—अहमिदं करिष्य इदं नेति साधारणात्मसंयोगसाध्येषु सङ्कल्पेष्वप्यदृष्टवदनियमः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—च = और। अभिसंध्यादिषु = संकल्पादि में। अपि=भी। एवम् = ऐसा ही है, अर्थात् वही दोष है॥ ५२॥

भाषार्थः—यदि कहो कि सङ्कल्प ही आत्माओं तथा उनके अदृष्ट का नियम है अर्थात् कर्मफलरूप भोगों की प्राप्ति कराता है, तो इस प्रकार भी जीवों के कर्मफलभोग की व्यवस्था न हो सकने का दोष टलता नहीं; क्योंकि सर्व-साधारण का संकल्प भोगों की प्राप्ति नहीं करा सकता॥ ५२॥

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात्॥ ५३॥

सूत्रार्थः—आत्मनो विभुत्वेऽपि शरीरस्थेन मनसा संयोगः शरीरावच्छिन्नात्मप्रदेश एव भवति। तच्छरीरविशिष्ट एवात्मा स्वसुखदुःखादेर्भोक्ता नेतरः। इति चेन्न। कस्मात्? अन्तर्भावात्, आत्मनः सर्वशरीरेष्वन्तर्भावात्। तत्र न वैशेषिकैः शरीरावच्छिन्नोऽप्यात्मनः प्रदेशः कल्पयितुं शक्यः। तस्मादात्मैकत्वपक्ष एव सर्वदोषरहित इति सिद्धम्॥ ५३॥

पदार्थः—प्रदेशात् = जिस शरीरस्थ स्थान में। इति चेत्=यदि ऐसा कहो तो। न = यह कहना उचित नहीं। अन्तर्भावात् = सब शरीरों में अन्तर्भाव होने से॥ ५३॥

भाषार्थः—आत्मा के विभु (व्यापक) होने पर भी जिस शरीरस्थ आत्मप्रदेश में आत्मा से मन का संयोग हो वही शरीरस्थ आत्मा सुख-दुःखादि का भोक्ता है, दूसरा नहीं। ऐसा तर्क भी उचित नहीं। क्योंकि आत्मा के विभु होने से सब शरीरों में आत्मा का अन्तर्भाव होगा। एवं वैशेषिक शरीरस्थ आत्मा के प्रदेश की भी कल्पना नहीं कर सकते। अतः आत्मा के एक होने में ही सब दोषों का अभाव है॥ ५३॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
तृतीयः पादः॥ ३॥

———

अथ वेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये

चतुर्थः पादः

प्राणोत्पत्त्यधिकरणम् ॥ १ ॥

तथा प्राणाः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—यथा खादिपञ्चभूतानि ब्रह्मणः समुत्पद्यन्ते तथा प्राणा अपि। 'एतस्माज्जायते प्राणः' (मुण्डक० २ । १ । ३) इति ॥ १ ॥

पदार्थः—तथा प्राणाः = वैसे ही प्राण भी ॥ १ ॥

भाषार्थः—जैसे आकाश आदि पञ्चभूत ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं वैसे ही प्राण भी ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। जैसा कि 'इससे प्राण उत्पन्न होते हैं' इस श्रुति से सिद्ध है ॥ १ ॥

गौण्यसम्भवात् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—न प्राणोत्पादका श्रुतिर्गौणी। यतः प्रतिज्ञाहानिविरोधात्तस्या असम्भवः। 'कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' (मुण्डक० १ । १ । ३) इति प्रतिज्ञा ॥ २ ॥

पदार्थः—असम्भवात् = प्रतिज्ञा के असम्भव होने से। गौणी = यह प्राणोत्पादक श्रुति गौणी है कहना ठीक नहीं है ॥ २ ॥

भाषार्थः—पूर्वपक्षी—यह प्राणों की उत्पत्ति कहनेवाली श्रुति गौण नहीं है। 'ब्रह्म को जानने से यह सब कुछ जाना जाता है' इस वेद की प्रतिज्ञा का विरोध होगा। कारण को जानने से कार्य का ज्ञान होता है। यदि प्राण आदि सब जगत् के उपादान कारण ब्रह्म को न मानेंगे तो इस प्रतिज्ञा की हानि होगी ॥ २ ॥

तत्प्राक् श्रुतेश्च ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—'एतस्माज्जायते प्राणः' इत्यादिवाक्ये 'जायते' इति जन्मवाचिपदस्य मुख्यस्याकाशाद्यपेक्षया प्राचीनेषु प्राणेन्द्रियादिषु श्रुतेरिन्द्रियाणां मुख्यं जन्म ॥ ३ ॥

पदार्थः—तत्=वह उत्पत्तिवाचक पद। प्राक्=पहले। श्रुतेः=श्रुति में आने से। च=भी प्राणों की उत्पत्ति मुख्य है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—'इससे प्राण उत्पन्न हुआ' इस श्रुति में 'जायते' (उत्पन्न होता है) इस जन्मवाची पद से आकाशादि की उत्पत्ति से पूर्व प्राण की उत्पत्ति सुनी गयी है। अतः आकाशादि के समान प्राणों की उत्पत्ति भी मुख्य है ॥ ३ ॥

तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—यद्यपि 'तत्तेजोऽसृजत' (छा० ६ । २ । ३ । इत्यत्र न प्राणोत्पत्तिः पठ्यते तथापि 'अन्नमयं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्' (छा० ६ । ५ । ४ ।) इति वाक्प्राणमनसां तेजोऽबन्नपूर्वकत्वादस्त्येव प्राणानामुत्पत्तिः खादिवन्मुख्या ॥ ४ ॥

पदार्थः—वाचः = वाणी का। तत्पूर्वकत्वात् = तेज, जल तथा अन्न से पूर्व कथन होने से ॥ ४ ॥

भाषार्थः—यद्यपि 'उसने तेज रचा' इस श्रुति में प्राणों की उत्पत्ति नहीं है, तथापि 'मन अन्नमय है, प्राण जलमय हैं और वाणी तेजोमयी है' इस श्रुति में वाक्, मन और प्राण का तेज, जल और अन्न से पूर्व कथन होने से आकाशादिवत् प्राणों की उत्पत्ति भी मुख्य है ॥ ४ ॥

सप्तगत्यधिकरणम् ॥ ५-६ ॥

सप्त गतेर्विशेषितत्वाच्च ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—सप्तैवेन्द्रियाणि। कुतः ? गतेः—'सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः' (तै० सं० ५ । १ । ७ । १) इति श्रुत्या सप्तावगतेरिन्द्रियाणां शीर्षण्यत्वेन विशेषितत्वाच्चेति पूर्वपक्षः ॥ ५ ॥

पदार्थः—सप्त = इन्द्रियाँ सात हैं। गतेः = श्रुति से। विशेषितत्वात्=विशेष होने से प्राण सात हैं ॥ ५ ॥

भाषार्थः—वेद में पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, वाक् ये सात इन्द्रियाँ हैं। ये इन्द्रियाँ शीर्षण्य अर्थात् शिर में स्थित हैं। दो नेत्र, दो कान और दो नासिका-छिद्र, एक मुख्य प्राण ये शिर में होने से विशेष हैं। यह पूर्वपक्ष है ॥ ५ ॥

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । सप्तभ्यो व्यतिरिक्ता हस्तादयः प्राणाः (इन्द्रियाणि) श्रूयन्ते । सप्तत्वातिरेके निश्चिते सप्तैवेन्द्रियाणीति नैवं वाच्यम् । 'दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः' (बृ० ३ । ९ । ४) इति श्रुते-रेकादश इन्द्रियाणीति सिद्धान्तः ॥ ६ ॥

पदार्थः—तु = पूर्वपक्ष के खण्डन के लिये है । हस्तादयः = हाथ आदि भी हैं । अतः = इसलिये । स्थिते = ऐसी स्थिति में । एवम् = सात ही इन्द्रियां हैं ऐसा । न = नहीं कहना चाहिये ॥ ६ ॥

भाषार्थः—सात के अतिरिक्त हाथ आदि भी इन्द्रियाँ हैं । अतः सात ही इन्द्रियाँ हैं ऐसा नहीं कहना चाहिये । 'इस पुरुष में दश इन्द्रियाँ और ग्यारहवां मन है' इस श्रुति के अनुसार ग्यारह इन्द्रियाँ हैं यही सिद्धान्त है ॥ ६ ॥

प्राणाणुत्वाधिकरणम् ॥ ७ ॥

अणवश्च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—अणवश्चैते प्राणाः सूक्ष्माः परिच्छिन्नपरिमाणाः सन्ति न परमाणुतुल्याः ॥ ७ ॥

पदार्थः—च = और । अणवः—ये इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थः—ये प्राण अणु हैं, सूक्ष्म तथा एकदेशीय हैं, परमाणुतुल्य नहीं ॥ ७ ॥

प्राणश्रैष्ठ्याधिकरणम् ॥ ८ ॥

श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—'प्राणो वाव ज्येष्ठः श्रेष्ठश्चेति' (छा० ५ । १ । १) श्रुत्युक्तो मुख्यप्राणश्चान्यप्राणवद्ब्रह्मणः समुत्पन्नः ॥ ८ ॥

पदार्थः—च = और । श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥

भाषार्थः—छान्दोग्य ५ । १ । १ में कहा है कि प्राण ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और मुख्य है, जो अन्य प्राण की भांति ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

नवायुक्रियाधिकरणम् ॥ ९-१२ ॥

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—न मुख्यप्राणो वायुः (बाह्यवायुः पञ्चीकृतः) नैव चेन्द्रिय-

क्रिया । कुतः ? तस्य प्राणस्य वायोः पृथगुपदेशात्तथा हि–'प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः । स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च' (छा० । ३ । १८ । ४)॥ ९ ॥

पदार्थः—न वायुक्रिये = न वायु है, न इन्द्रिय-व्यापार (विषय) है । पृथगुपदेशात् = मुख्यप्राण और वायु का पृथक्-पृथक् उपदेश होने से ॥ ९ ॥

भाषार्थः—मुख्यप्राण न वायु है और न इन्द्रिय-व्यापार। क्योंकि उस प्राण का वायु से पृथक् उपदेश है। जैसे 'प्राण ही ब्रह्म का चतुष्पाद है। वह वायुरूप ज्योति से चमकता है' इस श्रुति से सिद्ध है ॥ ९ ॥

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—चक्षुरादिवत्प्राणोऽपि जीवं प्रति करणभूतः । कुतः ? तैश्चक्षुरादिभिः सह 'स एवायं मुख्यप्राणः' इति प्राणसंवादादिषु प्राणस्य शिष्टेः शासनादित्यर्थः । आदिशब्दः प्राणस्य स्वातन्त्र्यनिराकरणहेतूनचेतनादीन् दर्शयति । तुशब्दः प्राणस्वातन्त्र्यनिरासार्थः ॥ १० ॥

पदार्थः—चक्षुरादिवत् = चक्षु आदि इन्द्रियों की भाँति प्राण भी जीव के अधीन है। तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः = उन इन्द्रियों के साथ प्राण का भी अनुशासन अर्थात् कथन होने से । यहाँ आदि शब्द प्राण के परतन्त्रता—अचेतनतादि कारणों को दर्शाता है ॥ १० ॥

भाषार्थः—प्राण स्वतन्त्र नहीं है। क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् के प्राण-संवाद में इन्द्रियों के साथ प्राण का भी कथन है ॥ १० ॥

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—नेत्रादीनां रूपादिवत्प्राणस्यापि विषयान्तरप्रसङ्गः स्यात्तत्राह—प्राणस्याकरणत्वान्न चोक्तदोषः । कथं तर्हि आत्मानं प्रति करणभावः ? इन्द्रियान्तरेष्वसम्भावितस्यासाधारणस्य देहधारणाख्यस्य कार्यस्य निर्वाहकत्वात् ॥ ११ ॥

पदार्थः—अकरणत्वात् = इन्द्रिय न होने से । च = भी । न दोषः = उक्त दोष नहीं है। हि = क्योंकि । तथा = वैसा ही । दर्शयति = श्रुति भी कहती है ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जैसे नेत्र-श्रोत्र आदि के रूप-शब्द आदि विषय हैं, वैसे ही प्राण का भी कोई विषय होना चाहिये ऐसी शंका मत करो। विषयभोग का

दोष प्राण पर नहीं आ सकता। क्योंकि प्राण के करण (साधन) न होने से उक्त दोष का प्रसङ्ग नहीं है। तो फिर प्राण को जीव का करण क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि देह के धारण करने की शक्ति प्राण में ही है, अन्य इन्द्रियों में नहीं। अतः प्राण की गणना करणों में है ॥ ११ ॥

पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—यथा मनसः पञ्चज्ञानेन्द्रियनिमित्ताः शब्दादिपञ्चविषयाः प्रसिद्धास्तथा प्राणोऽपि प्राणापानादिभेदेन पञ्चवृत्तिः ॥ १२ ॥

पदार्थः—मनोवत् = मन की तरह। पञ्चवृत्तिः=प्राण भी पाँच वृत्तिवाला। व्यपदिश्यते = कहा जाता है ॥ १२ ॥

भाषार्थः—प्राण को पाँच वृत्तिवाला क्यों कहा ? इसलिये कि जैसे पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क से मन के शब्दादि पाँच विषय प्रसिद्ध हैं, वैसे ही प्राण भी प्राणापानादिभेद से पाँच वृत्तिवाला है ॥ १२ ॥

श्रेष्ठाणुत्वाधिकरणम् ॥ १३ ॥

अणुश्च ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—अयं प्राणोऽणुश्च सूक्ष्मः परिच्छिन्नः ॥ १३ ॥

पदार्थः—च = तथा। अणुः = बहुत सूक्ष्म है ॥ १३ ॥

भाषार्थः—यह मुख्यप्राण अणु अर्थात् सूक्ष्म तथा परिच्छिन्न है ॥ १३ ॥

ज्योतिराद्यधिकरणम् ॥ १४-१६ ॥

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—पञ्चवृत्तिः प्राणः स्वाधिष्ठितः कार्ये प्रवर्तते, अग्न्यादिदेवताधिष्ठितो वा ? इति विचार्यते—तुशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः। ज्योतिरादिभिरधिष्ठितः प्रवर्तते ॥ १४ ॥

पदार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के खण्डन के लिये है। ज्योतिराद्यधिष्ठानम् = अग्नि आदि देवताओं के अधीन होकर बर्तता है। तदामननात् = वैसा ही श्रुति का कथन होने से ॥ १४ ॥

भाषार्थः—प्राण स्वयं अपने कार्य में प्रवृत्त होता है या अन्य से प्रेरित होकर ? इसका उत्तर है कि अग्नि आदि देवताओं से अधिष्ठित होकर प्रेरित

होता है। 'अग्नि वाक् इन्द्रियरूप से मुख में प्रविष्ट हुई' इस श्रुति से ऐसा ही प्रतिपादन होता है ॥ १४ ॥

प्राणवता शब्दात् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—प्राणवता जीवेनैवेन्द्रियाणां स्वस्वामिभावसम्बन्धः । कुतः ? 'यत्रैतदाकाशम्' (छा० ८ । १२ । ४) इति शब्दात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—प्राणवता = प्राणों का प्राणवाले जीव से सम्बन्ध है। शब्दात् = श्रुति से यह सिद्ध है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जब देवताओं के स्वामित्व से प्राणादि प्रेरित हैं तब जीव शरीर का स्वामी न रहेगा। इस शंका का उत्तर है कि नहीं, देवताओं का स्वामित्व होने पर भी प्राणों के सम्बन्ध से जीव शरीर तथा इन्द्रियों के संघात का स्वामी है। इस विषय में 'इस शरीर में आत्मा ही भोक्ता है' यह श्रुति प्रमाण है ॥ १५ ॥

तस्य च नित्यत्वात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—तस्य जीवस्यास्मिन् शरीरे भोक्तृत्वेन नित्यत्वं न देवानाम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—तस्य = जीव के। च = ही। नित्यत्वात्=नित्य होने से ॥ १६ ॥

भाषार्थः—जीव के भोक्ता होने से नित्यत्व सिद्ध है। नित्यत्व अर्थात् जन्मरहित होने से जीव का ही देह-संघात में स्वामित्व है, देवताओं का नहीं। उस जीव का ही प्राणों से सम्बन्ध है ॥ १६ ॥

इन्द्रियाधिकरणम् ॥ १७-१९ ॥

त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—मुख्यप्राणात्तत्त्वान्तराणीन्द्रियाण्यन्यत्र । कुतः ? तद्व्यपदेशात् 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'। (मु० २ । १ । ३) इति तस्य प्राणेन्द्रियेभ्यः श्रेष्ठाद् भेददर्शनात् ॥ १७ ॥

पदार्थः—ते = वे मन आदि। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ। श्रेष्ठात् = मुख्य-प्राण से। अन्यत्र = भिन्न हैं। तद्व्यपदेशात् = श्रुति का ऐसा कथन होने से ॥ १७ ॥

भाषार्थः—मुख्यप्राण से ये ग्यारह इन्द्रियाँ (५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय तथा मन) भिन्न हैं। 'उस ब्रह्म से प्राण, मन तथा इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई' इस श्रुति से ऐसा सिद्ध है ॥ १७ ॥

भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—'ते ह वाचमूचुः' (बृ० १ । ३ । २) इत्यादिभेदश्रुतेश्च वागादयः प्राणा (११ इन्द्रियाणि) मुख्यप्राणादितराः ॥ १८ ॥

पदार्थः—भेदश्रुतेः = भेदश्रुतियों से सिद्ध है ॥ १८ ॥

भाषार्थः—'वे देवता वाणी को बोले' इत्यादि भेदश्रुतियों से वागादि ११ इन्द्रियाँ मुख्यप्राण से भिन्न हैं ॥ १८ ॥

वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—मुख्येतरयोर्विलक्षणत्वाच्च ॥ १९ ॥

पदार्थः—वैलक्षण्यात् = इन्द्रियों से प्राण की विलक्षणता होने से। च = भी ॥ १९ ॥

भाषार्थः—सुषुप्ति में प्राण स्थित रहते हैं, इन्द्रियाँ नहीं। इस प्रकार इन्द्रियों से प्राण की विलक्षणता होने से भी इन्द्रियाँ प्राण से भिन्न तत्त्व हैं। यह सिद्ध हुआ ॥ १९ ॥

संज्ञामूर्तिक्लृप्त्यधिकरणम् ॥ २०-२२ ॥

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—नामरूपयोः कर्ता परमेश्वरो जीवो वेति सन्देहस्तत्राह—त्रिवृत्कुर्वतः परमेश्वरस्यैव संज्ञामूर्तिक्लृप्तिः, संज्ञा = नाम, मूर्तिः = रूपं, तयोः संज्ञामूर्तयोः क्लृप्तिः = कृतिः सृष्टिरिति यावत्। कुतः ? 'नामरूपे व्याकरवाणि' इत्युपदेशात्। 'तेजोऽबन्नात्मना त्र्यात्मकं करिष्यामि' इति श्रुत्या त्रिवृत्करणं पञ्चीकृतोपलक्षणार्थम् ॥ २० ॥

पदार्थः—संज्ञामूर्तिक्लृप्तिः = संज्ञा (नाम), मूर्ति (रूप), क्लृप्ति (कृति, सृष्टि, रचना)। तु = तो। त्रिवृत्कुर्वतः = अग्नि, जल और पृथिवी इन तीन तत्त्वों को एकत्र करके सृष्टि रचनेवाले की हैं। उपदेशात् = ऐसा श्रुति से सिद्ध है ॥ २० ॥

भाषार्थः—नाम-रूप (संसार) का कर्ता ईश्वर है या जीव ? इस संशय का उत्तर देते हैं कि इस नाम-रूपवाले जगत् का कर्ता त्रिवृत् करनेवाला ईश्वर ही है, क्योंकि 'मैं नाम-रूपात्मक जगत् की रचना करूँ' इस श्रुतिरूप उपदेश से यह सिद्ध है ॥ २० ॥

मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—त्रिवृत्कृताया भूमेः कार्यं मांसादि तद्यथाशब्दं निष्पद्यते । तथा हि—'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः' (छा० ६ । ५ । ११) इत्येवमितरयोरप्तेजसोरपि कार्यं यथाशब्दं ज्ञातव्यम् । मूत्रं लोहितं प्राणश्चेत्यपां कार्यम् । तेजसोऽस्थिमज्जावाक् चेति ॥ २१ ॥

पदार्थः—मांसादि = मांस आदि । भौमम् = पृथिवीतत्त्व के कार्य । यथाशब्दम् = श्रुति के कथनानुसार । इतरयोः = जल और तेज के कार्य । च = भी जानने चाहिये ॥ २१ ॥

भाषार्थः—पञ्चीकृत पृथिवीतत्त्व के कार्य ये हैं । पृथ्वी का स्थूलभाग पुरीष, मध्यभाग मांस और सूक्ष्मभाग मन है । जैसा कि 'खाया हुआ अन्न तीन भागों में परिणत होता है' इस श्रुति से सिद्ध है । इसी प्रकार दूसरे जल और तेज के कार्य श्रुति के अनुसार जानने चाहिये । जैसे, जल का स्थूलभाग मूत्र, मध्यभाग रक्त और सूक्ष्मभाग प्राण है एवं अग्नि का स्थूलभाग अस्थि, मध्यभाग मज्जा और सूक्ष्मभाग वाक् इन्द्रिय है ॥ २१ ॥

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—समञ्चेत् त्रिवृत्करणं तत्कथमिदं तेज इमा आप इदमन्नमिति विशेषः । तुशब्दः शङ्कानिरासाय । भागभूयस्त्वात्तेषां भेदग्रहणम् । तद्वादस्तद्वाद इति द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था ॥ २२ ॥

पदार्थः—तु शब्द शङ्का-निवारण के लिये है । वैशेष्यात् = अधिकता के कारण । तद्वादः = उनके नाम मिलते हैं । दो बार यह कथन अध्याय की समाप्ति का सूचक है ॥ २२ ॥

भाषार्थः—सम त्रिवृत्-करण से यह तेज है यह जल है और यह पृथ्वी है

ऐसी विषमता क्यों ? इसका समाधान है कि पृथ्वी आदि तत्त्वों की अधिकता से यह विषमता आ गयी। वस्तुतः यह त्रिवृत्-करण पञ्चीकरण का उपलक्षण है। पञ्चीकृत तत्त्वों में आधा भाग अपना है और उनमें आठवां-आठवां भाग अन्य चार तत्त्वों का मिला होता है। आधा भाग अधिक होने से ही ये सूक्ष्म अग्राह्य तत्त्व स्थूलरूप में व्यवहार में आते हैं। तद्वादः, तद्वादः यह दो बार कथन अध्याय-समाप्ति का सूचक है ॥ २२ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने द्वितीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

समाप्तोऽयमविरोधाख्यो द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ वेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये

प्रथमः पादः

तदन्तरप्रतिपत्त्यधिकरणम् ॥ १-७ ॥

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—तदन्तरप्रतिपत्तौ तदारम्भकैर्भूतसूक्ष्मैः संपरिष्वक्तः परिवेष्टितो रंहति गच्छति। कुतः ? प्रश्ननिरूपणाभ्याम्। तथा हि प्रश्नः—'वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' (छा० ५।३।३) इति। निरूपणञ्च प्रतिवचनम्—द्यु पर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषित्सु पञ्चस्वग्निषु श्रद्धासोमवृष्ट्यन्नरेतोरूपाः,—'इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' (छा० ५।९।१) इति ॥ १ ॥

पदार्थः—तदन्तरप्रतिपत्तौ = उस पूर्वदेह से देहान्तर की प्राप्ति होने पर सम्परिष्वक्तः = सूक्ष्मशरीर से वेष्टित होकर। रंहति = परलोक को जाता है। प्रश्ननिरूपणाभ्याम् = प्रश्नोत्तर से यह सिद्ध है ॥ १ ॥

भाषार्थः—पूर्वदेह से दूसरे देह की प्राप्ति होने पर जीव सूक्ष्मशरीर से परिवेष्टित होकर परलोक को जाता है। जाकर जैसे दूसरे देह को धारण करता है यह छान्दोग्य उपनिषद् के प्रश्नोत्तर से जानना चाहिये। वहाँ प्रवाहण ने श्वेतकेतु से प्रश्न किया कि–'पाँचवीं आहुति में जल पुरुषरूप से प्रकट होता है। यह तू जानता है?' श्वेतकेतु ने उत्तर दिया—स्वर्गरूप अग्नि में श्रद्धा की पहली आहुति देने से सोम की उत्पत्ति होती है। मेघरूप अग्नि में सोम का हवन करना यह दूसरी आहुति है। इससे वृष्टि उत्पन्न होती है। फिर पृथ्वीरूप अग्नि में वृष्टि का हवन करना यह तीसरी आहुति है। इससे अन्न की उत्पत्ति होती है। फिर पुरुषरूप अग्नि में अन्न का हवन करना यह चौथी आहुति है। इससे जल (वीर्य) की उत्पत्ति होती है। फिर स्त्रीरूप अग्नि में वीर्य का हवन करना यह पाँचवीं आहुति है। इससे पुरुष-शरीर की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार पाँचवीं आहुति में जल पुरुषरूप से प्रकट होता है ॥ १ ॥

त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—शरीरस्य वातपित्तश्लेष्मभिस्त्र्यात्मकत्वाज्जलमात्रजन्यत्वं न संभवति । वातपित्तयोर्वायुतेजःकार्यत्वात् । अथवापां त्रिवृत्करणश्रुत्या त्र्यात्मकस्य देहस्यापूजन्यत्वे सिद्धे इतरभूतद्वयजन्यत्वं तत्परिष्वङ्गश्च सिद्धयत,- तर्हि श्रुतावब्ग्रहणं कथम् । तत्राह—भूयस्त्वादिति । यद्यपि देहे भूभूयस्त्वमेव तथापि वायुतेजोऽपेक्षयापां भूयस्त्वं बोद्धव्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—त्र्यात्मकत्वात् = तीन तत्त्वमय होने से । तु=तथा । भूयस्त्वात् = अधिकता होने से ॥ २ ॥

भाषार्थः—शरीर के वायु, तेज तथा पृथिवीमय होने से केवल जल से शरीर उत्पन्न होता है यह कथन असंभव है। इस शङ्का को तु शब्द निवारण करता है। शरीर के उत्पादक वीर्य में यद्यपि पञ्चभूतों का संमिश्रण है, तथापि वीर्य में जलतत्त्व की अधिकता होने से केवल जल को देह का उत्पादक कहा है ॥ २ ॥

प्राणगतेश्च ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति' (बृ० ४ । ४ । २) इति प्राणगतेश्च श्रवणादपि तत्परिष्वङ्गः सिद्धयति, भूताश्रिता एव प्राणा गच्छन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—प्राणगतेः=प्राणों का जाना । च = भी श्रुति कहती है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—'जीव के साथ प्राण भी जाता है और मुख्यप्राण के साथ इन्द्रियाँ भी जाती हैं' इस श्रुति में जीव का इन्द्रियों के साथ धूममार्ग से स्वर्ग में जाना सिद्ध है। इसीसे परिष्वङ्ग अर्थात् इन्द्रियों के साथ जीव की गति (जाना) भी सिद्ध है ॥ ३ ॥

अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—अग्न्यादिदेवेष्विन्द्रियाणां लयश्रवणान्न तेषामिन्द्रियाणां लोकान्तरं प्रति गतिरिति चेन्न तस्या अग्न्यादिगतेर्गौणीश्रवणात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—अग्न्यादिगतिश्रुतेः = अग्नि आदि देवताओं में इन्द्रियों का लय श्रुतिसिद्ध होने से । चेत् = यदि कहो कि इन्द्रियाँ जीव के साथ नहीं जातीं। इति न = ऐसा तर्क ठीक नहीं । भाक्तत्वात्=यह श्रुति गौण है, मुख्य नहीं ॥ ४ ॥

भाषार्थ:—यदि कहो कि मृत्यु-समय में वाक् आदि इन्द्रियाँ अपने-अपने अभिमानी देवताओं में लीन हो जाती हैं, इस विषय में 'वाक् अग्नि में, चक्षु सूर्य में और मन चन्द्रमा में लय होता है' यह श्रुति प्रमाण है; अतः जीव के साथ इन्द्रियाँ तथा प्राण नहीं जाते। तो यह कहना उचित नहीं, क्योंकि यह श्रुति गौण है ॥ ४ ॥

प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थ:—पञ्चम्यामाहुतावपां पुरुषवचस्त्वप्रकारो निश्चेतुं शक्यते 'तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति' (छा० ५। ४। २) इति प्रथमे द्युलोकाख्याग्नौ श्रद्धैवाहुतित्वेन श्रूयते न त्वापः। इति चेन्न। कुतः? ता एव आपः श्रद्धाशब्देनोच्यन्ते। 'आपो हास्मै श्रद्धां संनमन्ते' इत्युपपत्तेः–अपां हि होमद्रव्यत्वेनाहुतित्वं सम्भवति ॥ ५ ॥

पदार्थ:—चेत् = यदि कहो कि। प्रथमे = पहली अग्नि में। अश्रवणात् = जल का श्रुति में निर्देश नहीं है। इति न=ऐसा नहीं। हि=क्योंकि। ताः एव = वही जल श्रद्धा शब्द का सूचक है। उपपत्तेः = ऐसा मानने से ही श्रुति सुसंगत होती है ॥ ५ ॥

भाषार्थ:—'पहली द्युलोक नामक अग्नि में देवताओं ने श्रद्धारूप द्रव्य की आहुति दी, जल की नहीं' ऐसा कथन उचित नहीं, क्योंकि वहाँ जल को ही श्रद्धा शब्द से सूचित किया है; जैसा कि 'इस यजमान के लिये जल को श्रद्धा रूप से प्रस्तुत किया' इस श्रुति से सम्भव है। अतः जल की आहुति ही श्रुतिसम्मत है ॥ ५ ॥

अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थ:—अबादिभूतपरिष्वक्तो जीवो रंहति, इत्ययुक्तमेव जीवस्य रंहणकर्तृत्वस्याश्रवणात्। इति चेन्न। तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति। तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवतीति सोमस्य राजशब्दश्रवणात्त एवेष्टकारिणः प्रतीयन्तेऽतो भूतपरिष्वक्तजीवानां रंहणम् ॥ ६ ॥

पदार्थ:—अश्रुतत्वात् = जीवों का मरकर कहीं जाना श्रुति में नहीं कहा गया है। इति चेत् = यदि ऐसा कहो तो। न = यह उचित नहीं। इष्टादिकारिणाम् = शुभ कर्म करनेवालों की तरह। प्रतीतेः=यज्ञ-होम करनेवाले भी चन्द्रादि लोकों में जाते हैं, यह बात शास्त्रसम्मत है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—जीवों का मरकर कहीं जाना सुना नहीं—ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि जैसे वापी-कूपादि इष्ट कर्म करनेवाले धूमादि पितृयानमार्ग से चन्द्रादि लोकों को जाते हैं, वैसे ही होम-यज्ञादि आपूर्त कर्म करनेवाले भी जाते हैं; यह बात शास्त्रसम्मत है ॥ ६ ॥

भाक्तं वाऽनात्मवित्त्वात्तथा हि दर्शयति ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—वाशब्दः शङ्कानिवर्तकः । तेषामिष्टादिकारिणामन्नत्वं भाक्तं गौणमेव न मुख्यम् । प्रकरणात् पञ्चाग्निविद्येहात्मविद्योच्यते । केवलं कर्मिणामिष्टादिकारिणां पञ्चाग्निविद्यानभिज्ञानां देवान्प्रत्यन्नभावेन भोग्यत्वम्। पशुवद्देवानामुपकरोति हविरादिदानेन। तथा हि श्रुतिर्दर्शयति। 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्।' (बृ० १।४।१० ॥ ७ ॥

पदार्थः—'वा' शब्द शङ्का-निवारण के लिये है। अनात्मवित्त्वात्=अज्ञानी होने से। भाक्तम् = कर्मियों को देवताओं का अन्न कहना गौण है। तथा हि= वैसा ही। दर्शयति = श्रुति भी दिखाती है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—वा शब्द शङ्का-निवर्तक है। उन वापी-कूप आदि इष्ट कर्म करनेवाले तथा होम-यज्ञादि आपूर्त कर्मों को करनेवाले सकाम कर्मियों को देवताओं का अन्न कहना गौण है। 'न देवता खाते हैं और न पीते हैं, वे अमृत को पीकर तृप्त रहते हैं।' (छा० ३।६।१) अतः श्रुति में केवल इष्टापूर्त कर्म करनेवाले पञ्चाग्निविद्या से अनभिज्ञ अज्ञानी ही अन्नवत् देवताओं के भोग्य कहे गये हैं ॥ ७ ॥

कृतात्ययाधिकरणम् ॥ ८-११ ॥

कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवञ्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—कृतस्य स्वर्गप्रापककर्मजातस्य भोगेनात्यये नाशेऽनुशयवान् भुक्तफलस्यावशेषवान् अवरोहति। कुतः? दृष्टस्मृतिभ्याम्—दृष्टा प्रत्यक्षा श्रुतिः-'तद्य इह रमणीयचरणाः' इति श्रुतिः। तथा 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकम्' इति स्मृतिः। ताभ्यां हेतुभ्याम्—येन मार्गेण चन्द्रादिलोकानारूढास्तेनैवावरोहन्ति विपरीतेन वा? तत्राह—यथेतं यथागतं अनेवं—तत्किञ्चिद्विपरीतमार्गेणावरोहन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—च=और। कृतात्यये=किये हुए पुण्यकर्मों के नाश होने पर। अनुशयवान् = भोग से शेष बचे हुए कर्मवाला। यथेतम्=जिस मार्ग से गया था। अनेवम्=उससे कुछ भिन्न मार्ग से लौटता है। दृष्टस्मृतिभ्याम् = इसमें श्रुति-स्मृति प्रमाण हैं॥ ८॥

भाषार्थः—इष्टादि कर्म करनेवाला स्वर्गदायक पुण्यकर्मों के क्षीण होने पर शेष कर्मों का फल भोगने के लिये मृत्युलोक में उत्तम कुल में जन्म लेता है, इसमें श्रुति और स्मृति प्रमाण हैं। 'उत्तम कर्मकर्ता उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं' यह श्रुति है। 'पुण्यात्मालोग विशाल स्वर्ग को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मर्त्यलोक में जन्म लेते हैं' यह गीतास्मृति है। किन्तु जिस मार्ग से गया था उससे कुछ भिन्न मार्ग से लौटता है॥ ८॥

चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः॥ ९॥

सूत्रार्थः—रमणीयेतिश्रुतिबलात्सानुशयानामवरोहणमित्येतदसंगतम्। तस्यां श्रुतौ चरणाद्योन्यापत्तिश्रवणादाचारात्मकस्य चरणस्य कर्मणोऽनुशयाद्भिन्नत्वादिति चेन्न, इयं श्रुतिरनुशयसूचकेति कार्ष्णाजिनिर्मन्यते॥ ९॥

पदार्थः—चरणात् = आचरण से योनि प्राप्त होती है। इति चेत्=यदि ऐसी शङ्का हो तो। न = उचित नहीं; क्योंकि। उपलक्षणार्था = श्रुति में चरण शब्द का लाक्षणिक अर्थ अनुशय है। इति कार्ष्णाजिनिः = कार्ष्णाजिनि आचार्य ऐसा मानते हैं॥ ९॥

भाषार्थः—उत्तम कर्म करनेवाले स्वर्ग से लौटकर उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं और नीच कर्म करनेवाले नीच योनि को प्राप्त होते हैं तो अनुशय (शेष कर्म) को लेकर स्वर्ग से लौटते हैं यह कथन व्यर्थ है क्या? नहीं, वृथा नहीं, क्योंकि श्रुति में चरण शब्द का लाक्षणिक अर्थ अनुशय है। ऐसा कार्ष्णाजिनि आचार्य मानते हैं॥ ९॥

आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात्॥ १०॥

सूत्रार्थः—चरणशब्दस्यानर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात्—इष्टादिकर्मणां चरणापेक्षत्वात्॥ १०॥

पदार्थः—आनर्थक्यम् = चरण शब्द वृथा है। इति चेत् न = ऐसी शङ्का उचित नहीं। तदपेक्षत्वात् = चरण शब्द की अपेक्षा है॥ १०॥

भाषार्थः—चरण और अनुशय शब्द भिन्नार्थक हैं। इसपर भी चरण शब्द को अनुशयार्थक मानेंगे तो चरण शब्द का जो सदाचार अर्थ है वह व्यर्थ ही हुआ क्या? इसका उत्तर देते हैं कि नहीं, व्यर्थ नहीं, चरण (सदाचार) उत्तम कर्म का साधन होने से उसकी अपेक्षा है। दुराचारी उत्तम कर्म नहीं कर सकता ॥ १० ॥

सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—बादरिस्तु चरणशब्देन सुकृतदुष्कृतयोर्ग्रहणं मन्यते ॥ ११ ॥

पदार्थः—बादरिः = बादरि आचार्य । तु = तो । सुकृतदुष्कृते = चरण शब्द का अर्थ पुण्य-पाप । एव = ही है। इति = ऐसा मानते हैं ॥ ११ ॥

भाषार्थः—बादरि आचार्य तो चरण शब्द से पुण्य-पाप का ही ग्रहण करते हैं ॥ ११ ॥

अनिष्टादिकार्यधिकरणम् ॥ १२-२१ ॥

अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—अनिष्टादिकारिणामपि चन्द्रलोकगमनं श्रुतम्। 'ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते गच्छन्ति' (कौषी० १। २) इति श्रुतिः ॥ १२ ॥

पदार्थः—अनिष्टादिकारिणाम् = अशुभ आदि कर्म करनेवालों का। अपि = भी चन्द्रलोक में जाना होता है। च श्रुतम् = ऐसा श्रुति में भी कथन है ॥ १२ ॥

भाषार्थः—अनिष्ट अर्थात् अशुभ आदि कर्म करनेवालों का भी 'जो कोई इस लोक से मरकर जाते हैं वे सब चन्द्रलोक को जाते हैं' इस श्रुति से चन्द्रलोक में जाना सिद्ध है ॥ १२ ॥

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—संयमने यमालये स्वपापानुरूपां यामीं यातनामनुभूयेमं लोकमवरोहन्ति। एवंभूतौ तेषामारोहावरोहौ भवतः। कुतः ? यमलोकगतेः श्रुतौ दर्शनात् 'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे' (कठ० २। ६) इति ॥ १३ ॥

पदार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के खण्डन के लिये है। संयमने = यमलोक में। अनुभूय = यम की यातना भोगकर। इतरेषाम्=पापियों का। आरोहावरोहौ = आरोह (नरक में जाना) और अवरोह (नरक से इस लोक में आना)

होता है। तद्गतिदर्शनात् = पापियों की दुर्गति का श्रुतियों में ऐसा ही वर्णन है ॥ १३ ॥

भाषार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के खण्डन के लिये है। पापीलोग स्वर्ग में नहीं जाते, किन्तु यमपुरी में नरक की यातनाओं को भोगकर फिर इसी लोक में आते हैं। इस प्रकार गमनागमन या मरने-जीने का चक्र चलता रहता है। जैसा कि 'पुनः पुनः मेरे वश में होते रहते हैं' इस श्रुति से सिद्ध है ॥ १३ ॥

स्मरन्ति च ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—व्यासादयोऽपि पापिनां यमयातनां स्मरन्ति ॥ १४ ॥

पदार्थः—च = और। स्मरन्ति = स्मृतियाँ भी ऐसा ही कहती हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थः—व्यास वसिष्ठ आदि शिष्ट पुरुष भी अपनी-अपनी स्मृतियों में पापियों की यम-यातनाओं का वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥

अपि च सप्त ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—अपि च पौराणिकैः सप्त नरका रौरवाद्या स्मर्यन्ते ॥ १५ ॥

पदार्थः—अपि च = और भी। सप्त = सात नरकों का वर्णन है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—और पुराणों में भी सात नरकों का वर्णन है ॥ १५ ॥

तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—तत्रापि चित्रगुप्तादीनां यमप्रयुक्तत्वादविरोधः। यमप्रयुक्ता एव चित्रगुप्तादयः शासनात्मकं स्वव्यापारं कुर्वन्तीति ॥ १६ ॥

पदार्थः—तत्रापि च = नरकों में भी। तद्व्यापारात् = उसीका व्यापार होने से। अविरोधः = कोई विरोध नहीं है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—नरकों में भी यमराज की प्रेरणा से ही चित्रगुप्तादि का शासनात्मक व्यापार चलने से वह व्यापार भी यम का ही है, अतः कोई विरोध नहीं है ॥ १६ ॥

विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—विद्याकर्मणोरेव देवयानपितृयानात्मकमार्गद्वयसार्थकत्वेन प्रकृतत्वात्। विद्याकर्मणोरितरेषां जायस्व म्रियस्वेति तृतीयमार्गः प्रदर्शितः।

तेनासौ चन्द्रलोको न पूर्यते। 'जायस्व म्रियस्वेति' (छा० ५। १०। ८)॥ १७॥

पदार्थ:—विद्याकर्मणो:-विद्या और कर्म (मार्ग) का। तु=ही। प्रकृतत्वात्=प्रकरण होने से। इति=ऐसा कथन है॥ १७॥

भाषार्थ:—पञ्चाग्निविद्यावाले ज्ञानियों तथा इष्टापूर्त शुभकर्म करनेवाले कर्मियों के लिये ही देवयान तथा पितृयान इन दो मार्गों का प्रकरण होने से यह कथन है कि ज्ञानी देवयानमार्ग से और इष्टापूर्त शुभकर्मकर्ता पितृयानमार्ग से चन्द्रलोक को जाते हैं, कुकर्मी पापी नहीं। अतएव चन्द्रलोक इतना नहीं भर जाता कि वहाँ स्थान ही न रहे॥ १७॥

न तृतीये तथोपलब्धेः॥ १८॥

सूत्रार्थ:—तृतीयमार्गे प्रविष्टानां देहप्राप्त्यर्थमाहुतिनियमो नादर्तव्यः। कुतः? तथोपलब्धेः 'जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानम्' (छा० ५। १०। ८) इति श्रुतौ तृतीयमार्गे देहप्राप्तेरुपलब्धेः। इष्टादिकारिणामेवायं संख्यानियमः। पञ्चम्यामाहुतावाप इत्यधिकारिपुरुषाभिप्रायेणोक्तम्, न तु कीटपतङ्गादिशरीरत्वेन॥ १८॥

पदार्थ:—तृतीये=देवयान, पितृयान इन दो मार्गों से पृथक् तृतीयमार्ग में। न=आहुति का नियम नहीं है। तथोपलब्धेः=बिना आहुति-नियम के तृतीयमार्गवाले कीट-पतङ्गादि का जन्म हो जाता है॥ १८॥

भाषार्थ:—देवयान, पितृयान इन दो मार्गों से पृथक् जो तृतीयमार्ग है उसकी प्राप्ति के लिये आहुति का नियम नहीं है। जन्मना और मरना ही जिनका धर्म है उन कीट-पतंगादि का जन्म बिना संख्यानियम के हो जाता है। 'पांचवीं आहुति में जल (वीर्य) पुरुषरूप में प्रकट होता है' इस प्रकार आहुति का नियम ज्ञानी तथा इष्टादि शुभकर्म करनेवाले के अभिप्राय से कहा है पापी और कीटादि के लिये नहीं॥ १८॥

स्मर्यतेऽपि च लोके॥ १९॥

सूत्रार्थ:—आहुतिनियमो मनुष्यशरीरेऽपि सर्वत्र नास्ति। यथा द्रोणधृष्टद्युम्नसीताद्रौपद्यादीनामयोनिजत्वमिति लोके स्मर्यते॥ १९॥

पदार्थ:—च=और। लोके=जगत् में। अपि=भी। स्मर्यते=देखा जाता है॥ १९॥

भाषार्थः—मनुष्यों में भी सर्वत्र वीर्य की आहुति का नियम नहीं है। जैसे द्रोण, धृष्टद्युम्न, सीता, द्रौपदी आदि योनि से उत्पन्न नहीं हुए ॥ १९ ॥

दर्शनाच्च ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—जरायुजादिचतुर्विधभूतग्रामे स्वेदजोद्भिज्जयोर्मैथुनं विनैवोत्पत्तिदर्शनान्नाहुतिनियमः ॥ २० ॥

पदार्थः—दर्शनात् च = बिना मैथुन की भी सृष्टि देखी जाती है ॥ २० ॥

भाषार्थः—अण्डज आदि में भी स्वेदज (जूँ आदि) उद्भिज्ज (वृक्षादि) की भी बिना मैथुन के उत्पत्ति देखी जाती है, यहाँ भी आहुति का नियम नहीं है ॥ २० ॥

तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—'अण्डजं जीवजमुद्भिज्जम्' (छा० ६।३।१) इत्यत्र त्रिविध एव भूतग्रामः श्रूयते, तत्कथं भूतग्रामस्य चतुर्विधत्वं प्रतिज्ञातमित्यत्रोच्यते—अत्र तृतीयेनोद्भिज्जशब्देन संशोकजस्य स्वेदजस्योपसंग्रहो ज्ञेयः ॥ २१ ॥

पदार्थः—संशोकजस्य = पसीने से उत्पन्न होनेवाले स्वेदज का। तृतीयशब्दावरोधः=तृतीय उद्भिज्ज शब्दसमूह में ग्रहण करना चाहिये ॥ २१ ॥

भाषार्थः—यद्यपि लोक में अण्डज आदि चतुर्विध भूतग्राम प्रसिद्ध हैं, तथापि उपर्युक्त श्रुति में स्वेदज की उद्भिज्ज में गणना कर तीन का ग्रहण किया है। क्योंकि स्वेदज पसीने (जल) से उत्पन्न होता है और उद्भिज्ज (वृक्षादि) भी जल से उत्पन्न होते हैं, अतः दोनों की एकता सम्भव है ॥ २१ ॥

साभाव्यापत्त्यधिकरणम् ॥ २२ ॥

साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—स्वर्गावरोहतां जीवानां तैराकाशादिभिः साभाव्यापत्तिः सादृश्यापत्तिरेव। कुतः? 'अथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाभ्रं भवत्यभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति' (छा० ५।१०।५) इत्युपपत्तेः ॥ २२ ॥

पदार्थः—साभाव्यापत्तिः = सादृश्य की प्राप्ति। उपपत्तेः = सम्भव होने से ॥ २२ ॥

भाषार्थः—स्वर्ग से लौटनेवाले जीव जिन आकाशादि में होकर आते हैं उनके रूप ही बन जाते हैं या उनके सदृश होते हैं। जैसा इस श्रुति से सिद्ध है कि 'स्वर्ग से लौटते हुए जीव पहले आकाश को प्राप्त होते हैं, आकाश से वायु को। वायु से धूम होकर अभ्र (बादल की पूर्वावस्था कुहरा के सदृश) होते हैं। अभ्र से मेघ और मेघ से जलरूप होकर भूमि में गिरते हैं, भूमि से जल द्वारा धान, गेहूँ, जौ आदि अन्नभाव को प्राप्त होते हैं। अन्न से वीर्य बनकर पिता द्वारा माता के गर्भ में जाकर मनुष्यरूप से प्रकट होते हैं ॥ २२ ॥

नातिचिराधिकरणम् ॥ २३ ॥

नातिचिरेण विशेषात् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—जीवो नातिचिरेण—अल्पकालमेवाकाशादिवर्षान्तैः सादृश्येनावस्थाय वर्षाधाराभिः पृथिवीं प्रविशति। कुतः ? विशेषात्—अग्रिमवाक्ये व्रीह्यादिषु चिरकालावस्थानरूपविशेषदर्शनात् ॥ २३ ॥

पदार्थः—नातिचिरेण = बड़े समय तक नहीं। विशेषात् = श्रुति के वाक्यविशेष से ॥ २३ ॥

भाषार्थः—जीव अल्पकाल ही आकाशादि तत्त्वों में रहकर वर्षा की धारा के साथ भूमि में प्रवेश करता है, भूमि से गेहूँ आदि अन्नों में चिरकाल तक रहकर बड़े कष्ट से निकलता है। यह बात 'निश्चय ही यहाँ से निकलना अति ही कष्टदायक है' (छा० ५। १०। ६) इस विशेष श्रुतिवाक्य से सिद्ध है। यह पूर्वपक्ष है ॥ २३ ॥

अन्याधिष्ठिताधिकरणम् ॥ २४-२७ ॥

अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—अन्यैर्जीवैरधिष्ठितेषु व्रीह्यादिस्थावरशरीरेषु सुखदुःखभाजोऽनुशयिनो जीवा इति पूर्वपक्षः। सिद्धान्तः—अन्यैर्जीवैरधिष्ठितेषु व्रीह्यादिषु संसर्गमात्रमनुशयिनां भवति। यथाकाशादौ संसर्गमात्रं तद्वत्। कुतः ? अभिलापात्—यथाकाशादिवर्षान्तेषु कर्मपरामर्शमन्तरेणैव प्रवेश उक्त एवं व्रीह्यादिषु ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—अन्याधिष्ठितेषु = दूसरे जीवों से अधिष्ठित व्रीह्यादि भौतिक शरीरों में। पूर्ववत् = पहले की तरह। अभिलापात् = कथन होने से ॥ २४ ॥

भाषार्थः—जिनके कर्मभोग अभी शेष हैं ऐसे जीव व्रीहि आदि शरीरों में रहकर सुख-दुःखरूप कर्मफलों को भोगते हैं। यह पूर्वपक्ष है।

सिद्धान्त यह है—जैसे आकाशादि में संसर्गमात्र स्थिति होती है वैसे ही धान आदि शरीरों में भी जीव की संसर्गमात्र स्थिति होती है, सुख-दुःखरूप कर्मफल के भोग के लिये नहीं ॥ २४ ॥

अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—ननु ज्योतिष्टोमादिकं कर्म पशुहिंसायोगादशुद्धमशुद्धत्वाज्ज्योतिष्टोमादिकारिणामनुशयिनां व्रीह्यादिस्थावरेषु दुःखानुभवार्थं मुख्यमेव जन्मास्त्विति चेन्न। कुतः? शब्दात्—विधिशास्त्राद् धर्मत्वेनावगमान्न दोषः ॥ २५ ॥

पदार्थः—अशुद्धम् = ज्योतिष्टोमादि यज्ञ पशुहिंसा के कारण अशुद्ध हैं। इति चेत् = ऐसा यदि कहो तो। न = ठीक नहीं। शब्दात् = विधिशास्त्र से सम्मत होने से ॥ २५ ॥

भाषार्थः—ज्योतिष्टोमादि यज्ञ पशु-हिंसा के कारण अशुद्ध होने से उन यज्ञों के कर्त्ता स्वर्ग में पुण्यकर्मों को भोगने के अनन्तर शेष बचे हुए कर्मों का दुःखरूप फल भोगने के लिये ही व्रीहि आदि अन्नरूप स्थावर शरीरों में मुख्य जन्म लेते हैं। यदि ऐसी शङ्का करो तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि विधिरूप शास्त्र ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को धर्म करके मानता है। अतः वे यज्ञ निर्दोष होने से उनके कर्ता स्थावर योनियों में जन्म नहीं ले सकते ॥ २५ ॥

रेतःसिग्योगोऽथ ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—अथ व्रीह्यादिभावानन्तरमनुशयिनां रेतःसिग्योगः श्रुतावाम्नायते। रेतः सिञ्चतीति रेतःसिक् तद्योगः। न ह्यत्रानुशयिनो रेतःसिग्योगो मुख्यः सम्भवति, इदानीं पुरुषप्रविष्टत्वेनाप्राप्तयौवनत्वात्। अतो व्रीह्यादावपि तद्भावस्तत्संसर्ग एव वक्तव्यः ॥ २६ ॥

पदार्थः—अथ = धान आदि शरीरों के त्याग के अनन्तर। रेतःसिग्योगः = वीर्य सेचन करनेवाले से संयोग होता है ॥ २६ ॥

भाषार्थः—धान आदि अन्नरूप शरीरों के अनन्तर वीर्य सेचन करनेवाले से संयोग होता है। 'जो अन्न को खाता है और गर्भाधान करता है वह जीव भी उसी अन्न और वीर्य को प्राप्त होता है' (छा० ५। १०। ६)

इस श्रुति के अनुसार वह स्वर्ग से लौटा हुआ अनुशयी जीव उस अन्नभोक्ता के अन्नरूप में होकर फिर अन्न से अन्नभोक्ता के संयोग से वीर्यरूप में स्थित होता है। तदनन्तर पुरुष के गर्भाधान द्वारा स्त्री के उदर में प्रवेश करता है। गर्भाधान यौवनावस्था के बिना असंभव है। धान आदि स्थावर योनियों में यौवनावस्था तथा वीर्याधान दोनों का अभाव है। अतः सिद्ध हुआ कि स्वर्ग से लौटे हुए जीव की जैसे आकाशादि तत्त्वों के रूप में अल्प-कालीन संसर्गमात्र स्थिति होती है वैसे ही धानादि अन्न के रूप में भी अल्प-कालीन संसर्गमात्र स्थिति होती है ॥ २६ ॥

योनेः शरीरम् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—योनौ रेतसि प्रविष्टे शरीराज्जायत इति श्रुत्यर्थः ॥ २७ ॥

पदार्थः—योनेः = गर्भाधान से। शरीरम् = शरीर बनता है ॥ २७ ॥

भाषार्थः—पुरुष द्वारा स्त्री की योनि से गर्भाशय में वीर्य के प्रवेश होने पर भोगायतन शरीर बनता है। इसी शरीर से जीव समस्त कर्मों के फलों को भोगता है। आकाशादि से वीर्य पर्यन्त शरीरों में जन्म तथा कर्मों का भोग कुछ नहीं होता। अतः सिद्ध हुआ कि स्वर्ग से लौटा हुआ जीव आकाशादि शरीरों में जन्म न लेकर उत्तम कुल में जन्म लेता है ॥ २७ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां

प्रथमः पादः ॥ १ ॥

अथ वेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये

द्वितीयः पादः

(अस्मिन् पादे तत्त्वंशोधनविचारः)

संध्याधिकरणम् ॥ १–६ ॥

संध्ये सृष्टिराह हि ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—जाग्रत्सुषुप्त्योः सन्धौ भवे सन्ध्ये स्वप्ने सृष्टिर्व्यावहारिकी एव । यतः श्रुतिराह–'अथ रथान् रथयोगान्पथः सृजते' (बृ० ४ । ३ । १०) ॥ १ ॥

पदार्थः—सन्ध्ये = स्वप्नावस्था में । सृष्टिः = जगत् सत्य है । हि = क्योंकि । आह = श्रुति कहती है ॥ १ ॥

भाषार्थः—स्वप्न की सृष्टि सत्य है, क्योंकि 'स्वप्न में रथ और रथ के मार्ग रचे जाते हैं' यह श्रुति ऐसा ही कहती है ॥ १ ॥

निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—एके शाखिनः कामानां निर्मातारमात्मानमामनन्ति 'य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः' (कठ० ५ । ८) इति । काम्यन्त इति व्युत्पत्त्या पुत्रादय एव कामशब्दवाच्याः । तथा च स्वप्नसृष्टिः सत्या ॥ २ ॥

पदार्थः—च = तथा । एके = कोई शाखावाले । निर्मातारम् = पुरुष को कामनाओं का रचयिता मानते हैं अतः स्वप्न सत्य है । च = और । पुत्रादयः = वे कामनाएँ पुत्र आदि हैं ॥ २ ॥

भाषार्थः—कोई शाखावाले आत्मा को पुत्रादि कामनाओं का रचयिता मानते हैं । जैसा कि श्रुति कहती है–'यह पुरुष इन्द्रिय-व्यापार के शून्य हो जाने पर सब पुत्रादि पदार्थों को रचता हुआ जागता है ।' यहाँ पुत्रादि पदार्थों का ग्रहण होने से स्वप्न-सृष्टि सत्य है ॥ २ ॥

मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः सूत्रद्वयोक्तपूर्वपक्षनिवर्तकः । स्वप्नसृष्टिर्मायामात्रं कार्त्स्न्येन परमार्थवस्तुधर्मेणानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—तु = तु शब्द पूर्वपक्ष-निवर्तक है। कार्त्स्न्येन = पूर्णरूप से। मायामात्रम् = रज्जु-सर्प की भाँति प्रातिभासिक है। अनभिव्यक्तस्वरूपत्वात् = प्रकट न होने से ॥ ३ ॥

भाषार्थः—स्वप्नसृष्टि पूर्णरूप से रज्जु में सर्प की तरह कल्पित है। दिखायी देती है पर है नहीं। क्योंकि स्वप्न के पदार्थों की सत्यरूप से अभिव्यक्ति नहीं होती, तब स्वप्नसृष्टि मायामात्र ही है ॥ ३ ॥

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—स्वप्नः शुभाशुभसूचको भवति । कुतः ?

'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति ।
समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने ॥'
(छा० ५ । २ । ९)

तथा 'पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति ।' इति श्रुतेः । तद्विदः स्वप्नाध्यायविदश्चाचक्षते—स्वप्ने गजारोहणादीनि धन्यानि, खरयानादीन्यधन्यानि ॥ ४ ॥

पदार्थः—च = तथा । सूचकः=स्वप्न शुभाशुभ का सूचक है। हि=क्योंकि। श्रुतेः = श्रुति भी ऐसा ही कहती है। च = और। तद्विदः = स्वप्नविद्या के ज्ञाता भी। आचक्षते=यही कहते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थः—स्वप्न शुभाशुभ बातों का सूचक है। जैसा कि 'जब स्वप्न में स्त्री को देखे तो जाने कि ऋद्धि-सिद्धि मिलेगी और यदि काले दाँतवाले पुरुष को देखे तो समझे कि उसीसे उसकी मृत्यु होगी' इत्यादि श्रुति-स्मृतियों से सिद्ध है। एवं स्वप्नविद्या के ज्ञाता भी कहते हैं—'यदि स्वप्न में हाथी पर चढ़ना देखे तो भाग्योदय समझना चाहिये। यदि गधे पर चढ़ना देखे तो वह अशुभ है। इन प्रमाणों से भविष्य के शुभाशुभ की सूचक होने से स्वप्नसृष्टि सर्वथा व्यर्थ नहीं है। किन्तु स्वप्न शुभाशुभ फलों का सूचक होने से सत्य होने पर भी स्वप्न के पदार्थ कल्पित ही हैं, सत्य नहीं ॥ ४ ॥

पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—ईशसंकल्परचितसृष्टेर्वस्तुत्वे कथन्न तदंशजीवस्य संकल्परचित-स्वप्नसृष्टेर्वस्तुत्वमित्यत्राह—सत्यपि जीवेश्वरयोरंशांशिभावे तस्याविद्यादि-व्यवधानात्तिरोहितमीश्वरत्वमैश्वर्यं वा पराभिध्यानात् परस्येश्वरस्याभेदज्ञानाद् व्यक्तं भवति। यतो हि तज्ज्ञानाभावाद्वन्धस्तज्ज्ञानाच्च मोक्षः। यथा हि—'ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः।' (श्वे० १। ११) इति ॥ ५ ॥

पदार्थः—तु = किन्तु। तिरोहितम् = छिपा हुआ ईश्वरीयभाव। पराभि-ध्यानात् = ईश्वर के ज्ञान से प्रकट हो जाता है। हि = क्योंकि। ततः = उस ईश्वर से ही। अस्य = इस जीव के। बन्धविपर्ययौ = बन्धन और मोक्ष होते हैं॥ ५ ॥

भाषार्थः—ईश्वर के सत्यसङ्कल्प होने से उसकी सत्यसङ्कल्परचित सृष्टि भी सत्य है, इसी प्रकार ईश्वर-अंश जीवरचित सृष्टि भी सत्य क्यों नहीं? इसका उत्तर है कि ईश्वर का अंश होने पर भी अज्ञान के कारण जीव की शक्ति का लोप होने से उसकी रची हुई स्वप्न-सृष्टि सत्य नहीं होती। उसी परमात्मा के अभेदज्ञान से जीव की ईश्वरीय सत्यसङ्कल्पादि शक्ति प्रकट हो जाती है, क्योंकि उसीसे जीव के बन्ध और मोक्ष होते हैं, अर्थात् ब्रह्म के अज्ञान से बन्ध और ब्रह्मज्ञान से मोक्ष होता है। जैसा कि 'ईश्वर को जान लेने पर सम्पूर्ण पाशों से मुक्ति हो जाती है' इस श्रुति-वचन से सिद्ध है॥ ५ ॥

देहयोगाद्वा सोऽपि ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—ननु जीवस्येश्वरत्वतिरोभावे को हेतुरित्याशङ्क्याह—देहयोगा-दिति—जीवस्येश्वरत्वतिरोभावो देहेन्द्रिययोगाद्भवति ॥ ६ ॥

पदार्थः—सः = वह तिरोभाव। अपि = भी। देहयोगात् = शरीर के सम्बन्ध से। वा = ही होता है॥ ६ ॥

भाषार्थः—जीव के अपने ईश्वरत्व को भूलने का कारण भी स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर का सम्बन्ध ही है॥ ६ ॥

तदभावाधिकरणम् ॥ ७-८ ॥

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—तदभावः—स्वप्नाभावः सुषुप्तिः। नाडीषु, आत्मनि चेति

नाड्यादीनां समुच्चयो न विकल्पः । नाडीपुरीतत्प्रवेशं विना तत्सम्पत्तेरभावात् । ततो नाडीपुरीततोः समुच्चयः परमात्मनः प्रधानत्वेन ज्ञेयः । कुतः ? तच्छ्रुतेः । तेषां नाड्यादीनां सुषुप्तिस्थानत्वेन श्रुतत्वात् । यथा हि—'सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति ।' (छा० ६ । ८ । १), 'तद्यत्रैतत्सुप्तः……आसु तदा नाडीषु सृप्तो भवति'……… (छा० ८ । ६ । ३), 'ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते……'(बृ० २ । १ । १६) ॥ ७ ॥

पदार्थः—तदभावः = स्वप्न का अभाव अर्थात् सुषुप्ति । नाडीषु = सुषुप्ति में जीव की नाड़ियों में । च = तथा । आत्मनि = आत्मा में स्थिति होती है। तत् श्रुतेः = ऐसा श्रुति से सिद्ध है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—सूत्र १ से ६ तक स्वप्न की परीक्षा हो चुकी, अब सुषुप्ति की परीक्षा सूत्र ७–८ में करते हैं। नाड़ी, पुरीतत् तथा ब्रह्म ये तीन सुषुप्ति के स्थान हैं। यहाँ नाड़ी तथा आत्मा का समुच्चय (एकत्व) है, विकल्प (भेद) नहीं। नाड़ी और पुरीतत् के बिना जीव ब्रह्म को प्राप्त नहीं हो सकता। एक श्रुति ऐसा कहती है—सुषुप्ति में जीव का ब्रह्म से तादात्म्यसम्बन्ध होता है' एक श्रुति जीव का सुषुप्ति में नाड़ी में प्रवेश करना मानती है और एक श्रुति कहती है कि यह जीव नाड़ियों के द्वारा पुरीतत् में होकर हृदय के भीतर ब्रह्म में ही शयन करता है। एवं स्थानसमुच्चय से सुषुप्ति में जीव ब्रह्मैक्य भाव को प्राप्त होता है। पहले जीव नाड़ियों में प्रवेश करता है, फिर नाड़ियों से पुरीतत् नाड़ी में, (जो हृदय को लपेटे हुए है,) उससे हृदय में, हृदय से हृदयस्थ ब्रह्म में। वस्तुतः नाड़ी तथा पुरीतत् तो द्वारमात्र हैं, ब्रह्म ही सुषुप्ति में जीव का स्थान है ॥ ७ ॥

अतः प्रबोधोऽस्मात् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—यतः परमात्मैव सुषुप्तिस्थानमत एव हेतोरस्मात्परमात्मनो जीवस्य प्रबोध उपदिश्यते ॥ ८ ॥

पदार्थः—अतः = इसलिये । अस्मात् = इस परमात्मा से । प्रबोधः = जागना होता है ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जो वस्तु जहाँ लय होती है वहीं से वह प्रकट होती है। जीव ब्रह्म से प्रकट होता है अतः सिद्ध हुआ कि जीव सुषुप्ति में ब्रह्म में लय होता है, नाड़ी या पुरीतत् में नहीं। इसमें श्रुतियाँ स्वयं प्रमाण हैं। जैसे 'यह

कहाँ से आया' (बृ० २ । १ । १६) इस श्रुति के प्रश्न का उत्तर दूसरी श्रुति इस प्रकार देती है कि 'जैसे अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार इस आत्मा से जीव उत्पन्न होते हैं और सत् से निकलकर भी वे जीव नहीं जानते कि हम सत् (ब्रह्म) से आये हैं।' (छा० ६ । १० । २) इत्यादि श्रुति-प्रमाणों से सिद्ध है कि जीव का सुषुप्ति में ब्रह्म में लय होता है, नाड़ी या पुरीतत् में नहीं ॥ ८ ॥

कर्मानुस्मृतिशब्दविध्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—यः सुप्तो जीवः स एवोत्तिष्ठति नान्यः। कुतः ? कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः पञ्चहेतुभ्यः; दिनद्वयसाध्यं कर्म सामि कृत्वा सुप्तो भूय उत्थाय शिष्टं तत् करोतीति कर्म। अनुशब्दः प्रत्यभिज्ञां (अनुभवं) सूचयति। सा च योऽहं गतदिने घटमद्राक्ष्मं स एवेदानीं स्पर्शामीति। अनुभवानन्तरं संस्कारमात्रेण जायमानं स घट इत्यादिकं ज्ञानं स्मृतिः। 'इमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति' (छा० ८ । ३ । २) इत्यादि शब्दाः। अग्निहोत्रं जुहुयादित्यादि कर्मविधिः। वारे आत्मा श्रोतव्यो मन्तव्य इत्यादि विद्याविधिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—तु = और। स एव = वह जीव ही उठता है। कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः = कर्म, अनुस्मृति, शब्द और विधि से यह विदित होता है ॥ ९ ॥

भाषार्थः—जो सुषुप्ति-अवस्था में सोया था वही जीव जागता है, दूसरा नहीं। यह बात कर्म आदि पाँच कारणों से सिद्ध है। उन पाँच कारणों का लक्षण इस प्रकार है—(१) दो दिन में समाप्त होनेवाले काम को आधा करके शेष काम को वही पुरुष दूसरे दिन फिर करता है। यह कर्म का दृष्टान्त है। (२) अनु का अर्थ प्रत्यभिज्ञा है अर्थात् अनुभव है। जो घट मैंने कल देखा था उसी को आज छूता हूँ। यह अनुभव का दृष्टान्त है। (३) अनुभव के पश्चात् फिर उस घट का स्मरण होना स्मृति है। (४) 'ये सब जीव प्रतिदिन ब्रह्म से मिलते हैं पर उसे नहीं जानते।' यह श्रुति-शब्द इसमें प्रमाण है। (५) संध्या तथा अग्निहोत्रादि करने चाहिये, यह कर्मविधि है और आत्मज्ञान ही विद्याविधि है। इन पांच हेतुओं से सिद्ध हुआ कि जो सोता है वही जागता है। यदि सुषुप्तिमात्र से मुक्ति मानेंगे तो कर्म तथा ज्ञानादि की प्रतिपादक शास्त्र-विधि व्यर्थ हो जायगी ॥ ९ ॥

मुग्धेऽर्द्धसम्पत्त्यधिकरणम् ॥ १० ॥

मुग्धेऽर्द्धसम्पत्तिः परिशेषात् ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—न स्वप्नजागरिते मूर्च्छावस्था ज्ञानाभावात्। नापि मरणावस्था प्राणोष्मणोः सत्वात्। नापि सुषुप्तिः वैलक्षण्यात्, सुषुप्तौ मुग्धशरीरवत्कम्पाद्यभावात्। अतो मुग्धावस्था विलक्षणा एवार्द्धसम्पत्तिस्वरूपा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमरणरूपाभ्यः परिशेषात् ॥ १० ॥

पदार्थः—मुग्धे = मूर्च्छावस्था को। अर्द्धसम्पत्तिः = आधी सुषुप्ति मानना चाहिये। परिशेषात्=जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और मृत्यु से पृथक् होने से ॥ १० ॥

भाषार्थः—जाग्रत् और स्वप्न को मूर्च्छावस्था नहीं कह सकते, क्योंकि इन दोनों अवस्थाओं में ज्ञान और चेतना रहते हैं, मूर्च्छा में नहीं। मूर्च्छा सुषुप्ति भी नहीं है, क्योंकि सुषुप्ति में शरीर शान्त और प्रसन्नवदन रहता है; किन्तु मूर्च्छा में शरीर में कम्पन, मुखाकृति भयानक और नेत्र खुले हुए विकृत दिखायी देते हैं। मूर्च्छा मृत्यु भी नहीं है, क्योंकि मृत्यु-अवस्था में न श्वास चलते हैं और न शरीर में गर्मी रहती है। मूर्च्छा में श्वास भी चलते हैं और गर्मी भी रहती है। अतः मूर्च्छावस्था इन चारों अवस्थाओं से विलक्षण होने से अर्द्धसुषुप्ति है ॥ १० ॥

उभयलिङ्गाधिकरणम् ॥ ११-२१ ॥

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—सुषुप्त्यादिषु जीवो येन ब्रह्मणा सम्पद्यते तत्सविशेषं निर्विशेषं वा ? तत्राह–सत्स्वरूपपरस्य परमात्मनो नोभयलिङ्गं सम्भवति; न स्थानत उपाधित उभयलिङ्गञ्च संघटते। तस्मादेकरूपं ब्रह्म निर्विशेषमेव हि। यतः सर्वत्र वेदान्तेषु 'अशब्दमस्पर्शम्' इत्यादिषु सविशेषत्वनिरासेनैव ब्रह्म उपदिश्यते ॥ ११ ॥

पदार्थः—परस्य=परमात्मा के। उभयलिङ्गम्=दो (साकार और निराकार) रूप। न = नहीं हो सकते। स्थानतः=राम-कृष्णादि अवतारों में शरीररूप उपाधि धारण करने पर। अपि = भी (दो रूप नहीं)। हि = क्योंकि। सर्वत्र=समस्त वेदान्तशास्त्रों में अरूप (अद्वैत) ब्रह्म का ही निरूपण है ॥ ११ ॥

भाषार्थः—सुषुप्ति-अवस्था में जीव ब्रह्म को प्राप्त होता है, वह सोपाधिक है या निरुपाधिक ? इसका उत्तर है कि–एक सत्स्वरूप ब्रह्म में दो विरोधी

गुण नहीं घट सकते। यदि कहें कि विराट् या अवतार-शरीरों की अपेक्षा से तो ब्रह्म को सविशेष मानना ही चाहिये तो यह ठीक नहीं है। क्योंकि शरीरधारी दिखायी देने पर भी 'अशब्दमस्पर्शम्' इत्यादि श्रुतियों द्वारा ब्रह्म को शब्द-स्पर्शादि से परे अर्थात् निर्विशेष ही सिद्ध किया है। शरीररूप उपाधि तो कल्पित है। एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है॥ ११॥

न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात्॥ १२॥

सूत्रार्थः—न निर्विशेषं ब्रह्म। कुतः? भेदात्। इति चेन्न। प्रत्येकं प्रत्युपाधिभेदमतद्वचनात्, ह्यभेदस्यैव ब्रह्मणः श्रवणात्॥ १२॥

पदार्थः—भेदात् = सगुण-निर्गुण में भेद होने से। न = ब्रह्म निर्विशेष नहीं है। इति चेत् = यदि ऐसी शङ्का हो तो। न=यह उचित नहीं है। प्रत्येकम् = प्रत्येक उपाधि-भेद में। अतद्वचनात् = अभेद का ही श्रवण होने से॥ १२॥

भाषार्थः—श्रुति में ब्रह्म को कहीं चतुष्पाद और कहीं षोडशकला आदि कहा है, अतः ब्रह्म को केवल निर्विशेष कहना अभिप्रेत नहीं है। ऐसी शङ्का करना उचित नहीं, क्योंकि उपाधि द्वारा निरुपाधिक ब्रह्म को सिद्ध करना ही श्रुति का तात्पर्य है॥ १२॥

अपि चैवमेके॥ १३॥

सूत्रार्थः—अपि चैवमेके शाखिनो भेददर्शननिन्दापूर्वकमभेददर्शनमेवामनन्ति॥ १३॥

पदार्थः—अपि च = और भी। एके = एक शाखावाले। एवम् = भेद में अभेद का दर्शन कराते हैं॥ १३॥

भाषार्थः—और कोई शाखावाले—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन' (कठ० ४। ११) अर्थात् 'यह सब ब्रह्म है, इसमें नानात्व कुछ नहीं' इस प्रकार स्पष्ट भेदरूप जगत् में अभेद ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं॥ १३॥

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्॥ १४॥

सूत्रार्थः—रूपादिहीनं निर्विशेषमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्। कुतः? अस्थूलमनण्वित्यादिशास्त्रस्य प्रधानत्वात्॥ १४॥

पदार्थः—अरूपवत्=ब्रह्म रूपरहित। एव=ही है। हि=क्योंकि। तत्प्रधान-त्वात्=श्रुति में निर्विशेष की ही प्रधानता है॥ १४॥

भाषार्थः—ब्रह्म रूपरहित ही है, क्योंकि 'ब्रह्म न स्थूल है और न अणु है' (बृ० ३।८।८) इत्यादि श्रुतियों में निर्विशेष ब्रह्म की ही प्रधानता है॥ १४॥

प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—यथा सूर्यादिप्रकाशो वक्रवंशाद्युपाधिना वक्र इव, दीर्घ इव ऋजुरिव च भवति, तद्वद् ब्रह्मापि पृथिव्याद्युपाधिवशात्तत्तदाकारमिव भवति। अतः सविशेषब्रह्मणोऽवैयर्थ्यम्॥ १५॥

पदार्थः—च=तथा। प्रकाशवत्=प्रकाश की तरह। अवैयर्थ्यात्=सविशेष (सोपाधिक) ब्रह्म निरर्थक नहीं होने से॥ १५॥

भाषार्थः—जैसे सूर्य का प्रकाश गोलपात्र में गोल और चौकोर पात्र में चौकोर दिखायी देता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी शरीरादि जैसी उपाधि को धारण करता है वैसा ही दीखने लगता है, वस्तुतः वैसा बनता नहीं। अतः सविशेष साकार ब्रह्म की उपासना की दृष्टि से सार्थकता है॥ १५॥

आह च तन्मात्रम् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—तथा चिन्मात्रं ब्रह्मस्वरूपमित्याह श्रुतिः। तथा हि—'स यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः' (बृ० ४।५।१३)॥ १६॥

पदार्थः—तन्मात्रम्=ब्रह्म चिन्मात्र है। आह च=श्रुति यही कहती है॥ १६॥

भाषार्थः—जैसे 'नमकपिण्ड के भीतर-बाहर नमक-ही-नमक है' ऐसा श्रुति ने कहा है, वैसे ही ब्रह्म भी भीतर-बाहर चिन्मात्र ही है॥ १६॥

दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—अथात आदेशो नेति नेतीति श्रुतिर्ब्रह्मणो निर्विशेषत्वं दर्शयति। तथा 'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते' (गीता १३।१२) इति गीतास्मृत्या च स्मर्यते॥ १७॥

पदार्थः—दर्शयति च=श्रुति भी कहती है। अथो=तथा। स्मर्यते अपि=गीतास्मृति भी ब्रह्म को निर्विशेष ही कहती है॥ १७॥

भाषार्थः—'ब्रह्म न सगुण है और न निर्गुण' (बृ० २।३।६) तथा 'ब्रह्म न सत् है और न असत्' इस प्रकार श्रुति और गीतास्मृति ब्रह्म को निर्विशेष ही कहती हैं ॥ १७ ॥

अत एव चोपमा सूर्यकादिवत् ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—अत एव जलसूर्यकादिवदित्युपमोपादीयते। 'यथा ह्ययं ज्योतिः' इति ॥ १८ ॥

पदार्थः—च = और। अत एव = इसीलिये। सूर्यकादिवत् = जलगत सूर्य-प्रतिबिम्ब की तरह। उपमा = दृष्टान्त दिया जाता है ॥ १८ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म जीवरूप अंश से नाना होकर सुख-दुःख का भोक्ता होने से निर्विशेष नहीं हो सकता। इस शंका का समाधान करने के लिये ही जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब की उपमा दी गयी है। जैसे सूर्य जल से भरे हुए अनेक घड़ों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपवाला दिखायी देने पर भी एक ही है, वैसे ही ब्रह्म भी अन्तःकरणरूप जल से युक्त शरीररूप घड़ों में जीवरूप प्रतिबिम्बों द्वारा अनेक रूपोंवाला दिखायी देने पर भी एक ही है। और जैसे जल में पड़े हुए प्रतिबिम्बों के कम्पन आदि धर्मों से सूर्य दूषित नहीं होता, वैसे ही ब्रह्म भी जीवों के सुख-दुःखादि धर्मों से दूषित न होकर निर्विशेष ही रहता है ॥ १८ ॥

अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—दृष्टान्तवैषम्यं शङ्कते—ननु यथा सूर्यादिभ्यो मूर्त्तेभ्यो भिन्नं दूरस्थं प्रतिबिम्बोपाधिभूतमुपलभ्यते तद्वद्व्यापकात्मनो दूरस्थोपाधेरग्रहणादात्मनोऽमूर्तत्वाच्च विषमो दृष्टान्त इति न तथात्वम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—तु = किन्तु। अम्बुवत् = जल के समान। अग्रहणात् = उपाधि के ग्रहण न होने से। न तथात्वम् = प्रतिबिम्ब सम्भव नहीं है ॥ १९ ॥

भाषार्थः—सूर्य साकार है और जिस जल से भरे घट में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह भी साकार है। तथा बिम्ब और प्रतिबिम्ब एक दूसरे से पृथक् तथा दूर हैं; अतः सर्वव्यापी निराकार ब्रह्म का प्रतिबिम्ब सूर्यवत् नहीं घट सकता। इस शङ्का का समाधान अगले सूत्र में है ॥ १९ ॥

वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—यथा जलान्तर्भूतस्य सूर्यप्रतिबिम्बस्य जलगतवृद्धिह्रासादिभाक्त्वं न स्वाभाविकम् (न वास्तवम्) एवमविकृतस्य परमात्मनो देहाद्युपाध्यन्तर्भावाद् देहगतवृद्धिह्रासादिभाक्त्वं न वास्तवमित्येतावतांशेन तयोर्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरेवं सामञ्जस्यादविरोधः ॥ २० ॥

पदार्थः—अन्तर्भावात् = भीतर स्थित होने के कारण । वृद्धिह्रासभाक्त्वम् = बढ़ने और घटने का भागी या भाजन होना । एवम् = इस प्रकार । उभयसामञ्जस्यात् = दृष्टान्त और दार्ष्टान्त दोनों में समानता होने से (अविरोध है) ॥ २० ॥

भाषार्थः—दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्त का एक अंश लिया जाता है, सर्वांश नहीं । जैसे जलगत सूर्य का प्रतिबिम्ब जल की वृद्धि से बढ़ता है और जल के सूखने से घटता है किन्तु सूर्य घटता-बढ़ता नहीं, ज्यों-का-त्यों रहता है । इसी प्रकार ब्रह्म भी अन्तःकरणरूप जल में स्थित अपने जीवरूप प्रतिबिम्ब के घटने-बढ़ने अर्थात् दुःख-सुखादि से दुःखी या सुखी नहीं होता । दृष्टान्त और दार्ष्टान्त में इतनी अंशमात्र समानता से कोई विरोध नहीं है ॥ २० ॥

दर्शनाच्च ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—परब्रह्मणो देहाद्युपाधिष्वन्तरनुप्रवेशस्य जीवरूपप्रतिबिम्बस्य 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्' (छा० ६ । ३ । २) इत्यादिश्रुतिषु दर्शनात् ॥ २१ ॥

पदार्थः—च = तथा । दर्शनात् = श्रुतियों में भी देखा गया है ॥ २१ ॥

भाषार्थः—परमात्मा का जीवरूप प्रतिबिम्ब से सब शरीरों में प्रवेश करना 'परमात्मा ने सब शरीरों में जीवरूप से प्रवेश करके नामरूपात्मक सृष्टि की रचना की' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध है ॥ २१ ॥

प्रकृतैतावत्त्वाधिकरणम् ॥ २२–३० ॥

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मणो यद्रूपद्वयं प्रकृतम् (प्रधानम्) एतावत्त्वं इयत्तापरिच्छिन्नं तत् प्रकृतैतावत्त्वम्; तदेव प्रतिषेधति नेति नेत्यादिश्रुतिः । ततः प्रतिषेधानन्तरं भूयोऽन्यत्परमस्ति (बृ० । २ । ३ । ६) इति श्रुतिर्वदति ॥ २२ ॥

पदार्थः—प्रकृतैतावत्त्वम् = इयत्तापरिच्छिन्न (परिमाणवाले) ब्रह्म के प्रधानतया दो रूप हैं—एक मूर्त, दूसरा अमूर्त। प्रतिषेधति = इन दोनों रूपों की इयत्ता का श्रुति निषेध करती है। हि=क्योंकि। ततः=दोनों रूपों के निषेध के बाद। भूयः=फिर इन दोनों से परे कोई परतत्त्व है। ब्रवीति च = श्रुति ऐसा कहती है॥ २२॥

भावार्थः—बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म के दो रूप मूर्त और अमूर्त बताये गये हैं। यहाँ मूर्त से पृथिवी, जल और अग्नि ये तीन तत्त्व लिये हैं और अमूर्त से वायु और आकाश तत्त्व लिये हैं। कोई-कोई मूर्त से पञ्चीकृत और अमूर्त से अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों को लेते हैं। यही मत समीचीन प्रतीत होता है। इन दो रूपों का श्रुति निषेध करती है एवं दृश्य-निषेध के अनन्तर मन-वाणी का अगोचर जो परम तत्त्व शेष रहता है वही ग्राह्य है ऐसा श्रुति कहती है॥ २२॥

तदव्यक्तमाह हि॥ २३॥

सूत्रार्थः—अव्यक्तं ब्रह्मेत्यत्र किं प्रमाणम्। तत्राह—'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यम्' (मु० १।१।६) इति श्रुतिरव्यक्तं ब्रह्मेत्याह॥ २३॥

पदार्थः—तत्=वह ब्रह्म। अव्यक्तम् = इन्द्रियातीत है। हि = क्योंकि। आह = श्रुति ऐसा ही कहती है॥ २३॥

भावार्थः—मुण्डकश्रुति स्पष्ट कह रही है कि ब्रह्म इन्द्रियातीत है अतएव अग्राह्य है॥ २३॥

अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्॥ २४॥

सूत्रार्थः—तर्हि ब्रह्मास्तित्वे किं प्रमाणम्? तत्राह— अपि संराधने समाध्यवस्थायामनुभूयते ब्रह्मेति श्रुतिस्मृतिभ्यामवगम्यते॥ २४॥

पदार्थः—च = और। संराधने=समाधि में। अपि = भी ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् = श्रुति तथा स्मृति से यह सिद्ध है॥ २४॥

भावार्थः—समाधि-अवस्था में भी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। ऐसा श्रुति-स्मृतियों से जाना जाता है। २४॥

प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्॥ २५॥

सूत्रार्थः—यथा सौरप्रकाशोऽङ्गुल्याद्युपाधौ कर्मणि भिन्न इव वक्र इव

भाति वस्तुतस्त्वेकरूपस्तद्वत् प्रकाशः परमात्मापि कर्मणि ध्यानाद्युपाधौ भिन्न इव भाति वस्तुतस्त्ववैशेष्यमेकरूपत्वं तत्त्वमस्याद्यभेदश्रुत्यभ्यासात् ॥ २५ ॥

पदार्थः—प्रकाशादिवत् = सूर्यादि प्रकाशों की भाँति । च = ही । प्रकाशः = प्रकाशस्वरूप आत्मा । च = भी । कर्मणि = ध्यानादि उपाधि के कारण भिन्न-जैसा दीखता है । अवैशेष्यम् = वस्तुतः एकरूप है । अभ्यासात् = जैसा कि अभेद-श्रुतियों के अभ्यास से सिद्ध है ॥ २५ ॥

भाषार्थः—जैसे सूर्यादि का प्रकाश सर्वत्र समरूप से स्थित होने पर भी अंगुली आदि उपाधि से भिन्न (वक्र) जैसा भासता है, वैसे ही आत्मा भी ध्यानादि कर्मोपाधि से भिन्न—जैसा प्रतीत होता है । वस्तुतः एकरूप ही है । इसीलिये 'तत्त्वमसि' आदि अभेद-प्रतिपादक श्रुत्युक्त महावाक्य भी बार-बार एकत्व का ही प्रतिपादन करते हैं ॥ २५ ॥

अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—भेदस्यौपाधिकत्वाद्विद्यया भेदं निरस्य जीवोऽनन्तेनैकतां याति । 'स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु० ३ । २ । ९) इति लिङ्गात् ॥ २६ ॥

पदार्थः—अतः = ज्ञान से । अनन्तेन = अनन्त ब्रह्म के साथ एकत्व को प्राप्त हो जाता है । तथा हि = ऐसा ही । लिङ्गम् = श्रुत्युक्त लक्षण है ॥ २६ ॥

भाषार्थः—ज्ञान से शरीरादि औपाधिक भेद का नाश करके जीव अनन्त ब्रह्म के साथ एकता को प्राप्त हो जाता है । 'ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही है' इत्यादि श्रुतियाँ बार-बार अभेद का ही उपदेश करती हैं ॥ २६ ॥

उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—ध्यातृध्येयभावादिना भेदाभेदयोश्च श्रुतौ व्यपदेशाज्जीवेश्वरयोर्भेदाभेदौ भवतोऽहिकुण्डलवत् ॥ २७ ॥

पदार्थः—तु शब्द सिद्धान्त की विशेषता का सूचक है । उभयव्यपदेशात् = भेदाभेद दोनों का कथन होने से । अहिकुण्डलवत् = सर्प और उसके कुण्डल की भाँति अभेद ही है ॥ २७ ॥

भाषार्थः—श्रुति में ध्याता और ध्यान आदि की अपेक्षा से जीव तथा ईश्वर में भेद तथा अभेद का कथन है, वस्तुतः नहीं। जैसे सर्प कुण्डलाकार हो या दण्डाकार दोनों अवस्थाओं में भेद नहीं है, ऐसे ही ब्रह्म सोपाधिक हो अथवा निरुपाधिक दोनों अवस्थाओं में अभेद ही है ॥ २७ ॥

प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—यथा प्रकाशः सौरस्तदाश्रयश्च सविता तयोर्नात्यन्तभेदस्तेजस्त्वात् ॥ २८ ॥

पदार्थः—वा = अथवा । प्रकाशाश्रयवत् = जैसे प्रकाश औरप्र प्रकाशाश्रय सूर्य में कोई भेद नहीं है । तेजस्त्वात् = प्रकाशमय होने से ॥ २८ ॥

भाषार्थः—जैसे प्रकाश और प्रकाश के आश्रय सूर्य दोनों के प्रकाशमय होने से इनमें कोई अन्तर नहीं है, ऐसे ही जीव और ईश्वर में कोई भेद नहीं है ॥ २८ ॥

पूर्ववद्वा ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—प्रकाशादिवच्चावैशेष्यमिति पूर्वं पञ्चविंशतितमे सूत्रे प्रोक्तं तथात्रापि बोद्धव्यम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—वा = अथवा । पूर्ववत् = पूर्वोक्त २५ वें सूत्रवत् समझना चाहिये ॥ २९ ॥

भाषार्थः—२५ वें सूत्र में कहा है कि आकाशादि की भांति ब्रह्म एकरस है, वैसे ही यहाँ भी जीव-ब्रह्म की एकता समझनी चाहिये ॥ २९ ॥

प्रतिषेधाच्च ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा (बृ० ३ । ७ । २३) इति शास्त्रप्रतिषेधाच्च सर्वं ब्रह्म इति सिद्धान्तः ॥ ३० ॥

पदार्थः—प्रतिषेधात् = समस्त दृश्य का निषेध होने से । च = भी ॥ ३० ॥

भाषार्थः—'इससे अन्य कोई द्रष्टा नहीं है' इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्मचेतन के अतिरिक्त समस्त प्रपञ्च का निषेध किया है । अतः एकत्व ही सर्वशास्त्रसम्मत है ॥ ३० ॥

परााधिकरणम् ॥ ३१-३७ ॥

परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—अतो ब्रह्मणोऽन्यत् परं वस्त्वस्ति । कुतः ? सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—अतः परम् = इस ब्रह्म से परे भी कोई वस्तु है। सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः = सेतु, उन्मान, सम्बन्ध और भेद का कथन होने से ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—इन सेतु, उन्मान, सम्बन्ध तथा भेद का कथन होने से ज्ञात होता है कि ब्रह्म से भी परे कोई वस्तु है। यह पूर्वपक्षीय सूत्र है। सेतु आदि के लक्षण इस प्रकार हैं—

१. सेतु—'अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिः' (छा० ८।४।१) 'यह जो आत्मा है वही सबको धारण करनेवाला सेतु है' और 'सेतुं तीर्त्वा' छा० ८।४।२) 'सेतु को तैरकर' इस श्रुति-वचन में सेतु शब्द आत्मा का वाचक है। और आत्मरूप सेतु को पार करके अनात्मरूप प्रदेश में पहुँचने का निर्देश है। इससे सिद्ध है कि आत्मा से भी अन्य कोई वस्तु अनात्मरूप जगत् है।

२. उन्मान—महत्परिमाण अर्थात् सबसे बड़ा। सबसे बड़ा शब्द छोटी वस्तु को सिद्ध करता है। इससे भी अन्य वस्तु सिद्ध है।

३. सम्बन्ध—'शरीर में स्थित आत्मा है' (तै० २।३।१) इत्यादि श्रुतियों में आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध होने से आत्मा से अन्य वस्तु शरीर की भी सिद्धि होती है।

४. भेद—'यह जो आदित्य में पुरुष दिखायी देता है' (छा० १।६।६) 'यह जो आँखों में पुरुष दिखायी देता है' (छा० १।७।५) यहाँ आदित्य तथा नेत्र में बड़े तथा छोटे स्थान का भेद होने से भी दो वस्तुओं का होना सिद्ध है। इन ४ कारणों से अन्य वस्तु सिद्ध करके पूर्वपक्ष स्थापित किया है ॥ ३१ ॥

सामान्यात्तु ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । सेतुर्यथा जलस्य व्यवस्थापक एवं ब्रह्मणोऽपि सकलजगन्मर्यादाव्यवस्थापकत्वेन प्रसिद्धसेतुसामान्यात्सेतुव्यपदेशो न तु वस्तुतोऽतो नो पूर्वपक्षदोषावकाशः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—तु शब्द पूर्वपक्ष के खण्डन के लिये है। सामान्यात् = लौकिक सेतु की समानता होने से ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—जैसे सेतु (पुल) जल का व्यवस्थापक है, वैसे ही ब्रह्म जगत् की मर्यादा का व्यवस्थापक है। इस अंश को लेकर श्रुति ने ब्रह्म की पुल से समानता की है, न कि स्वरूप से। अतः पूर्वपक्ष का सेतुविषयक दोषारोपण व्यर्थ है ॥ ३२ ॥

बुद्ध्यर्थः पादवत् ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—उन्मानोपदेशोऽपि बुद्ध्यर्थमुपासनार्थं निर्विशेषस्य बुद्धित्वायोगात्पादवत्—यथा मनसो वाक्प्राणचक्षुःश्रोत्रञ्चेति चत्वारः पादा ध्यानाय कल्प्यन्ते, तद्वद्ब्रह्मणोऽप्युपासनार्थं पादव्यपदेशः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—बुद्ध्यर्थः=उपासनार्थं। पादवत्=चार पाद की भाँति है ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—जैसे ध्यानार्थ मन के वाक् प्राण, चक्षु और श्रोत्र ऐसे चार पादों की कल्पना की गयी है, ऐसे ही 'चतुष्पाद ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियों में भी उन्मान चतुष्पाद (परिच्छिन्नत्व) की उपासनार्थ कल्पना की गयी है। क्योंकि निर्विशेष (निर्गुण) ब्रह्म बुद्धिग्राह्य नहीं है। अतः उन्मानविषयक दोष भी निरर्थक है ॥ ३३ ॥

स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—सुषुप्तौ ब्रह्मणो जीवेन न घटस्य पटेनेव सम्बन्धः किन्तु स्थानविशेषात्प्रकाशादिवत् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—प्रकाशादिवत्=जैसे प्रकाश उपाधि-भेद से बहुरूपता को प्राप्त होता है। स्थानविशेषात्=ऐसे ही बुद्धि आदि स्थानों की अपेक्षा से ब्रह्म की बहुरूपता है ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—सुषुप्ति में ब्रह्म का जीव के साथ जो सम्बन्ध है वह घट का पट (वस्त्र) के समान नहीं, किन्तु बुद्धिरूप उपाधि के शान्त होने से ब्रह्म के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। जैसे सूर्य का प्रकाश एक है, किन्तु दर्पण तथा घटस्थ जल की उपाधि के सम्बन्ध से अनेक रूपोंवाला माना जाता है और घटादि उपाधि के नाश होने पर एक ही सूर्य शेष रहता है। वैसे एक ही आत्मा जाग्रत्-स्वप्न में बुद्ध्यादि की उपाधि से नाना कहलाता है, सुषुप्ति में

उपाधि के अभाव से ब्रह्मरूप से स्थित होता है। अतः सम्बन्धविषयक दोष भी अयुक्त है ॥ ३४ ॥

उपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—एवं चतुर्थहेतुर्भेदोऽपि न मुख्यः। श्रुत्या सह विरोधोपपत्तिवशान्नैमित्तिक इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—उपपत्तेः = स्वरूप की प्राप्ति होने से। च = भी ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—सुषुप्ति में जीव-ब्रह्म को वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि 'स्वमपीतो भवति' (छा० ६। ८। १)—'अपने में लीन होता है' यह श्रुति-वचन है। जैसे घटस्थ जलरूप उपाधि के नाश से जलस्थ सूर्य का प्रतिबिम्ब अपने यथार्थ बिम्बरूप सूर्य को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही, सुषुप्ति में बुद्धिरूप उपाधि के नाश होने पर जीव अपने यथार्थ ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जीव-ब्रह्म के एकत्व में भेद का अभाव होने से भेदविषयक चतुर्थ दोष भी निवृत्त हुआ ॥ ३५ ॥

तथान्यप्रतिषेधात् ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः—तथा 'नेह नानास्ति किञ्चन' (बृ० ४। ४। १९) इत्यादिश्रुतिभिर्ब्रह्मणोऽन्यवस्तुप्रतिषेधात् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—तथा = और। अन्यप्रतिषेधात् = ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य वस्तु का निषेध होने से ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—'इस जगत् में ब्रह्मातिरिक्त अन्य वस्तु का अभाव है' इस श्रुति से जैसे द्वैत का अभाव सिद्ध है, वैसे ही अन्य श्रुतियों से भी सिद्ध है ॥ ३६ ॥

अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः—अनेन सेत्वादिकथनप्रतिषेधेनात्मनः सर्वगतत्वं सिद्धम्। कुतः? 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' (छा० ३। १४। ३) इत्यादिव्यापकत्ववाचकायामशब्दादिभ्यः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—अनेन = इस सेतु आदि चारों हेतुओं के निषेध से। आयामशब्दादिभ्यः = तथा व्यापकत्ववाचक आयाम आदि शब्दों से। सर्वगतत्वम् =

ब्रह्म का सर्वव्यापकत्व सिद्ध है। यहाँ पदार्थ में ही भाषार्थ आ गया है॥ ३७॥

फलाधिकरणम् ॥ ३८-४१ ॥

फलमत उपपत्तेः ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—एतदिष्टानिष्टव्यामिश्रफललक्षणं कर्मफलमीश्वरादेव भवति न कर्मणः। कुतः ? 'स हि सर्वाध्यक्षः' इत्युपपत्तेः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—फलम् = शुभाशुभ कर्मों का फल। अतः = ईश्वर से ही प्राप्त होता है। उपपत्तेः = ऐसा ही सम्भव होने से ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—जीवों को शुभ, अशुभ तथा मिश्रित कर्मों का फल ईश्वर से ही मिलता है। जड कर्म में कर्मों का फल-भोग कराने की शक्ति नहीं है। 'वह ही सर्वाध्यक्ष है' इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं ॥ ३८ ॥

श्रुतत्वाच्च ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थः—'स वा एष महानज आत्माऽन्नादो वसुदानः' (बृ० ४। ४। २४) इति श्रुतत्वाच्च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—च = तथा। श्रुतत्वात् = श्रुति का कथन होने से ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—'वही महान् अजन्मा ईश्वर सब प्राणियों को अन्न और धन देता है' इत्यादि श्रुतियों में ईश्वर को ही सब कर्मों का फलदाता कहा है ॥ ३९ ॥

धर्मं जैमिनिरत एव ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—अत एव हेतोः श्रुत्युपपत्तिभ्यां धर्मं फलदातारं मन्यते जैमिनिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—अत एव = इसीलिये। धर्मम् = धर्म (कर्म) को। जैमिनिः = जैमिनि आचार्य फलदाता मानते हैं ॥ ४० ॥

भाषार्थः—इसीलिये अर्थात् श्रुति और स्मृतियों के वचनों के अनुसार धर्म (कर्म) को जैमिनि आचार्य कर्मफलदाता मानते हैं ॥ ४० ॥

पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः । पूर्वोक्तमेवेश्वरं कर्मफलदातारं बादरायणो मन्यते । कुतः ? हेतुव्यपदेशात्—'एष ह्येव साधु कर्म कारयति' (कौ० ३ । ८) इति श्रुत्या हेतुत्वेन कथनात् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—तु = तु शब्द पूर्वपक्ष का खण्डन करने के लिये है । बादरायणः= बादरायण आचार्य । पूर्वम्=पूर्व कहे हुए ईश्वर को कर्मफलदाता मानते हैं । हेतुव्यपदेशात् = क्योंकि श्रुति में उसको कर्म का हेतु कहा है ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—'यह ही शुभ कर्म कराता है' इस श्रुति के कथनानुसार हेतु होने से पूर्वोक्त ईश्वर को ही कर्म का फलदाता बादरायण आचार्य मानते हैं । यही श्रुति-स्मृतिसम्मत सिद्धान्त है ॥ ४१ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अथ वेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये

तृतीयः पादः

सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरणम् ॥ १–४ ॥

सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—सर्ववेदान्तैः प्रतिपादितज्ञानं चोदनाद्यविशेषान्न भिद्यते ॥ १ ॥

पदार्थः—सर्ववेदान्तप्रत्ययम् = सब वेदान्तशास्त्रों से प्रतिपादित ज्ञान एक ही है। चोदनादि-अविशेषात् = विधिवाक्यों में एकता होने से ॥ १ ॥

भाषार्थः—सब वेदान्तशास्त्रों से जानने योग्य उपासनाएँ एक हैं, उनमें कोई भेद नहीं, क्योंकि विधिवाक्यों में एकता है ॥ १ ॥

भेदान्नेति चेन्नैकस्यामपि ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—गुणभेदादेकैव विद्या नास्ति चेन्नैकस्यामपि विद्यायामयं गुणभेद उपपद्यते ॥ २ ॥

पदार्थः—भेदात् = गुणों के भेद से। न = सब विद्याओं में एकता नहीं। इति चेत् = ऐसा तर्क यदि करो तो। न = यह युक्त नहीं। एकस्याम् = एक विद्या में। अपि = भी गुण-भेद हो सकता है ॥ २ ॥

भाषार्थः—पूर्वपाद में ब्रह्म का स्वरूप बताया गया। इस पाद में ब्रह्मप्राप्ति की साधनभूत उपासना में सब वेदान्तों का ऐक्य सिद्ध किया है। वाजसनेयी शाखा में पञ्चाग्निविद्या की स्तुतिपूर्वक छठा अग्नि और माना है। छान्दोग्य में पञ्चाग्निविद्या ही मानी है। ऐसा गुणभेद होने से वेदान्तशास्त्रों में एकता नहीं—यदि ऐसी शङ्का हो तो युक्त नहीं, क्योंकि एक विद्या में भी गुणभेद सम्भव है ॥ २ ॥

स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारेऽधिकाराच्च सववच्च तन्नियमः ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—स्वाध्यायस्यैवैष शिरोव्रताख्यो धर्मो न विद्यायाः। कुतः? यतस्तथात्वेन स्वाध्यायधर्मत्वेन समाचारे वेदव्रतोपदेशपरे ग्रन्थे शिरोव्रतमपि

वेदव्रतत्वेनाथर्वणिकाः समामनन्ति । अधिकाराच्च 'नैतदचीर्णव्रतोऽधीते' (मु० ३ । २ । ११) अनुष्ठितशिरोव्रतो हि मुण्डकाध्ययनं कुर्यात् । तत्र दृष्टान्तः—यथा सवाः सप्तहोमाः सौर्यादयः । मुण्डकाध्ययनमेव शिरोव्रतनियमः । तस्मात्सर्वत्र विद्याया एकत्वम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—स्वाध्यायस्य = शिरोव्रत अध्ययन का ही अङ्ग है । हि=क्योंकि । समाचारे = वेदव्रतोपदेशक ग्रन्थ में । तथात्वेन = स्वाध्याय का अङ्ग होने से । च = और । अधिकारात् = शिरोव्रतवाले का ही स्वाध्याय (ब्रह्मविद्या) में अधिकार होने से । च = भी । सववत् = सव होम की भाँति । तन्नियमः = मुण्डक के अध्ययन में शिरोव्रत का नियम है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अथर्ववेद में विद्या के लिये शिरोव्रतादि धर्म की अपेक्षा दिखलायी है, और वेदों में नहीं । अतः विद्या का भेद है, यह तर्क ठीक नहीं है । क्योंकि शिरोव्रत स्वाध्याय का धर्म है, विद्या का नहीं । आथर्वणिकों ने वेदव्रतोपदेशक समाचार नामक ग्रन्थ में शिरोव्रत को भी स्वाध्याय का ही अङ्ग माना है । शिर में जलते हुए कोयले के पात्र (अंगीठी) को धारण करना शिरोव्रत है । उस 'शिरोव्रत के बिना मुण्डक (ब्रह्मविद्या) को न पढ़े ।' (मु० ३ । २ । ११) शिरोव्रतवाला ही ब्रह्मविद्या का अधिकारी है । जैसे सव होम का नियम उन्हींकी शाखावालों के लिये है, वैसे ही शिरोव्रत का नियम ब्रह्मविद्या के अध्ययनार्थ है । अतः सर्वत्र विद्या की एकता है, भेद नहीं ॥ ३ ॥

दर्शयति च ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' (कठ० २ । १५) इति श्रुतिः सर्वत्र विद्याया एकत्वं दर्शयति ॥ ४ ॥

पदार्थः—च = और । दर्शयति = श्रुति भी ऐसा ही कहती है ॥ ४ ॥

भाषार्थः—'सब वेद जिस ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं' यह श्रुति सर्वत्र विद्या की एकता दिखलाती है । अतः भेद की शंका निरर्थक है ॥ ४ ॥

उपसंहाराधिकरणम् ॥ ५ ॥

उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत् समाने च ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—समाने विज्ञाने गुणोपसंहारो युक्तः । कुतः ? अर्थाभेदात्—

विज्ञानरूपार्थस्य सर्वत्राभिन्नत्वाद्विधिशेषवत् । यथाग्निहोत्रस्य सर्वत्रैक्यात्तच्छेषाणामुपसंहारस्तद्वत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—समाने = विद्या में समानता होने पर। च = ही। उपसंहारः = अध्याहार अर्थात् गुणों के अभाव में दूसरे स्थान से ले लेना उचित है। अर्थाभेदात्=ज्ञान का सर्वत्र अभेद होने से। विधिशेषवत्=अग्निहोत्र के सर्वत्र एक होने पर शेष गुणों के अध्याहार की तरह ॥ ५ ॥

भाषार्थः—जैसे अग्निहोत्र की सर्वत्र एकता है। वहाँ जिस शाखा में जो विधान नहीं होता उसको दूसरी शाखाओं से ले लिया जाता है। वैसे ही ज्ञान में अध्याहार कर लेना चाहिये अर्थात् जहाँ जिस विषय का अभाव दीखे उसको अन्य ग्रन्थ से ले लेना चाहिये। इस प्रकार विद्या की एकता निर्विवाद है ॥ ५ ॥

अन्यथात्वाधिकरणम् ॥ ६–८ ॥

अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—'त्वं न उद्गाय' (बृ० १ । ३ । २) 'तमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे' (छा० १ । २ । ७) इति शब्दात्कर्तृत्वकर्मत्वव्यपदेशात् प्राणस्यान्यथात्वं भिन्नाकारत्वमिति चेन्न। कुतः ? अविशेषाद्–देवासुरसंग्रामोपक्रमासुरात्ययाभिप्रायादीनामुभयत्राविशेषात् ॥ ६ ॥

पदार्थः–शब्दात् = श्रुतियों से। अन्यथात्वम्=विद्या में भेद है। इति चेत्= ऐसी यदि शङ्का हो तो। न = यह उचित नहीं। अविशेषात्=वर्णन एक-सा है। अतः विद्या में भेद नहीं, किन्तु एकत्व है ॥ ६ ॥

भाषार्थः–'तू हमारे बीच गान कर', 'उसको उद्गीथरूप से उपासना की' यहाँ पहली श्रुति में प्राण को कर्त्ता और दूसरी में प्राण को कर्म माना है। इस प्रकार उपर्युक्त श्रुतियों से प्राणविद्या में भेद होने से विद्या में भेद सिद्ध है–ऐसी शङ्का उचित नहीं। क्योंकि दोनों श्रुतियों में देवासुरसंग्राम के उपक्रम तथा असुरों के पराजय आदि के वर्णन में एकता है। अतः विद्या में भेद नहीं, किन्तु एकत्व है ॥ ६ ॥

न वा प्रकरणभेदात्परोवरीयस्त्वादिवत् ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः–सिद्धान्तसूत्रमिदम्। नैवात्र प्राणविद्यैक्यं युक्तम्। कुतः ? 'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत' (छा० १ । १ । १) इति प्रकरणभेदात्परोवरीयस्त्वादिवत् ॥ ७ ॥

पदार्थः—न वा=परन्तु विद्या की एकता नहीं है। प्रकरणभेदात्=प्रकरण का भेद होने से। परोवरीयस्त्वादिवत् = 'बड़े से बड़ा है' इत्यादि उपासनाओं के समान ॥ ७॥

भाषार्थः—यह सिद्धान्त-सूत्र है। यहाँ प्राणविद्या की एकता नहीं है। क्योंकि 'ॐ इस अक्षर की उद्गीथरूप से उपासना करनी चाहिये' इस श्रुति में उद्गीथ के अवयव ओंकार में प्राणदृष्टिमात्र का कथन है। और 'तू हमारे बीच गान कर' इस श्रुति में उद्गीथ शब्द केवल समस्त सामभक्ति का बोधक है। यहाँ पहली छान्दोग्य की श्रुति में ओंकार की उपासना प्रधान है और दूसरी वाजसनेयी श्रुति सामभक्तिपरक है।

देवासुरसंग्राम में देवताओं ने उद्गीथ के अङ्ग ॐ की उपासना की और विजयी हुए। असुरों ने सामभक्ति और साम की ध्वनिरूप गीत की उपासना की और पराजित हुए। इस प्रकार दोनों उपासनाओं में उत्तम-मध्यम का भेद है। ऐसे ही प्राणविद्या में भी भेद है॥ ७॥

संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि ॥ ८॥

सूत्रार्थः—शाखाद्वयेऽप्युद्गीथविद्येति संज्ञैकत्वाद् विद्यैक्यमिति चेत्तदुत्तरमुक्तं सप्तमे सूत्रे। संज्ञैकत्वं तु श्रुत्यक्षरबाह्यमतो न प्राणविद्यैक्यम् ॥ ८॥

पदार्थः—संज्ञातः = उद्गीथ संज्ञा की एकता से प्राणविद्या की भी एकता है। चेत् = यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं। तदुक्तम् = इसका उत्तर दे दिया है। तदपि = संज्ञा के एक होने पर भी। अस्ति तु = भेद सम्भव है॥ ८॥

भाषार्थः—दोनों शाखाओं में 'उद्गीथ' संज्ञा की एकता होने से प्राणविद्या की एकता माननी चाहिये। इस शङ्का का उत्तर सूत्र ३। ३। १ में दे दिया है। संज्ञा की जो एकता कही है वह भी श्रुति के बाहर है, श्रुति में तो केवल उद्गीथ शब्दमात्र है। संज्ञा की एकता होने पर भी भेद सम्भव है, अन्यत्र (कठश्रुति में) देखिये ॥ ८॥

व्याप्त्यधिकरणम् ॥ ९॥

व्याप्तेश्च समञ्जसम् ॥ ९॥

सूत्रार्थः—ॐकारस्य ऋग्यजुःसामसु व्याप्तेर्व्याप्तत्वात् क ओंकार उपास्य इत्याकाङ्क्षायामुद्गीथेति ॐकारस्य विशेषणमित्येव समञ्जसम्। सूत्रे चशब्दस्तुपर्यायः ॥ ९॥

पदार्थः—च = परन्तु। व्याप्तेः = ॐकार के तीनों वेदों में व्यापक होने से। समञ्जसम् = उद्गीथ ॐकार का विशेषण है—यही मानना निर्दोष है ॥ ९ ॥

भाषार्थः—ॐकार के तीनों वेदों में व्याप्त होने से 'ॐ तदक्षरमुद्गीथमुपासीत' (छा० १। १। १) इस श्रुति में आये हुए अक्षर और उद्गीथ इन दोनों ॐकार के नामों में कौन सा उपासनीय है? इसका उत्तर है—ॐकार का उद्गीथ विशेषण है, उसीकी उपासना कही गयी है। ऐसा मानना ही निर्दोष है ॥ ९ ॥

सर्वाभेदाधिकरणम् ॥ १० ॥

सर्वाभेदादन्यत्रेमे ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—वसिष्ठत्वादिगुणानामश्रवणस्थले इमे गुणा उपसंहर्तव्याः। कुतः? सर्वासु शाखासु प्राणोपासनस्याभिन्नत्वात् ॥ १० ॥

पदार्थः—अन्यत्र = अन्य शाखाओं में भी। इमे = इन वसिष्ठत्वादि गुणों का अध्याहार करना चाहिये। सर्वाभेदात्=सब शाखाओं में प्राणोपासना में भेद न होने से ॥ १० ॥

भाषार्थः—सब शाखाओं में भेद न होने से जिन शाखाओं में प्राण के वसिष्ठत्व (द्रव्य या रस से सम्पन्न होना) आदि गुण नहीं कहे गये वहाँ प्राणविद्या में उनका अध्याहार कर लेना चाहिये ॥ १० ॥

आनन्दाद्यधिकरणम् ॥ ११-१३ ॥

आनन्दादयः प्रधानस्य ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—प्रधानस्य ब्रह्मण आनन्दादयो धर्माः सर्वत्रोपसंहर्तव्याः पूर्वसूत्रोक्तसर्वाभेदादिति ॥ ११ ॥

पदार्थः—प्रधानस्य = ब्रह्म के। आनन्दादयः = सत्, चित्, आनन्द आदि ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जहाँ केवल ब्रह्म, ईश्वर आदि नाम हों वहाँ ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द आदि गुणों का अध्याहार करना चाहिये। क्योंकि शाखाओं में ब्रह्म के एक होने से विद्या भी एक ही है ॥ ११ ॥

प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ।। १२ ।।

सूत्रार्थः—प्रियशिरस्त्वादिधर्माणां न सर्वत्र प्राप्तिः । यतः प्रियमोदप्रमोदानन्दाः परस्परापेक्षयोपचितापचितस्वरूपाः । उपचयापचयवन्तौ हि धर्मौ धर्मिणि भेदे सत्येव स्वाभाविकौ सम्भवतः ।। १२ ।।

पदार्थः—प्रियशिरस्त्वादि = प्रियशिरस्त्वादि धर्मों की । सर्वत्र=सब जगह अप्राप्तिः = प्राप्ति नहीं होती । हि=क्योंकि । उपचयापचयौ = धर्मों का बढ़ना-घटना । भेदे = द्वैतभाव में ही सम्भव हैं ।। १२ ।।

भाषार्थः—पुत्र आदि के दर्शन से उत्पन्न सुख का नाम प्रिय है । पुत्रादि की प्रियवार्ता से मोदादि सुख होते हैं । पुत्रादि इष्टवस्तु की वृद्धि से प्रिय-मोदादि सुख की वृद्धि और इनके ह्रास से प्रिय-मोदादि सुख का ह्रास निश्चित है । ब्रह्म वृद्धि-ह्रास से परे तथा नित्य है । अतः प्रिय-मोदादि धर्म ब्रह्म में नहीं होते, क्योंकि घटना-बढ़ना भेद अर्थात् द्वैत में ही होते हैं ।। १२ ।।

इतरे त्वर्थसामान्यात् ।। १३ ।।

सूत्रार्थः—उपास्यधर्मापेक्षयेतरे त्वानन्दादयो धर्मा ज्ञानैकफलकाः सर्वत्रोपसंह्रियन्ते । अर्थस्य प्रतिपाद्यस्य ब्रह्मणः सामान्यात्समत्वादित्यर्थः ।। १३ ।।

पदार्थः—तु = किन्तु । इतरे=दूसरे आनन्दादि धर्म । अर्थसामान्यात्= प्रतिपाद्य विषय के समान होने से ।। १३ ।।

भाषार्थः—प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म के सर्वत्र समान होने से उसके प्रिय-मोदादि उपास्य धर्मों से पृथक् जो ज्ञानरूप फल को देनेवाले सत्, चित्, आनन्दादि (सत्य, ज्ञान, आनन्द, आत्मा और ब्रह्म इन पाँच) धर्मों का तो सर्वत्र ग्रहण करना चाहिये ।। १३ ।।

आध्यानाधिकरणम् ।। १४-१५ ।।

आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ।। १४ ।।

सूत्रार्थः—'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः' (कठ० ३ । १०) इति श्रुत्याऽऽध्यानाय ध्यानसाध्यसाक्षात्काराय पुरुष एवार्थादिभ्यः परत्वेन प्रतिपाद्यते, न तु इन्द्रियादिपरत्वेनार्थादयः प्रतिपाद्याः । कुतः ? प्रयोजनाभावात् । नहीन्द्रियादिपरत्वेन प्रयोजनमस्ति ।। १४ ।।

पदार्थः—आध्यानाय=इन्द्रियादि से परे आत्मा का प्रतिपादन पुरुष के ध्यानपूर्वक सम्यक् ज्ञान के लिये है। प्रयोजनाभावात्=आत्मा से परे विषयों के प्रतिपादन से कोई प्रयोजन न होने से ॥ १४ ॥

भाषार्थः—'इन्द्रियों से परे विषय हैं' इस कठश्रुति में इन्द्रियों से परे अर्थ, अर्थ से परे मन, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से परे प्रकृति और प्रकृति से परे पुरुष की गणना की है एवं इसी पुरुष को पराकाष्ठा तथा परागति कहा है। यहाँ शंका है कि आत्मसाक्षात्कारार्थं विषयों से परे पुरुष (ब्रह्म) को मानें या पुरुष से परे विषयों को? इसका उत्तर है कि अन्तिम लक्ष्य ब्रह्म को ही मानना चाहिये। वही पराकाष्ठा तथा परागति (मोक्ष) है। सब विषयों से परे पुरुष को लक्ष्य मानने से मोक्ष होगा। विषयों को लक्ष्य मानने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा ॥ १४ ॥

आत्मशब्दाच्च ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—'एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा' (कठ० ३ । १२) इति प्रकृतपुरुषे आत्मशब्दश्रवणादात्मपरमेवेदं वाक्यम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—आत्मशब्दात् = पुरुष के लिये आत्मा शब्द श्रुति में आने से। च=भी ॥ १५ ॥

भाषार्थः—'सब भूतों में गुप्त यह आत्मा' इस कठश्रुति में पुरुष को आत्मा कहा है, अतः पुरुष का अर्थ आत्मा ही है, अविद्योपाधिक या मायोपाधिक पुरुष नहीं ॥ १५ ॥

आत्मगृहीत्यधिकरणम् ॥ १६-१७ ॥

आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—'आत्मा वा इदमेक एव' (ऐत० १ । १) इति आत्मशब्देन परमात्मन एव ग्रहणं नान्यस्य हिरण्यगर्भादेर्ग्रहणम्। यथेतरेषु 'आत्मन आकाशः सम्भूतः (तै० २ । १ । १) इति सृष्टिवाक्येषु आत्मशब्देन परमात्मनो ग्रहणं तद्वदत्रापि। कुतः? उत्तरात्—'स ऐक्षत लोकान्नु सृजा' (ऐत० १ । १) इति विशेषणात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—आत्मगृहीतिः = आत्मा शब्द से ब्रह्म का ग्रहण है। इतरवत्=अन्य श्रुतियों में कहे गये ब्रह्म की तरह। उत्तरात्=उसके अग्रिम वाक्य से सिद्ध है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—'सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था' यहाँ आत्मा शब्द से परमात्मा का ग्रहण है। जैसे 'आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ' इत्यादि दूसरे सृष्टि-वाक्यों में आत्मा शब्द से ब्रह्म का ग्रहण है वैसे ही यहाँ भी है। क्योंकि 'स ऐक्षत लोकान्नु सृजा' उपर्युक्त इसी श्रुति के इस उत्तरवर्ती विशेषण से ईक्षणपूर्वक सृष्टि-कर्तृत्व सिद्ध है। इससे प्रमाणित है कि आत्मा शब्द ब्रह्म-परक है ॥ १६ ॥

अन्वयादिति चेत्स्यादवधारणात् ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—सृष्टिवाक्येषु हिरण्यगर्भ एव ग्राह्योऽन्वयदर्शनात्, न ब्रह्मग्रहणं युक्तमिति चेन्न 'आत्मा वा इदमेक एव' (ऐ० १ । १) इति सृष्टेः प्रागेकत्वा-वधारणादस्य परमात्मन्येवाञ्जसत्वात् ॥ १७ ॥

पदार्थः—अन्वयात् = अन्वय से परमात्मा नहीं कहा है। इति चेत् = यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं, क्योंकि। अवधारणात्=निश्चित कथन होने के कारण। स्यात् = परमात्मा का ही ग्रहण होता है ॥ १७ ॥

भाषार्थः—सृष्टि-वाक्य में हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) का सम्बन्ध होने से आत्मा शब्द ब्रह्मवाचक नहीं। ऐसी यदि शङ्का हो तो इसका समाधान यह है कि 'सृष्टि के पूर्व एक आत्मा ही था' 'उसने संकल्प किया कि मैं सृष्टि रचूँ' इत्यादि श्रुतियों में निश्चित की गयी एकत्व तथा सृष्टि रचने का संकल्प ये दोनों बातें ब्रह्म में ही घट सकती हैं। अतः आत्मा शब्द ब्रह्मवाचक है ॥ १७॥

कार्याख्यानाधिकरणम् ॥ १८ ॥

कार्याख्यानादपूर्वम् ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—विधिर्हि अपूर्वमेवार्थं बोधयति । अत्र वासःसंकल्पनमेवापूर्वं प्राणविद्याङ्गत्वेन विधेयं न त्वाचमनम् । कुतः ? कार्याख्यानात्—वस्त्ररूपकार्यस्य कथनात् ॥ १८ ॥

पदार्थः—कार्याख्यानात् = आचमनरूप कार्य का कथन होने से। अपूर्वम्= प्राण का आच्छादन ही विधेय है ॥ १८ ॥

भाषार्थः—शुद्धि के लिये आचमन करना नित्य प्राप्त है, यह स्मार्त विधि है और करनी ही चाहिये। 'विद्वान् श्रोत्रिय भोजन के आदि-अन्त में आचमन करते हैं' यह श्रुति भी कहती है, किन्तु यह अपूर्वता नहीं है। आचमन

करते हुए यह ध्यान करे कि मैं जलरूप वस्त्र से प्राण को ढक रहा हूँ। यही अपूर्व विधि का तात्पर्य है ॥ १८ ॥

समानाधिकरणम् ॥ १९ ॥

समान एवं चाभेदात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—यथा भिन्नासु शाखासु विद्याया ऐक्यं गुणोपसंहारश्च भवतः, एवं समाने समानायां शाखायां चैकस्यामपि युक्तमुपास्यब्रह्मणोऽभेदात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—एवम् = इसी प्रकार। समाने = एक समान शाखा में। च = भी। अभेदात् = उपास्य ब्रह्म में भेद न होने से ॥ १६ ॥

भाषार्थः—जैसे विभिन्न शाखाओं में विद्या की एकता और गुणों का अध्याहार होता है, वैसे यहाँ एक शाखा में भी विद्या की एकता और गुणों का उपसंहार युक्त है। क्योंकि दोनों स्थलों में मनोमयत्व आदि गुणोंवाला उपास्य ब्रह्म एक है ॥ १६ ॥

सम्बन्धाधिकरणम् ॥ २०–२२ ॥

सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—शाण्डिल्यविद्यायामेव विद्यासम्बन्धादन्योन्यगुणोपसंहारः पूर्वमुक्तः एवमन्यत्रापि भवितुमर्हति एकविद्याभिसम्बन्धात् ॥ २० ॥

पदार्थः—सम्बन्धात् = एक विद्या के सम्बन्ध से। अन्यत्र = अन्य स्थानों पर। अपि = भी। एवम् = वैसा ही संग्रह होना चाहिये ॥ २० ॥

भाषार्थः—जैसे शाण्डिल्यविद्या में एक विद्या और गुणों का अध्याहार माना है, वैसे ही यहाँ भी एक विद्या और अधिदैवत्वादि गुणों का उपसंहार मानना चाहिये ॥ २० ॥

न वा विशेषात् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—अक्षादित्यरूपस्थानविशेषादुभयोपनिषद्भिन्नत्वम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—न वा = दोनों का उपसंहार नहीं करना चाहिये। विशेषात् = दोनों उपनिषदों (गुप्त नामों) में भेद होने से ॥ २१ ॥

भाषार्थः—यहाँ २०वाँ सूत्र पूर्वपक्षीय है और २१वाँ सिद्धान्त-सूत्र है। नाम और स्थान का भेद होने से दोनों गुप्त नाम भिन्न हैं। 'य एष एतस्मिन्

मण्डले पुरुषः, तस्योपनिषदहः' (बृ० ५ । ५ । ३) 'योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः, तस्योपनिषदहम्' (बृ० ५ । ५ । ४) यहाँ आदित्यमण्डलस्थ पुरुष को 'अहः' नाम से कहा है और अक्षिस्थ पुरुष को 'अहम्' नाम से कहा है। पूर्वपक्षी कहता है कि दोनों की एकता माननी चाहिये, पर सिद्धान्ती कहता है कि एकता नहीं हो सकती, क्योंकि एक पुरुष का आदित्य स्थान और 'अहः' नाम है और दूसरे पुरुष का अक्षि स्थान और 'अहम्' नाम है। इस प्रकार दोनों गुप्त नामों में भेद होने से पूर्वपक्ष उपयुक्त नहीं है ॥ २१ ॥

दर्शयति च ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—स्थानं विहायाक्षिस्थस्यादित्यमण्डलस्थस्य च पुरुषस्यैक्यं श्रुतिर्दर्शयति। 'तस्यैतस्य तदेव रूपमिति (छा० १ । ७ । ५) ॥ २२ ॥

पदार्थः—च = तथा । दर्शयति = दोनों की एकता को श्रुति भी दिखाती है ॥ २२ ॥

भाषार्थः—अक्षि और आदित्य इन स्थानों के भेद से गुणों का उपसंहार एक दूसरे में नहीं हो सकता। इसीसे आदित्यमण्डलस्थ पुरुष के रूप, नाम आदि धर्मों का अक्षिस्थ पुरुष में अध्याहार करक श्रुति दोनों की एकता सिद्ध करती है। 'जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष के नाम-रूपादि धर्म हैं, वही अक्षिस्थ पुरुष के हैं' यह श्रुतिवचन है ॥ २२ ॥

सम्भृत्यधिकरणम् ॥ २३ ॥

सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—सम्भृतिर्द्युप्राप्तिश्च शाण्डिल्य (ब्रह्म) विद्यासु नोपसंह्रियेते। कुतः ? अतः—स्थानभेदात् ॥ २३ ॥

पदार्थः—च = तथा । सम्भृतिद्युव्याप्ती = धारण करना और स्वर्ग को व्याप्त करना। अपि = भी। अतः = स्थानभेद से है ॥ २३ ॥

भाषार्थः—ब्रह्माण्ड को उत्पन्न तथा धारण करने की ब्रह्मशक्ति (सम्भृति) का और स्वर्गादि की व्याप्तिरूप ब्रह्मविभूतियों का शाण्डिल्यादि ब्रह्मविद्याओं में उपसंहार करना चाहिये या नहीं ? इसका उत्तर है कि ब्रह्माण्ड को धारण करने का तथा स्वर्ग की व्याप्ति का भी उपसंहार नहीं करना चाहिये, अर्थात् ब्रह्मविद्या में ब्रह्मविभूति का उपसंहार उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वह वहाँ स्वतःसिद्ध है ॥ २३ ॥

पुरुषविद्याधिकरणम् ॥ २४ ॥

पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—पुरुषविद्यायां यथा गुणाम्नानं तथेतरेषां तैत्तिरीयकाणां पुरुष-विद्यायां गुणाम्नानाभावात् ॥ २४ ॥

पदार्थः—च = और । पुरुषविद्यायाम् इव=पुरुषविद्या की तरह । इतरेषाम्=दूसरी विद्याओं में । अनाम्नानात् = कथन न होने से ॥ २४ ॥

भाषार्थः—छान्दोग्य में वर्णित पुरुषविद्या में जो धर्म कहे गये हैं उनका तैत्तिरीय में कहे गये पुरुषयज्ञ में उपसंहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि दोनों में समानता नहीं है ॥ २४ ॥

वेधाद्यधिकरणम् ॥ २५ ॥

वेधाद्यर्थभेदात् ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—नैषां प्रविध्यादिमन्त्राणामुपनिषद्विद्यासूपसंहारः । कुतः ? एषां मन्त्राणां हृदयवेधादयो येऽर्थास्तेषां भिन्नत्वात् ॥ २५ ॥

पदार्थः—वेधाद्यर्थभेदात् = वेध आदि के मन्त्रों का अर्थ भिन्न होने से उनका उपनिषद्-विद्याओं में संग्रह नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥

भाषार्थः—अथर्ववेद में शत्रुनाशार्थं प्रविध्यादिमन्त्र हैं । उनका उपनिषद्-विद्याओं में उपसंहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि उन मन्त्रों का हृदय आदि अङ्गों का नाश करना रूप जो अर्थ है उसका उपनिषद्-विद्या के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ २५ ॥

हान्यधिकरणम् ॥ २६ ॥

हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात्कुशाछन्दस्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—केवलहानौ श्रुतायां तत्रोपायनं संहर्तव्यम् । कुतः ? उपायन-शब्दस्य हानशब्दशेषत्वाद् (अङ्गत्वात्) कुशाछन्दस्तुत्युपगानवत् । तदुक्तं पूर्वमीमांसायाम् आचार्येण जैमिनिना ॥ २६ ॥

पदार्थः—हानौ तु=त्याग में तो उपायन शब्द ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उपायनशब्दशेषत्वात् = हान शब्द का अङ्ग उपायन है । कुशाछन्दस्तुत्युप-गानवत् = कुशा, छन्द, स्तुति और उपगान की भाँति । तदुक्तम् = इन चारों

का ग्रहण कैसे है यह आचार्य जैमिनि ने पूर्वमीमांसाशास्त्र में वर्णन किया है ॥ २६ ॥

भाषार्थः—जहाँ केवल हान (त्याग) शब्द सुना गया हो वहाँ उपायन (ग्रहण) शब्द का अध्याहार करना चाहिये, क्योंकि ग्रहण हान शब्द का अङ्ग है। जैसे कि आचार्य जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में कुशा, छन्द, स्तुति और गान का ग्रहण किया है। कुशा उदम्बर की ग्रहण करनी चाहिये। यहाँ कुशा का अर्थ काष्ठ की शलाका है जो उद्गाता स्तोत्र की गणना के लिये अपने पास रखता है। छन्द दो हैं—आसुर और देव। इनमें देव छन्द को ग्रहण करना चाहिये। षोडशी कर्म के अङ्गभूत स्तोत्र को स्तुति कहते हैं, जो सूर्योदय के समय करनी चाहिये। सब ऋत्विजों की उपस्थिति में अध्वर्यु से अन्य ऋत्विज गान करे। इस सामगान का यज्ञ में विशेष ग्रहण है। ऐसे ही हान के स्थान में उपायन का अध्याहार करना चाहिये ॥ २६ ॥

साम्परायाधिकरणम् ॥ २७–२८ ॥

साम्पराये तर्तव्याभावात्तथा ह्यन्ये ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—साम्पराये देहादपसर्पणकाल एव विदुषः कर्महानिर्युक्ता। कुतः? तर्तव्याभावात्। तथा ह्यन्ये ताण्डिनः शाट्यायनिनश्च शाखिनोऽपि देहत्यागात्प्रागेव शुभाशुभहानमामनन्ति ॥ २७ ॥

पदार्थः—साम्पराये = मृत्यु-समय में। तर्तव्याभावात् = पार करने योग्य कर्मफल शेष न होने से। तथा हि = वैसा ही। अन्ये=ताण्डी तथा शाट्यायनी शाखावाले भी कहते हैं ॥ २७ ॥

भाषार्थः—कौषीतकि-शाखावाले कहते हैं कि ज्ञानी शरीर-त्याग के समय देवयानमार्ग से मध्यवर्ती विरजा नदी को मन से पारकर पाप-पुण्यरूप सब कर्मों को विरजा में त्यागकर ब्रह्मलोक को जाता है। ज्ञानी का उस समय कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उसका पार करने योग्य कोई कर्मफल शेष नहीं रहता एवं कर्तव्य के अभाव से उसे कुछ करना भी शेष नहीं रह जाता—'तस्य कार्यं न विद्यते' (गीता ३। १७), वैसा ही अन्य शाखावाले कहते हैं कि 'ज्ञानी के पुण्य उसकी सेवा करनेवाले और पाप उसकी निन्दा करनेवाले लेते हैं, ज्ञानी सब कर्मों से मुक्त हो जाता है' ॥ २७ ॥

छन्दत उभयाविरोधात् ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—छन्दतो जीवत एव तस्य विदुषो विद्यानुष्ठानं तद्धेतुकः कर्मक्षयश्च युक्तः। एवमुभयशाखिनः श्रुत्योरविरोधः ॥ २८ ॥

पदार्थः—छन्दतः = स्वेच्छा से। उभयाविरोधात् = ताण्डी और शाट्यायनी दोनों शाखाओं में। अविरोधः = कोई विरोध नहीं है ॥ २८ ॥

भाषार्थः—ज्ञानी के स्वेच्छापूर्वक विद्यानुष्ठान और शुभाशुभ कर्म जीवन-काल में ही नाश हो जाते हैं। इसमें ताण्डी और शाट्यायनी दोनों शाखाओं में विरोध नहीं है ॥ २८ ॥

गतेरर्थवत्त्वाधिकरणम् ॥ २९–३० ॥

गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—गतेर्देवयानमार्गस्यार्थवत्त्वमुभयथाविभागेन भवितुमर्हति। सगुण-विद्यायां देवयानमार्गोऽस्ति निर्गुणविद्यायां नेति विभागोऽन्यथा सर्वत्र देवयान-मार्गोपसंहाराङ्गीकारे 'विद्वान् पुण्यपापे विधूय' (मु० ३। १। ३) इति श्रुति-विरोधः स्यात् ॥ २९ ॥

पदार्थः—गतेः = देवयान मार्ग का। अर्थवत्त्वम् = सफलता। उभयथा = दोनों प्रकार से हो सकती है। अन्यथा हि = अन्य प्रकार से मानने पर तो। विरोधः = श्रुति-विरोध होगा ॥ २९ ॥

भाषार्थः—सगुण ब्रह्म का उपासक देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक में जाता है और वहाँ दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान को प्राप्तकर प्रलय के अन्त में ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाता है और निर्गुण ब्रह्म का ज्ञानी उपासक तत्काल ब्रह्म को प्राप्त होता है। इसीमें देवयान मार्ग की प्रयोजन-सिद्धि है। यदि सगुण तथा निर्गुण के उपासकों को देवयान मार्ग से जाना होता है ऐसा मानेंगे तो तब 'ज्ञानी पुण्य-पाप को त्यागकर, असंग होकर परम समत्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है' इस श्रुति से विरोध होगा ॥ २९ ॥

उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—क्वचिद्विद्यायां गतिरस्ति क्वचिन्नास्तीति गतेरुभयथाभाव उपपन्नः। सा गतिर्लक्षणं कारणं यस्य सगुणविद्याफलार्थस्य श्रुतिषूपलब्धेर्लोक-वत्। यथा लोके ग्रामगन्तुरेव मार्गापेक्षा नान्यस्य ॥ ३० ॥

पदार्थः—उपपन्नः=सगुण-निर्गुण दोनों विभागों से देवयान मार्ग सफल है। तल्लक्षणार्थोपलब्धेः = देवयान मार्ग से जो फल प्राप्त होता है उसकी कारणभूत बातें पर्यङ्कविद्या में उपलब्ध होती हैं। लोकवत् = जैसे संसार में ॥ ३० ॥

भाषार्थः—सगुणविद्या का उपासक देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक में जाता है, निर्गुण ब्रह्म का ज्ञानी उपासक नहीं। यह युक्तियुक्त है। देवयान द्वारा जो फल प्राप्त होता है उसकी महिमा पर्यङ्कविद्या में पायी जाती है कि वह सगुणोपासक ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा के साथ पर्यङ्क में बैठकर वार्तालाप करता है और वहाँ स्वर्गीय दिव्य भोगों को भोगता है। लोक में भी देखा जाता है कि जिसको किसी ग्राम में जाना हो उसीको मार्ग की अपेक्षा होती है, अन्य को नहीं। ज्ञानी को कहीं जाना नहीं होता, अतः ज्ञानी के प्राण उत्क्रमण नहीं करते, वे ब्रह्म में लीन हो जाते हैं ॥ ३० ॥

अनियमाधिकरणम् ॥ ३१ ॥

अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—सर्वासां सगुणोपासनानां देवयानमार्गस्य नियमो नास्ति। नियमाभावे प्रकरणविरोधः स्यादिति चेदुच्यते—प्रकरणाविरोध एव श्रुतिस्मृतिभ्याम् 'तद् य इत्थं विदुः' इति श्रुतिः (छा० ५ । १० । १) 'शुक्लकृष्णे गती ह्येते' (गीता ८ । १६) इति स्मृतिः । ३१ ॥

पदार्थः—सर्वासाम् = सब सगुण-उपासनाओं में। अनियमः = देवयान मार्ग का नियम नहीं है। शब्दानुमानाभ्याम् = श्रुति तथा स्मृति से। अविरोधः = अविरोध सिद्ध है ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—सब सगुण-उपासनाओं में देवयान मार्ग का नियम नहीं है। नियम के अभाव से प्रकरण से विरोध है। ऐसी शङ्का मत करो। श्रुति-स्मृतियों से अविरोध ही सिद्ध है। इस विषय में 'जो इस प्रकार जानते हैं' यह श्रुति है तथा 'शुक्ल और कृष्ण ये दो सनातन मार्ग हैं' यह गीता-स्मृति है ॥ ३१ ॥

यावदधिकाराधिकरणम् ॥ ३२ ॥

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—ईश्वरेण तत्तदधिकारे नियुक्ता अपान्तरतमोवसिष्ठनारदादयो यावदधिकारमवतिष्ठन्ते तदवसाने परं पदं प्रविशन्ति ॥ ३२ ॥

पदार्थः—आधिकारिकाणाम् = आधिकारिक पुरुषों की। यावदधिकारम्= जितने काल के लिये ईश्वर ने उनको अधिकार दिया है। अवस्थितिः=तबतक स्थिति रहती है ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—ईश्वर ने संसार की मर्यादा-स्थापना के लिये व्यास-वसिष्ठादि आधिकारिक पुरुषों को जितने समय के लिये जिस जिस अधिकार में नियुक्त किया है, वे उतने समय तक अपने-अपने अधिकार में स्थित रहते हैं, पश्चात् ब्रह्म में समा जाते हैं। इनके लिये अर्चिरादिमार्ग का नियम नहीं है ॥ ३२ ॥

अक्षरध्यधिकरणम् ॥ ३३ ॥

अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—अतो जीवब्रह्मप्रतिपादकश्रुतिविचारारम्भः। अक्षरे ब्रह्मणि द्वैत-निषेधधियोऽक्षरधियः। तासां निषेधश्रुतीनां सर्वत्र निषेधप्रकरणेषु अवरोध उपसंहारो न्याय्यः। कुतः? सामान्यतद्भावाभ्यां द्वैतप्रपञ्चनिषेधेन ब्रह्म-पादनस्य सर्वत्र सामान्यत्वात्तस्य ब्रह्मणः प्रतिपाद्यस्य सर्वत्र भावः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—अक्षरधियाम् = ब्रह्म के विषय में द्वैत-निषेध-बुद्धियों का। तु=तो। अवरोधः=उपसंहार करना चाहिये। सामान्यतद्भावाभ्याम् = ज्ञान समान होने से और ब्रह्म के एकत्वभाव का वर्णन होने से। औपसदवत् = यज्ञसम्बन्धी मन्त्रों की भाँति। तदुक्तम् = आचार्य जैमिनि ने ऐसा ही कहा है ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म में द्वैत-निषेध-बुद्धियों का सब निषेधप्रतिपादक श्रुतियों में उपसंहार करना चाहिये, क्योंकि द्वैतप्रपञ्चनिषेध द्वारा अद्वैत ब्रह्म का समर्थन सर्वत्र समान है और उस प्रतिपाद्य ब्रह्म का एकत्वभाव सर्वत्र प्रसिद्ध है। इन दो हेतुओं से उपसंहार करना उचित है। जैसे उपसद यज्ञ में वेदोक्त पुरोडाश-प्रदानमन्त्रों का अध्वर्यु के साथ सम्बन्ध होता है, वैसे ही यहाँ भी सर्वनिषेध-बुद्धियों का अक्षर ब्रह्म के साथ सम्बन्ध है। यही बात आचार्य जैमिनि ने कही है ॥ ३३ ॥-

इयदधिकरणम् ॥ ३४ ॥

इयदामननात् ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—'द्वा सुपर्णा' (मु० ३ । १ । १) 'ऋतं पिबन्तौ' (क० ३ । १) इति च मन्त्रद्वयेऽपि विद्याया ऐक्यमियत्तावच्छिन्नस्य वेद्यस्योभयत्रामननात् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—इयत् = इतना मात्र। आमननात् = कथन होने से ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—पूर्वपक्षी का कहना है कि 'ऋतं पिबन्तौ' इस मन्त्र में द्विवचन से जीव और ईश्वर दोनों भोक्ता प्रतीत होते हैं और 'द्वा सुपर्णा' इस मन्त्र में जीव को भोक्ता तथा ईश्वर को अभोक्ता सिद्ध किया है। यहाँ मन्त्रों में वेद्य ईश्वर का स्वरूप-भेद होने से विद्या का भी भेद हो सकता है। सिद्धान्ती कहता है—नहीं, दोनों विद्याओं में भेद नहीं है; हृदय की उपाधि से इयत्ता, परिच्छिन्नता तथा द्वित्वभाव आने पर भी वेद्य वस्तु एक ही है। अतः एक ही विद्या है॥ ३४॥

अन्तराधिकरणम् ॥ ३५-३६ ॥

अन्तरा भूतग्रामवत्स्वात्मनः ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—'यः साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म' (बृ० ३।४।१) 'य आत्मा सर्वान्तरः' (बृ० ३।५।१) इत्येवं ब्राह्मणद्वयेऽपि स्वात्मनः सर्वान्तरत्वाद् भूतग्रामवत् सर्वेषु भूतग्रामेषु सर्वान्तर एक एवात्माम्नायते तथा च वेद्यस्यैक्याः द्विद्याया ऐक्यम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—स्वात्मनः = अपनी आत्मा के। अन्तरा = सबकी अन्तरात्मा होने से विद्या की एकता है। भूतग्रामवत् = श्रुति में सब भूतों में एक ही आत्मा बताया गया है ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—वाजसनेयी शाखा में उषस्ति और कहोल ब्राह्मणों ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि 'जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है' तथा 'जो सर्वान्तरात्मा हैं उसे हमें समझाओ। यहाँ संशय होता है कि दोनों ब्राह्मणों में विद्या एक है या भिन्न? इसका समाधान है कि विद्या एक ही है, जैसे कि सब भूतसमूह में एक ही आत्मा है। याज्ञवल्क्य ने उषस्ति को यही उत्तर दिया कि 'जो तेरा अन्तरात्मा है वही सबका अन्तरात्मा है।' (बृ० ३।४।१) इस प्रकार वेद्य की एकता होने से विद्या की भी एकता जाननी चाहिये। इस सूत्र में पूर्वसूत्र से 'आमननात्' शब्द की अनुवृत्ति करनी चाहिये। इस प्रकार सब भूतों में एक अन्तरात्मा का कथन होने से दो ब्राह्मण होने पर भी वेद्य अन्तरात्मा के एक होने से विद्या की एकता स्वतः सिद्ध है ॥ ३५ ॥

अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशान्तरवत् ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः—अन्यथा विद्याभेदानङ्गीकारे आम्नायभेदस्याभ्यासस्यानुपपत्तिः प्रयोजनाभावादिति चेन्नोपदेशान्तरवत् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—अन्यथा = विद्या में भेद न मानने से। भेदानुपपत्तिः = भेद का कथन सिद्ध नहीं होता। इति चेत् = ऐसी यदि शङ्का हो तो। न = यह उपयुक्त नहीं, क्योंकि। उपदेशान्तरवत् = 'तत्त्वमसि' महावाक्यरूप अन्य उपदेश की भाँति ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—विद्या में भेद न मानने पर भेदप्रतिपादक श्रुति प्रयोजन के अभाव से व्यर्थ हो जायगी। ऐसी शङ्का उचित नहीं है, क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् में नौ बार 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश होने पर भी विद्या की एकता बनी रही। ऐसे ही यहाँ प्रकृत में भी विद्या की एकता तथा सार्थकता जान लेनी चाहिये ॥ ३६ ॥

व्यतिहाराधिकरणम् ॥ ३७ ॥

व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत् ॥ ३७ ॥

सूत्रार्थः—तद्योऽहं सोऽसौ, योऽसौ सोऽहमित्यत्र व्यतिहारो जीवेश्वरयोर्विशेषणविशेष्यभाव एव उपास्यत्वेनोपदिश्यते, न त्वात्मन ईश्वरेणैकत्वमात्रमितरवत्। यथेतरे सर्वात्मत्वादयो गुणा उपास्यत्वेनोपदिश्यन्ते तद्वत्। कुतः ? यतः समाम्नातारौ जीवेश्वरौ व्यतिहारेण विशिंषन्ति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—व्यतिहारः = परस्पर अनुवर्तन। विशिंषन्ति = विशेष प्रकार का विधान करते हैं। हि = क्योंकि। इतरवत् = दूसरे गुणों की भाँति ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—'जो मैं हूँ सो तू है और जो तू है सो मैं हूँ'—इस प्रकार परस्पर अनुवर्तन अहंग्रहोपासना के लिये है। जैसे सर्वात्मता आदि गुण ध्यान के लिये कहे हैं, उसी प्रकार 'सोहं' इत्यादि गुण भी उपासनार्थ हैं। यह उपासना एकत्व की दृढ़ता के लिये है ॥ ३७ ॥

सत्याद्यधिकरणम् ॥ ३८ ॥

सैव हि सत्यादयः ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—'स यो हैतं ...... वेद सत्यं ब्रह्म' (बृ० ५।४।१) इति सत्यविद्यामभिधाय तदनन्तरं 'य एष एतस्मिन्मण्डले' (बृ० ५।५।२) इत्युक्तमत्रोभयविद्याया ऐक्यं न वेति शङ्कते। तत्राह—इयमन्तर्विद्या सैव सत्यविद्या ततो न भिद्यते ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हि = क्योंकि । सा एव = जो अन्तर्विद्या है वही । सत्यादयः = सत्यविद्या आदि है ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—'जो सत्य ब्रह्म को इस प्रकार जानता है वह उत्तम लोक में जाता है' इस प्रकार (स त् य इन अक्षरोंवाली) सत्यविद्या को कहकर तदनन्तर 'जो आदित्यमण्डलस्थ और आँख में स्थित पुरुष है वह सत्य है' यह कथन है। यहाँ संशय होता है कि ये सत्यविद्या और अन्तर्विद्या दो हैं या एक। वहाँ समाधान करते हैं कि जो अन्तर्विद्या है वही सत्यविद्या है। अतः दोनों विद्या एक ही हैं, दो नहीं ॥ ३८ ॥

कामाद्यधिकरणम् ॥ ३९ ॥

कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॥ ३९ ॥

सूत्रार्थः—सत्यकामादिगुणजातं बृहदारण्यके उपसंहर्तव्यम् । यच्च सर्ववशित्वादिकं तदपि तत्र छान्दोग्ये उपसंहर्तव्यम् । कुतः ? आयतनादिभ्यः- उभयस्थले हृदयस्थानस्य वेद्यस्येश्वरस्य च सामान्यात् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—च = तथा । कामादि = सत्यकाम, सत्यसङ्कल्पादि गुणसमूह । इतरत्र = दूसरे स्थान में । तत्र = वहाँ छान्दोग्य में । आयतनादिभ्यः = हृदयरूप स्थानादि हेतुओं से ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—सत्यकाम, सत्यसङ्कल्पादि गुणों का बृहदारण्यक में और सबको वश में करनेवाला, सबका स्वामी आदि गुणों का छान्दोग्य में उपसंहार करना चाहिये। क्योंकि दोनों स्थलों में हृदयरूप स्थान की और वेद्य ईश्वर की एकता होने से विद्या की भी एकता है ॥ ३९ ॥

आदराधिकरणम् ॥ ४०-४१ ॥

आदरादलोपः ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—भोजनलोपेऽपि प्राणाग्निहोत्रस्यालोपः । कुतः ? प्राणाग्निहोत्रे आदरकरणात् । इति पूर्वपक्षः ॥ ४० ॥

पदार्थः—आदरात् = श्रुति में आदर होने से । अलोपः = प्राणाग्निहोत्र का लोप नहीं है ॥ ४० ॥

भाषार्थः—भोजन का लोप होने पर भी प्राणाग्निहोत्र का लोप नहीं है। क्योंकि 'अतिथि से पूर्व भोजन करे' इस प्रकार जाबालश्रुति प्राणाग्निहोत्र का आदर करती है। यह पूर्वपक्ष है ॥ ४० ॥

उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—सिद्धान्तसूत्रमिदम्। उपस्थिते भोजनेऽतोऽस्मादेव भोजनद्रव्यात् प्राणाग्निहोत्रं कर्त्तव्यम्, नानुपस्थिते भोजने। कुतः ? 'तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयम्' (छा० ५। १९। १) इति श्रुतेः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—उपस्थिते = भोजन के उपस्थित होने पर। अतः = इसी भोजन-पदार्थ से। तद्वचनात् = 'तद्यद्भक्तं प्रथमम्' इस श्रुति-वचन से ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—यह सिद्धान्तसूत्र है। भोजन के उपस्थित होने पर इसी भोजन से प्राणाग्निहोत्र करना चाहिये अर्थात् पाँचों प्राणों को पाँच आहुति देनी चाहिये। यथा—प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और व्यानाय स्वाहा। एक-एक मन्त्र बोलकर एक-एक ग्रास ग्रहण करे। यों पाँच ग्रास खाय। यही प्राणाग्निहोत्र है। इस पञ्चग्रास से पहले 'अमृतोपतरणमसि स्वाहा' यह मन्त्र बोलकर जल से एक आचमन कर ले और भोजन के अन्त में 'अमृतोऽपिधानमसि स्वाहा' मन्त्र बोलकर आचमन करे। भोजन मिलने पर ही प्राणाग्निहोत्र करे, अन्यथा नहीं ॥ ४१ ॥

तन्निर्धारणाधिकरणम् ॥ ४२ ॥

तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम् ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—तेषां कर्माङ्गाश्रितानां निर्धारणानामुपासनानामनियमो नित्यवदनुष्ठानाभावः, तस्यानियमस्य श्रुतौ दर्शनात्। यतः पृथगप्रतिबन्धः फलमतो न कर्माङ्गत्वमुपासनस्य ॥ ४२ ॥

पदार्थः—तन्निर्धारणानियमः = उन कर्माङ्गाश्रित उपासनाओं का कोई नियम नहीं है। तद्दृष्टेः=वह अनियम श्रुति ने दिखलाया है। हि = निश्चय से। पृथक् फलम् = इस प्रणव (उद्गीथ) की उपासना का पृथक् फल होता है कि। अप्रतिबन्धः=कर्म का प्रतिबन्ध नहीं होता ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—'उद्गीथ के अवयव 'ॐ' इस अक्षर की उपासना करे' (छा० १। १। १) इस प्रकार उद्गीथादि उपासनाएँ कर्म-गुणों के यथार्थ स्वरूप का निर्धारण करनेवाली हैं। ऐसी उपासनाओं के अनुष्ठान का संध्या आदि नित्यकर्मों के समान कोई नियम नहीं है। ये उपासनाएँ कर्म की अङ्ग नहीं हैं। इनका फल कर्मफल से पृथक् जन्म-मृत्युरूप बन्धन से छुड़ानेवाला

है। श्रुति भी ऐसा ही कहती है—'जो ॐ के स्वरूप को जानकर उपासना करता है और जो स्वरूप को न जानकर उपासना करता है दोनों को क्रमशः अधिक-न्यून फल मिलता है' (छा १।१।१०) इसमें कर्मफल का नियम नहीं है॥ ४२॥

प्रदानाधिकरणम्॥ ४३॥

प्रदानवदेव तदुक्तम्॥ ४३॥

सूत्रार्थः—प्रदानवत्-'यथेन्द्राय राज्ञे' इतीन्द्रदेवताया एकत्वेऽपि राजादिगुणभेदेन तद्विशिष्टदेवताभेदात्पुरोडाशप्रदानभेदस्तद्वद् वायुप्राणयोर्भेदो ज्ञातव्यः। तदुक्तं देवताकाण्डे 'नाना वा देवता पृथग्ज्ञानात्' इति॥ ४३॥

पदार्थः—प्रदानवद् एव=पुरोडाश देने के समान ही। तदुक्तम्=इसका वर्णन देवताकाण्ड में किया गया है॥ ४३॥

भाषार्थः—बृहदारण्यक में सब इन्द्रियों से प्राण को श्रेष्ठ कहा है और छान्दोग्य में अग्नि आदि में वायु को श्रेष्ठ कहा है। यहाँ संशय है कि प्राण और वायु दो हैं या एक? इसका उत्तर है कि दोनों को भिन्न जानना चाहिये। जैसे इन्द्र एक है, पर राजा आदि गुणों के भेद से देवराज आदि संज्ञा के कारण भेद को प्राप्त हो गया, वैसे ही वायु और प्राण एक होने पर भी भिन्न-भिन्न कहे जाते हैं। देवताओं की बहुरूपता देवताकाण्ड में वर्णित है॥ ४३॥

लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणम्॥ ४४-५२॥

लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि॥ ४४॥

सूत्रार्थः—मनश्चिदादयोऽग्नयः स्वतन्त्रा एव। कुतः? लिङ्गभूयस्त्वात्-स्वातन्त्र्यज्ञापकलिङ्गानां भूयस्त्वादाधिक्यात्। तल्लिङ्गं प्रकरणाद्बलीयस्तदपि बलीयस्त्वमुक्तं पूर्वमीमांसायाम् (जै० सू० ३।३।१३)॥ ४४॥

पदार्थः—लिङ्गभूयस्त्वात्=स्वातन्त्र्यप्रतिपादक लिङ्गों (चिह्नों) के अधिक होने से मनश्चित् आदि अग्नियाँ स्वतन्त्र हैं। तद्बलीयः=प्रकरण से लिङ्ग बलवान् होता है। हि=क्योंकि। तदपि=इसको जै० सू० ३।३।१३ में कहा गया है॥ ४४॥

भाषार्थः—(मन से बनी हुई) मनश्चित् आदि अग्नियाँ स्वतन्त्र हैं क्योंकि स्वतन्त्रताप्रतिपादक लिङ्ग (चिह्न) बहुत हैं और लिङ्ग प्रकरण से

बलवान् होता है, जैसा कि पूर्वमीमांसा में आचार्य जैमिनि ने सू० ३।३।१३ में कहा है ॥ ४४ ॥

पूर्वविकल्पः प्रकरणात्स्यात् क्रिया मानसवत् ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थः—संकल्पात्मका मनश्चिदादयोऽग्नयो न स्वतन्त्राः पूर्वस्य क्रियामयस्याग्नेरयं संकल्पविकल्पात्मकोऽग्निः प्रकरणात् क्रियामय एव स्यान्मानसवत् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—प्रकरणात् = अग्नि का प्रकरण होने से। मानसवत्=मानस सोमपात्र के समान। पूर्वविकल्पः = पूर्व अग्नि का एक प्रकार। क्रिया = क्रियामय। स्यात्=हो सकता है ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—वाजसनेयी अग्नि-रहस्य में उक्त संकल्पात्मक ये मनश्चित्, वाक्चित्, प्राणचित्, चक्षुश्चित्, श्रोत्रचित्कर्मचित् और अग्निचित् ये पाँच अग्नियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं। किन्तु अग्नि का प्रकरण होने से पूर्वक्रियामय अग्नि के विकल्परूप ये संकल्पात्मक अग्नियाँ हैं। प्रकरण से लिङ्ग को बलवान् कहा है—यह ठीक है, पर यहाँ लिङ्ग बलवान् नहीं है। जैसे मानस (सोमपात्र) क्रिया का अङ्ग है, वैसे यहाँ भी अग्नि क्रिया का अङ्ग है ॥ ४५ ॥

अतिदेशाच्च ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः—अतिदेशादपि मनश्चिदादयः क्रियाङ्गत्वं भजन्ते ॥ ४६ ॥

पदार्थः—अतिदेशात्=समानता से। च = भी ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—ये संकल्पात्मक ३६ हजार अग्नियाँ हैं। इनमें प्रत्येक अग्नि पूर्वक्रियाग्नि के तुल्य है। इस तुल्यात्मक अतिदेश से सिद्ध हुआ कि ये सब अग्नियाँ क्रिया की अङ्ग हैं ॥ ४६ ॥

विद्यैव तु निर्धारणात् ॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वसूत्रद्वयोक्तपरपक्षनिरासार्थः। विद्यात्मका एवैते स्वतन्त्रा मनश्चिदाद्यग्नयः स्युर्न क्रियाशेषभूताः 'ते हैते विद्याचित् एव' इति निर्धारणात् ॥ ४७ ॥

पदार्थः—तु=परन्तु। विद्या एव = ये अग्नियाँ विद्या ही हैं। निर्धारणात् = ऐसा श्रुति से निश्चित है ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—मनश्चित् आदि सब अग्नियाँ स्वतन्त्र हैं, क्रिया की अङ्ग नहीं हैं। स्वतन्त्रता के बल से विद्यारूप ही हैं। 'ये सब अग्नियाँ विद्यारूप ही हैं' इस श्रुति से ऐसा सिद्ध है ॥ ४७ ॥

दर्शनाच्च ॥ ४८ ॥

सूत्रार्थः—मानसाग्नीनां स्वतन्त्रताज्ञापकलिङ्गस्य दर्शनात् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—च = और। दर्शनात् = श्रुति में दिखलाया गया है ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—३। ३। ४४ इस सूत्र में वर्णित मनश्चित् आदि अग्नियों का स्वतन्त्रताज्ञापक लिङ्ग श्रुति में भी दिखलाया गया है ॥ ४८ ॥

श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः ॥ ४९ ॥

सूत्रार्थः—बलहीनेनाग्निप्रकरणेनाग्नीनां न स्वातन्त्र्यबाधः। श्रुतिलिङ्ग-वाक्यानां बलीयस्त्वात्। 'ते हैते विद्याचित् एव' इति श्रुतिः, 'सर्वदा सर्वाणि भूतानि' इति लिङ्गम्, 'विद्याया हैवेते' इति वाक्यम् ॥ ४९ ॥

पदार्थः—च = तथा। श्रुत्यादिबलीयस्त्वात् = श्रुति, लिङ्ग और वाक्य के बलवान् होने से। न बाधः = अग्नियों की स्वतन्त्रता का बाध नहीं हो सकता ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—श्रुति, लिङ्ग तथा वाक्यों के बलवान् होने के कारण बलहीन अग्नि-प्रकरण से अग्नियों की स्वतन्त्रता का बाध नहीं हो सकता। 'ये सब अग्नि विद्याचित् ही हैं' यह श्रुति है। 'सब भूत उन देवताओं के लिये अग्नियों का चयन करते हैं' यह लिङ्ग है। विद्या या उपासना से ही ज्ञानी पुरुष के ये अग्निसमूह चित् होते हैं' यह वाक्य है। इस प्रकार श्रुति, लिङ्ग और वाक्य यहाँ बलवान् हैं ॥ ४९ ॥

अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद्दृष्टश्च तदुक्तम् ॥ ५० ॥

सूत्रार्थः—अनुबन्धादिभ्यो हेतुभ्यः स्वातन्त्र्यं मनश्चिदादीनां प्रज्ञान्तर-पृथक्त्ववत्—यथा प्रज्ञान्तराणां शाण्डिल्यादिविद्यानां स्वातन्त्र्यं तद्वत्। अवेष्टे-तन्नामधेये यज्ञे राजसूयोत्कर्षो दृष्टश्च तदुक्तं प्रथमे काण्डे क्रत्वर्थायामिति (जै० ११। ४। ७) ॥ ५० ॥

पदार्थः—च = तथा । अनुबन्धादिभ्यः = सम्बन्ध आदि हेतुओं से । प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववत् = अन्य विद्याओं की स्वतन्त्रता की तरह । दृष्टः = देखा है । तदुक्तम् = वह प्रथम काण्ड में कह दिया है ॥ ५० ॥

भाषार्थः—यज्ञ में क्रिया के अङ्गों का अर्थात् अग्नि की स्थापना, ईंटों का चयन, आज्यस्थाली, चरुस्थाली आदि पात्रों का मन से सञ्चित करना अनुबन्ध है । आदि शब्द से अनुबन्ध के तुल्य अन्य सामग्री समझनी चाहिये । एवं अनुबन्धादि हेतुओं से मनश्चित् आदि अग्नियों की स्वतन्त्रता शाण्डिल्यादि अन्य विद्याओं के तुल्य है । यह अनुबन्ध मनोमय है । 'मन से सब सामग्री सम्पादन करना ।' इस प्रकार मनोमय मनश्चित् आदि अग्नियों से मनोमय होम होता है । इसका फल अवेष्टिनामक यज्ञ में तथा राजसूय-प्रकरण में देखने में आता है ॥ ५० ॥

न सामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ॥ ५१ ॥

सूत्रार्थः—मनश्चिदादीनां मानसेन मानसिकत्वसामान्यादपि क्रियाशेषत्वं न कल्प्यम् । उक्तश्रुत्यादिभ्यः स्वातन्त्र्योपलब्धेः, मृत्युवत् 'यथा वा द्युलोकोऽग्निस्तस्यादित्यः समित्' इत्यादौ समिदादिसामान्यान्न द्युलोकस्याग्नित्वापत्तिः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—सामान्यादपि = मनश्चित् आदि अग्नियों की समानता होने पर भी । न = क्रिया का अङ्ग स्वीकार नहीं करना चाहिये । उपलब्धेः = उपलब्धि होने से । मृत्युवत् = मृत्युशब्द की असमानता की तरह । न हि लोकापत्तिः = और द्युलोक में भी अग्नि की प्राप्ति नहीं है ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—सामान्यात् = मनश्चित् आदि अग्नियों की समानता होने पर भी स्वतन्त्रता की उपलब्धि होने के कारण मृत्युशब्द की असमानता की तरह क्रिया का अङ्ग स्वीकार नहीं करना चाहिये । जैसे 'यही मृत्यु है जो इस मण्डल में पुरुष है' तथा 'अग्नि ही मृत्यु है' (छा० ३ । २ । १०) यहाँ अग्नि तथा आदित्य पुरुष में यद्यपि मृत्युशब्द समान है, तथापि अत्यन्त समीपता की प्राप्ति नहीं है, भिन्नता ही है और जैसे 'हे गौतम ! यही लोक अग्नि है, उसकी आदित्य ही समिधा है' यहाँ समिधा आदि की समानता होने पर भी द्युलोक अग्नि नहीं होता, परस्पर भिन्नता ही रहती है । वैसे ही मानस और मानसिक अग्नि का मानसिकत्व समान होने पर भी परस्पर भिन्नता ही है ॥ ५१ ॥

परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्त्वनुबन्धः ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थः—मानसिकाग्निब्राह्मणात्परस्मिन् ब्राह्मणे 'अयं वाव लोकः' इत्यादि-शब्दस्य ताद्विध्यं कर्माङ्गानां मानसिकविद्यायां सम्पाद्यानां बहुत्वाद् विद्यायास्तदुपक्रमेणानुबन्धः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—परेण च = और आगे के ब्राह्मण से। ताद्विध्यम् = स्वतन्त्र विद्या का विधान। तु = ही। शब्दस्य = शब्द का प्रयोजन है। भूयस्त्वात्=मानसाग्नि-विद्या में सम्पादनीय कर्माङ्गों की अधिकता होने से। अनुबन्धः = विद्या का क्रियाग्नि के साथ सम्बन्ध है॥ ५२ ॥

भाषार्थः—आगे के ब्राह्मण से स्वतन्त्र अग्निविद्या का विधान ही श्रुति का प्रयोजन है। इसमें शंका होती है कि यदि मनोवृत्तिरूप अग्नि क्रिया का अंग नहीं है तो अग्नि के साथ उसका पाठ क्यों है। इसका उत्तर है कि मानसाग्नि-विद्या में सम्पादनीय कर्माङ्गों की अधिकता होने से विद्या का क्रियाग्नि के साथ सम्बन्ध है॥ ५२॥

ऐकात्म्याधिकरणम् ॥ ५३-५४ ॥

एक आत्मनः शरीरे भावात् ॥ ५३ ॥

सूत्रार्थः—एके देहात्मवादिनो देहातिरिक्तस्यात्मनोऽसत्त्वं मन्यमाना देह एवात्मेति वदन्ति। शरीरे सति चैतन्यसुखादीनां भावात् ॥ ५३ ॥

पदार्थः—एके = कोई चार्वाक आदि। आत्मनः = शरीर से भिन्न जीव की सत्ता नहीं मानते। शरीरे = शरीर के होने पर ही। भावात्=आत्मा के धर्म होने से ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—कोई चार्वाक आदि शरीर से भिन्न आत्मा नहीं है ऐसा मानते हैं, क्योंकि शरीर होने पर ही आत्मा के धर्म होते हैं॥ ५३ ॥

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ॥ ५४ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षनिरासार्थः। अस्यात्मनो देहाद् व्यतिरेक एव। कुतः ? तद्भावाभावित्वादुपलब्धिवत् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—न = ऐसा नहीं है। तु=परन्तु। व्यतिरेकः=आत्मा शरीर से भिन्न है। तद्भावाभावित्वात् = मृत्युसमय में शरीर के रहते भी चेतनता का अभाव होने से। उपलब्धिवत् = ज्ञान के समान ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—शरीर आत्मा नहीं है, किन्तु आत्मा शरीर से भिन्न है। क्योंकि मृत्युसमय में शरीर के रहते भी आत्मा के चेतनारूप धर्म का अभाव हो जाता है। भूतों की चेतना भूतों का धर्म नहीं है। वेदान्त आत्मा तथा ज्ञान को अभिन्न मानता है॥ ५४॥

अङ्गावबद्धाधिकरणम् ॥ ५५-५६ ॥

अङ्गावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् ॥ ५५ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वपक्षखण्डनार्थः। एता अङ्गावबद्धा अङ्गाश्रितोपासनाः प्रतिवेदं प्रत्येकं वेदान्तेषु शाखासु विद्यमानोद्गीथाद्यालम्बना एव न भवन्ति किन्तु शाखान्तरीयोद्गीथाद्यालम्बना अपि॥ ५५॥

पदार्थः—तु = परन्तु। अङ्गावबद्धाः = अंगाश्रित उपासनाएँ। प्रतिवेदम् = प्रत्येक वेदान्त में। शाखासु हि = केवल अपनी शाखाओं में ही। न = उद्गीथ की सहायक नहीं हैं॥ ५५॥

भाषार्थः—किन्तु कर्म के अवयवों से सम्बद्ध ये उपासनाएं वेदान्त में केवल अपनी शाखाओं में स्थित उद्गीथ की सहायक ही नहीं होतीं, अपितु अन्य शाखाओं के उद्गीथ की भी सहायक होती हैं, क्योंकि उद्गीथादि श्रुति सर्वत्र समान है॥ ५५॥

मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ॥ ५६ ॥

सूत्रार्थः—अथवा मन्त्रादिवदविरोधः। यथा हि शाखान्तरीयोपपन्नानां मन्त्राणां कर्मणां गुणानाञ्चोपग्रहः शाखान्तरे दृश्यते तद्वदत्राप्यविरोधः॥ ५६॥

पदार्थः—वा = अथवा। मन्त्रादिवत् = मन्त्रादि की तरह। अविरोधः=कोई विरोध नहीं है॥ ५६॥

भाषार्थः—जैसे अन्य शाखाओं में जो मन्त्र, कर्म तथा गुण हैं उनका दूसरी शाखाओं में अध्याहार होता है, वैसे ही अन्य शाखास्थ उद्गीथादि कर्म में अन्य शाखागत उपासना का उपसंहार जानना चाहिये। अतः कोई विरोध नहीं है॥ ५६॥

भूमज्यायस्त्वाधिकरणम् ॥ ५७ ॥

भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा हि दर्शयति ॥ ५७ ॥

सूत्रार्थः—भूम्नः समस्तोपासनस्यैव ज्यायस्त्वं न व्यस्तानाम्॥ ५७॥

पदार्थः—क्रतुवत् = यज्ञवत् । भूम्नः=भूमा वैश्वानर की उपासना । ज्यायस्त्वम् = सर्वश्रेष्ठ है । तथा हि दर्शयति=श्रुति भी ऐसा ही कहती है ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—जैसे दर्श-पूर्णमास आदि यज्ञ में सर्वाङ्गसहित प्रधान एक ही प्रयोग श्रेष्ठ है, वैसे ही वैश्वानर (विराट् पुरुष) की समस्तोपासना (सर्वाङ्गीर्ण उपासना ही श्रेष्ठ है, न कि व्यस्त (एकांगी) उपासना । श्रुति भी ऐसा ही कहती है कि 'उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल आदि छः ऋषि ज्ञानप्राप्ति के लिये अश्वपति राजा के पास गये । अश्वपति ने उनको समस्तोपासना ही श्रेष्ठ बतायी' ॥ ५७ ॥

शब्दादिभेदाधिकरणम् ॥ ५८ ॥

नाना शब्दादिभेदात् ॥ ५८ ॥

सूत्रार्थः—एकोपास्यविद्या नानैव। कुतः ? शब्दादिभेदात् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—नाना=भिन्न है । शब्दादिभेदात्=श्रुति के भिन्न होने से ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—एक उपास्य ईश्वर की उपासना में भेद कैसे ? इसका समाधान है कि श्रुतियों की भिन्नता से उपासना में भी अनेकता सम्भव है ॥ ५८ ॥

विकल्पाधिकरणम् ॥ ५९ ॥

विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ॥ ५९ ॥

सूत्रार्थः—विकल्प एवासां विद्यानां न समुच्चयोऽविशिष्टफलत्वाद् आसामहंग्रहविद्यानां ब्रह्मसाक्षात्काररूपमेकमेव फलम् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—विकल्पः = विद्याओं में किसी एक को ग्रहण करना चाहिये। अविशिष्टफलत्वात्=एक फल होने से ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—एक विद्या की उपासना समुचित है । विद्या के समुच्चय की उपासना निरर्थक है, क्योंकि इन सब अहंग्रह-विद्याओं का ब्रह्मसाक्षात्काररूप एक ही फल है । अतः एक विद्या से ही साधक मुक्त हो सकता है । विद्या के समुच्चय (मिश्रण) की आवश्यकता नहीं है ॥ ५९ ॥

काम्याधिकरणम् ॥ ६० ॥

काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन् न वा पूर्वहेत्वभावात् ॥ ६० ॥

सूत्रार्थः—काम्या विद्या यथाकामं समुच्चीयेरन्न वा पूर्वहेत्वभावात् ॥ ६० ॥

पदार्थः—तु = किन्तु। काम्याः = सकाम विद्याओं का। समुच्चीयेरन् = समुच्चय किया जा सकता है। यथाकामम् = इच्छानुसार। न वा = अथवा नहीं भी। पूर्वहेत्वभावात् = पूर्वसूत्र का हेतु न होने के कारण ॥ ६० ॥

भाषार्थः—सकाम विद्याओं का तो सकामी साधक समुच्चय करें या न करें अर्थात् वे सभी सकाम विद्याओं को पढ़ें या एक को पढ़ें—यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। इसमें पूर्वसूत्र का हेतु मोक्षरूप एक फल का अभाव है ॥ ६० ॥

यथाश्रयभावाधिकरणम् ॥ ६१ ॥

अङ्गेषु यथाश्रयभावः ॥ ६१ ॥

सूत्रार्थः—कर्माङ्गेषूद्गीथादिषु या आश्रिता उपासना तत्राङ्गतन्त्रत्वाद्यथाश्रयभावस्तद्वत् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—अङ्गेषु = कर्म की अङ्गभूत विद्याओं में। यथाश्रयभावः = उनके आश्रय के अनुसार स्थिति होती है ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—कर्म के अङ्गभूत उद्गीथ आदि में उनके आश्रित उपासनाओं का समुच्चय किया जाय या नहीं। इसमें पूर्वपक्ष के रूप में सूत्रकार कहते हैं कि जैसे यज्ञानुष्ठान में उसके आश्रित अङ्गों के समुच्चय का नियम है, वैसे ही अङ्गों के अनुष्ठान में तदाश्रित उपासना के समुच्चय का भी नियम है ॥ ६१ ॥

शिष्टेश्च ॥ ६२ ॥

सूत्रार्थः—यथाङ्गानां प्रतिवेदत्रयं विधानं तथा तदाश्रितोपास्तीनां विधानाविशेषाच्चाङ्गवत्समुच्चयनियमः ॥ ६२ ॥

पदार्थः—शिष्टेः = विधान होने से। च = भी समुच्चय उचित है ॥ ६२ ॥

भाषार्थः—जैसे तीनों वेदों में कर्मों के अङ्गों का विधान है, वैसे ही उन अङ्गों के आश्रित उपासनाओं का भी विधान तथा समुच्चय है ॥ ६२ ॥

समाहारात् ॥ ६३ ॥

सूत्रार्थः—'होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीथमनुसमाहरति' (छा० १।५।५) इति समाहारोऽपि उपासनासमुच्चये हेतुः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—समाहारात्=अशुद्ध उद्गीथ का सुधार होने से भी अङ्गों का समुच्चय है ॥ ६३ ॥

भाषार्थः—'उद्गाता होता की. स्तोत्रविषयक भूल का संशोधन करता हैं' यह भूल का सुधार भी उपासना के समुच्चय में हेतु है ॥ ६३ ॥

गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ॥ ६४ ॥

सूत्रार्थः—गुणभूतोंकारस्य सर्वकर्मणि वेदत्रये साधारण्यश्रवणात्तदाश्रितोपासनानामपि साधारण्यं समुच्चित्यानुष्ठानमित्यर्थः ॥ ६४ ॥

पदार्थः—गुणसाधारण्यश्रुतेः = विद्याओं के गुण ॐ का तीनों वेदों में सामान्यरूप से श्रवण होने से । च = भी ॥ ६४ ॥

भाषार्थः—उद्गीथ-उपासना में गुणभूत ॐकार के सब कर्मों में साधारण होने से भी उसके आश्रित उपासनाओं का समुच्चय है ॥ ६४ ॥

न वा तत्सहभावाश्रुतेः ॥ ६५ ॥

सूत्रार्थः—न इति पूर्वसूत्रचतुष्टयोक्तपक्षव्यावर्तनम् । अङ्गाश्रितोपासनानामङ्गवत्समुच्चयनियमः । यथाङ्गानां सहभाव श्रूयते तथा तेषामुपासनानां सहभावस्याश्रुतेः ॥ ६५ ॥

पदार्थः—वा = अथवा । तत्सहभावाश्रुतेः = समुच्चयप्रतिपादक श्रुतियों के अभाव से । न = समुच्चय नहीं है ॥ ६५ ॥

भाषार्थः—पूर्वोक्त सूत्र ६१ से ६४ तक पूर्वपक्ष है, ६५-६६ सिद्धान्त-सूत्र हैं । न शब्द पूर्व ४ सूत्रोक्त पूर्वपक्ष का निवर्तक है । सिद्धान्ती कहता है—जैसे वेदोक्त स्तोत्रादि अङ्गों के सहभाव (समुच्चय) का श्रवण है, वैसे उनके अङ्गाश्रित उपासनाओं के समुच्चय का नियम नहीं है । यहाँ से अध्याय-समाप्ति-पर्यन्त उद्गीथोपासना का वर्णन है ॥ ६५ ॥

दर्शनाच्च ॥ ६६ ॥

सूत्रार्थः—उपासनानां समुच्चयनियमो नास्तीति श्रुतिर्दर्शयति ॥ ६६ ॥

पदार्थः—दर्शनात् = श्रुति से । च = भी समुच्चय नहीं है ॥ ६६ ॥

भाषार्थः—उपासनाओं के समुच्चय का नियम नहीं है, ऐसा श्रुति भी कहती है ॥ ६६ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रिविरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

अथ वेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये

चतुर्थः पादः

आत्मज्ञानस्वातन्त्र्याधिकरणम् ॥ १–१७ ॥

(अत्र निर्गुणविद्याया अन्तरङ्गबहिरङ्गविचारः)

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—अतः वदान्तविहितात्मज्ञानात्पुरुषार्थो मोक्षः सिद्धयति। कुतः ? शब्दात्। 'तरति शोकमात्मवित्' इति बादरायणो मन्यते ॥ १ ॥

पदार्थः—अतः=इस आत्मज्ञान से। पुरुषार्थः=मोक्ष होता है। शब्दात्= श्रुति से यह सिद्ध है। इति=ऐसा बादरायण आचार्य मानते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थः—वेदान्तजन्य आत्मज्ञान से मोक्ष होता है। इसमें 'आत्मज्ञानी शोक से मुक्त हो जाता है' यह श्रुति प्रमाण है। ऐसा बादरायणाचार्य मानते हैं ॥ १ ॥

शेषत्वात्पुरुषार्थवादो यथान्येष्विति जैमिनिः ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—कर्तृत्वेनात्मनः कर्मशेषत्वात्तज्ज्ञानमपि कर्मशेषात्मद्वारा क्रत्वङ्गम्। नन्वसिद्धो हेतुः। तरति शोकमात्मविदित्यादिफलश्रुतेः सत्वादित्यत आह—यथान्येषु द्रव्यसंस्कारकर्मसु 'यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापं श्लोकं शृणोति' इति फलश्रुतिरर्थवाद इति जैमिनिर्मन्यते ॥ २ ॥

पदार्थः—शेषत्वात्=कर्म का अङ्ग होने से। पुरुषार्थवादः='तरति' यह श्रुति प्रशंसात्मक है। यथा=जैसे। अन्येषु=यज्ञ के दूसरे अङ्गों में 'यस्य पर्णमयी' यह श्रुति अर्थवाद है। इति जैमिनिः=ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थः—आत्मा के कर्ता होने से आत्मा कर्म का अङ्ग है। इससे आत्मज्ञान भी कर्म का अङ्ग है तो 'आत्मज्ञानी शोक से परे है' यह श्रुति निरर्थक है क्या ? नहीं, निरर्थक नहीं है। जैसे दूसरे यज्ञों में 'जिसकी पलाश के पत्तों की जुहू (चम्मच) होती है वह पापयुक्त शब्द को नहीं सुनता' यह श्रुति अर्थवादमात्र है, वैसे यहाँ भी 'शोक को पार कर जाता है' यह

पुरुषार्थवाद-प्रतिपादक श्रुति अर्थवादमात्र है। ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं ॥ २ ॥

आचारदर्शनात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—गृहस्थानां जनकादिब्रह्मविदामाचारदर्शनादपि न केवलादात्मज्ञानान्मोक्षसिद्धिः ॥ ३ ॥

पदार्थः—आचारदर्शनात्=जनक आदि के कर्माचरण-दर्शन से भी ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जनकादि गृहस्थी ज्ञानियों के आचरण को देखने से भी प्रत्यक्ष है कि केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं होता ॥ ३ ॥

तच्छ्रुतेः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति' (छा० १ । १ । १०) इत्यादिश्रुतिभ्योऽपि न तत्सिद्धिः ॥ ४ ॥

पदार्थः—तत् = उस कर्माङ्ग का। श्रुतेः=श्रुति में कथन होने से ॥ ४॥

भाषार्थः—'विद्या से, श्रद्धा से, उपनिषद् से जो कर्म होता है वही वीर्यवत्तर होता है' यहाँ इस श्रुति में विद्या में तृतीय विभक्ति होने से भी विद्या कर्म का अङ्ग है। अतः केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं होता ॥ ४ ॥

समन्वारम्भणात् ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते'। (बृ० ४ । ४ । २) इति विद्याकर्मणोः सहकारित्वदर्शनान्न विद्यायाः स्वातन्त्र्यम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—समन्वारम्भणात्=विद्या और कर्म का सहयोग होने से ॥ ५ ॥

भाषार्थः—परलोक में जाते हुए पुरुष के साथ विद्या (ज्ञान) और कर्म दोनों जाते हैं। अतः विद्या स्वतन्त्र नहीं है ॥ ५ ॥

तद्वतो विधानात् ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—'आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानम्' (छा० ८ । १५ । १) इति श्रुत्याऽखिलवेदार्थविज्ञानवतः कर्माधिकारो दृश्यते तस्मादपि न विज्ञानस्वातन्त्र्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—तद्वतः = ज्ञानी के लिये भी। विधानात् = श्रुति कर्माधिकार दिखलाती है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—गुरुकुल में सम्पूर्ण वेदविद्या को पढ़े हुए आत्मज्ञानी के लिये कर्म का विधान होने के कारण भी केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं होता ॥ ६ ॥

नियमाच्च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—कुर्वन्नेवेहेत्यादिना यावज्जीवं कर्माचारनियमाद् विद्यायाः कर्माङ्गत्वं सिद्धम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—नियमात्=वेदोक्त कर्माचार-नियम से। च=भी ज्ञान स्वतन्त्र नहीं है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—'सौ वर्ष तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे' (ईश० उ०) इत्यादि श्रुतियों से जीवनपर्यन्त कर्म करने का नियम होने से विद्या कर्म का अङ्ग है ॥ ७ ॥

अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः पूर्वोक्तषट्सूत्रकृतपूर्वपक्षनिरासार्थः। यदुक्तं तत्त्वज्ञानं कर्माङ्गं तन्न। कर्मकर्तुः संसारिणः कर्माङ्गत्वात्। अधिकोपदेशात् संसारिणो जीवादधिकस्याकर्तुरभोक्तुर्ब्रह्मण उपदेशाद् बादरायणस्यैव मतं तथ्यं श्रुतौ तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—अधिकोपदेशात्=जीव से अधिक ब्रह्म का उपदेश होने से। तु=भी। एवम्=इस प्रकार। बादरायणस्य=बादरायण का ही मत सर्व-सम्मत है। तद्दर्शनात्=श्रुतियों में ऐसा ही देखा गया है ॥ ८ ॥

भाषार्थः—तु शब्द पूर्व में २ से ७ सूत्र तक स्थापित पूर्वपक्ष के खण्डन के लिये है। पूर्वपक्षी ने तत्त्वज्ञान को जो कर्माङ्ग कहा, यह उचित नहीं है। कर्मकर्त्ता संसारी पुरुष ही कर्म का अङ्ग हो सकता है। संसारी जीव से असंसारी, अकर्त्ता परमात्मा का वेदान्त में अधिक उपदेश है, अतः बादरायण का मत ही सर्ववेदान्त-सम्मत है ॥ ८ ॥

तुल्यं तु दर्शनम् ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तत्त्वज्ञानस्य कर्माङ्गाभावेऽप्याचारदर्शनं तुल्यम्। 'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन' (गीता ३। १८) इति गीतास्मृतिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—तुल्यम्=ज्ञानी के लिये कर्म करना न करना तुल्य है। दर्शनम्=इस आचार का वर्णन। तु=तो है ही ॥ ९ ॥

भाषार्थः—तत्वज्ञान कर्म का अङ्ग न होने पर भी ज्ञानी शास्त्रानुसार कर्म करे या न करे दोनों में तुल्य है। उसका कर्म भी अकर्म है। कर्म देह तथा इन्द्रियों से होता है। 'ज्ञानी देह तथा इन्द्रियों से अन्य शुद्धब्रह्मस्वरूप है' ऐसा बृ० ३।५।१ इत्यादि श्रुतियों ने दिखलाया है॥ ९॥

असार्वत्रिकी ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—यदेव विद्यया करोतीति श्रुतिर्न सर्वविद्याविषया प्रकृतोद्गीथ-विद्यामात्रत्वात्॥ १०॥

पदार्थः—असार्वत्रिकी = यह श्रुति सार्वभौम नहीं, एकदेशीय है॥ १०॥

भाषार्थः—'जो कुछ विद्या से करता है' यह श्रुति सब विद्याओं के विषय में नहीं है। उद्गीथविद्यामात्र से उसका सम्बन्ध है॥ १०॥

विभागः शतवत् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—तं विद्याकर्मणीत्यत्र विभागो बोध्यः। विद्या अन्यं पुरुषमन्वारभते कर्मान्यं पुरुषञ्चेति शतवत्॥ ११॥

पदार्थः—शतवत् = सौ वस्तुओं की भाँति। विभागः = विभाग है॥ ११॥

भाषार्थः—'मरनेवाले के साथ विद्या और कर्म दोनों जाते हैं' इसका अर्थ सौ रुपये बाँटने की तरह समझना चाहिये। जैसे किसी ने कहा—इन दो पुरुषों को सौ रुपये बाँट दो, अर्थात् ५० रुपये एक को और ५० रुपये दूसरे को दो। ऐसे ही यहाँ भी समझना चाहिये। अभिप्राय यह कि अज्ञानी के साथ कर्म और ज्ञानी के साथ ज्ञान जाता है॥ ११॥

अध्ययनमात्रवतः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—वेदाध्ययनमात्रवतः कर्म विधीयते नत्वात्मज्ञानवतः॥ १२॥

पदार्थः—अध्ययनमात्रवतः = वेदाध्ययनमात्र करनेवाले के लिये कर्म है॥ १२॥

भाषार्थः—गुरुकुल में जिसने वेदाध्ययन किया है उसीके लिये कर्म का विधान है, आत्मज्ञानी के लिये नहीं॥ १२॥

नाविशेषात् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—कुर्वन्नेवेहेति नियमवाक्यं न ज्ञानविषयकं विद्वानिति विशेषणा-भावात्॥ १३॥

पदार्थ:—अविशेषात् = विशेषण के अभाव से। न = 'कुर्वन्नेह' वाक्य ज्ञान-विषयक नहीं है ॥ १३ ॥

भाषार्थ:—'सौ वर्ष तक कर्म करता रहे' यह नियमवाक्य ज्ञानविषयक न होने से ज्ञानी पर लागू नहीं हो सकता, क्योंकि वाक्य में विद्वान् (ज्ञानी) ऐसा विशेषण नहीं है ॥ १३ ॥

स्तुतयेऽनुमतिर्वा ॥ १४ ॥

सूत्रार्थ:—इयं तत्त्वविदः कर्मानुज्ञा विद्यास्तुतये ज्ञातव्या यावज्जीवेति श्रुतिः ॥ १४ ॥

पदार्थ:—अनुमतिः = यह कर्म की अनुमति। स्तुतये वा = ज्ञान की स्तुति के लिये ही है। 'जब तक जीवित रहे कर्म करे' यह श्रुति है ॥ १४ ॥

भाषार्थ:—यह जो कर्म के लिये ज्ञानी को अनुमति है वह विद्या (ज्ञान) का महत्त्व दिखलाने के लिये है अर्थात् कर्म करते हुए भी तुझको ज्ञान के बल से कर्म के फल स्वर्ग-नरकादि न भोगने पड़ेंगे ॥ १४ ॥

कामकारेण चैके ॥ १५ ॥

सूत्रार्थ:—एके विद्वांसः प्रजादिकं कर्म कामकारेण स्वेच्छया त्यक्तवन्तः 'किं प्रजया करिष्यामः' (बृ० ४। ४। २२) इति श्रूयते ॥ १५ ॥

पदार्थ:—च = और। एके = कोई। कामकारेण = स्वेच्छा से कर्म-त्याग करते हैं ॥ १५ ॥

भाषार्थ:—कोई ज्ञानी स्वेच्छा से प्रजा (सन्तानादि) के पालन-पोषण आदि कर्म का त्याग कर देते हैं, जैसा कि 'धन-पुत्रादि से हम क्या करेंगे' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध है ॥ १५ ॥

उपमर्दञ्च ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ:—विद्यासामर्थ्यात्कर्मण उपमर्दं नाशमामनन्ति ॥ १६ ॥

पदार्थ:—च = तथा। उपमर्दम् = ज्ञान से कर्म का नाश बतलाते हैं ॥ १६ ॥

भाषार्थ:—'जिस ज्ञानी को सब दृश्य जगत् आत्मा ही दिखलायी देता है' इत्यादि श्रुतियाँ ज्ञान की शक्ति से सब कर्मों का नाश कहती हैं ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वरेतःसु च शब्दे हि ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—ऊर्ध्वरेतःसु यतिषु विद्या श्रूयते नहि तस्या विद्यायाः कर्माङ्गत्वं यतीनामग्निहोत्रादिकर्माभावात् । यत्याश्रमसद्भावे किं मानमुच्यते ? यतो वेदे ऊर्ध्वरेतसामाश्रमाः श्रूयन्ते ॥ १७ ॥

पदार्थः—च = तथा । ऊर्ध्वरेतःसु = संन्यासाश्रम में ही प्रायः ब्रह्मविद्या सुनी जाती है । हि=क्योंकि । शब्दे = वेद में वर्णन है ॥ १७ ॥

भाषार्थः—संन्यासाश्रम में ही प्रायः ब्रह्मविद्या सुनी जाती है । अतः ब्रह्मविद्या कर्म का अंग नहीं है, क्योंकि चतुर्थाश्रम में अग्निहोत्रादि कर्मों का अभाव है । वेद में संन्यासियों के आश्रम सुने गये हैं । अतः ज्ञान स्वतन्त्र है, कर्म का अंग नहीं ॥ १७ ॥

परामर्शाधिकरणम् ॥ १८-२० ॥

परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—'त्रयो धर्मस्कन्धाः' (छा० २ । २३ । १) इति श्रुतौ चतुर्णामाश्रमाणां परामर्शं निर्देशमात्रं जैमिनिर्मन्यते । इयं श्रुतिरचोदना लिङ्गादिशून्या तस्मान्निन्द्यमानत्वाच्च पारिव्रज्यं नानुष्ठेयमित्याह ॥ १८ ॥

पदार्थः—परामर्शम् = श्रुति में आश्रमों का निर्देशमात्र है । अचोदना = विधि नहीं है । हि=क्योंकि । अपवदति च = श्रुति निषेध ही करती है । जैमिनिः = ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं ॥ १८ ॥

भाषार्थः—'धर्म की तीन शाखाएँ हैं'—यज्ञ, अध्ययन, दान यह प्रथम शाखा है, तप दूसरी, ब्रह्मचर्य तीसरी ।' इस श्रुति से चार आश्रमों का परामर्श (निर्देश) मात्र है, विधि नहीं है ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं । क्योंकि यह श्रुति अचोदना अर्थात् विधिरहित है । अतः संन्यास निन्दित होने के कारण अनुष्ठान के योग्य नहीं । श्रुति संन्यास का निषेध ही करती है ॥ १८ ॥

अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—पारिव्रज्यमनुष्ठेयमिति बादरायणो मन्यते । कुतः ? 'त्रयो धर्मस्कन्धाः' (छा० २ । २३ । १) इति साम्यश्रुतेः ॥ १९ ॥

पदार्थः—अनुष्ठेयम् = संन्यास का अनुष्ठान करना चाहिये । बादरायणः =

ऐसा बादरायण आचार्य मानते हैं। साम्यश्रुतेः = श्रुति में समान रूप से निर्देश होने के कारण ॥ १९ ॥

भाषार्थः—'गृहस्थ के साथ अन्य तीनों आश्रमों के धर्मों का प्रतिपादन समानरूप से है' इस समताबोधक श्रुति के अनुसार संन्यास का अनुष्ठान करना चाहिये, ऐसा बादरायणाचार्य मानते हैं ॥ १९ ॥

विधिर्वा धारणवत् ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—संन्यासस्य परामर्शो विधिर्वेत्याह-विधिरेव संन्यासस्य धारणवत्। विधिस्तु धारणेऽपूर्वत्वादिति तद्वदिहापि विधिरेव ॥ २० ॥

पदार्थः—वा = अथवा। विधिः = यहाँ विधि है। धारणवत् = धारण की तरह ॥ २० ॥

भाषार्थः—प्रकरण में संन्यास का परामर्शमात्र है या विधि है, इस विषय में कहते हैं—संन्यास की विधि है। देवताओं की हवि में स्रुवा के ऊपर समिधा-का धारण अपूर्व होने से विधि है, तदनुसार यहाँ भी संन्यास की विधि है, परामर्शमात्र नहीं। अतः विद्या स्वतन्त्र है, क्रिया का अंग नहीं—यह सिद्ध हुआ ॥ २० ॥

स्तुतिमात्राधिकरणम् ॥ २१-२२ ॥

स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—उद्गीथादिकर्माङ्गानामुपादानात्स्तुतिमात्रमेवेति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो। उपादानात् = कर्माङ्गों के ग्रहण से। स्तुति-मात्रम् = उद्गीथादि-सम्बन्धी श्रुतियाँ स्तुतिमात्र हैं। इति न = ऐसा नहीं। अपूर्वत्वात् = अपूर्व बातों का कथन होने से विधिवाक्य हैं ॥ २१ ॥

भाषार्थः—'ॐकाररूप उद्गीथ सब रसों में उत्तम, परब्रह्म का प्रतीक, उपासना के योग्य है' (छा० १।१।३) इसमें संशय है कि यह श्रुति उद्-गीथ की स्तुतिमात्र है या उपासना के निमित्त विधि है। पूर्वपक्षी कहता है—स्तुतिमात्र है।' सिद्धान्ती कहता है—नहीं, उद्गीथ के उत्तम रस (आनन्द) आदि अपूर्व गुण हैं, वे स्तुतिमात्र नहीं हैं, उनका उपासना के लिये विधान है ॥ २१ ॥

भावशब्दाच्च ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—'उद्गीथमुपासीत' (छा० १ । १ । १) 'सामोपासीत' (छा० (२ । २ । १) इत्यादिविधिशब्दादपि उपासनविधानार्थाः श्रुतयो न स्तुत्यर्थाः ॥ २२ ॥

पदार्थः—भावशब्दात् च = विधिबोधक श्रुतियों से भी ॥ २२ ॥

भाषार्थः—'उद्गीथ की उपासना करे', 'साम की उपासना करे' इत्यादि विधिवाक्यों से भी उपासनाप्रतिपादक श्रुतियाँ केवल स्तुतिमात्र नहीं हो सकतीं । अतः विद्या कर्म का अङ्ग नहीं है ॥ २२ ॥

पारिप्लवाधिकरणम् ॥ २३-२४ ॥

पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—'अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये' (बृ० ४ । ५ । १) 'प्रतर्दनो ह वै' (कौ० ३ । १) 'जानश्रुतिर्ह' (छा० ४ । ४ । १) किमेताः श्रुतयः पारिप्लवार्था उत सन्निहितविद्याप्राप्त्यर्थाः ? तत्राह—सन्निहितविद्याप्राप्त्यर्था एव । कुतः ? पारिप्लवार्थे 'मनुर्वैवस्वतो राजा' इत्यादिविशेषणानां श्रवणात् ॥ २३ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो कि । पारिप्लवार्थाः = पारिप्लव प्रयोग के लिये है । (अश्वमेध यज्ञ में तीन दिन तक वैदिक आख्यान सुनाये जाते हैं, इसको पारिप्लविक प्रयोग कहते हैं) इति न = ऐसा नहीं । विशेषितत्वात् = विशेष होने से ॥ २३ ॥

भाषार्थः—'याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियाँ थीं', 'प्रतर्दन स्वर्ग को गया', 'जानश्रुति राजा बड़ा दानी था' इत्यादि श्रुतियाँ क्या पारिप्लव नामक याज्ञिक प्रयोगार्थ हैं या ज्ञान के लिये ? इसका उत्तर है कि ज्ञान-प्राप्ति के लिये हैं । क्योंकि जो श्रुतियाँ पारिप्लव के लिये हैं उनमें 'मनुर्वैवस्वतो राजा' इत्यादि विशेषणों का श्रवण है । यहाँ प्रकृत में इन विशेषणों का अभाव होने से स्पष्ट है कि ये सब उपनिषद् की आख्यायिकाएँ ज्ञान-प्राप्ति के लिये हैं ॥ २३ ॥

तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—तथा चोक्तयुक्त्या पारिप्लवार्थाभावे सति सन्निधिबलाद् विद्याशेषित्वं कथानां युक्तम् । कुतः ? एकवाक्यतोपबन्धात्-सन्निहिततत्तद्विद्यैक्यवाक्यतादर्शनात् ॥ २४ ॥

पदार्थः—तथा च = इस प्रकार। एकवाक्यता = अध्यात्मविद्या के साथ एकत्व का। उपबन्धात्=ज्ञान होने से ॥ २४ ॥

भाषार्थः—इस प्रकार उक्त युक्ति से उपर्युक्त कथाएँ पारिप्लवार्थ नहीं हैं। अतः समीप ही प्रतिपादित उपासनाओं को समझाने के लिये उनको मानना चाहिये। क्योंकि उन सब कथाओं की अध्यात्मविद्या के साथ एकता का ज्ञान होता है ॥ २४ ॥

अग्नीन्धनाद्यधिकरणम् ॥ २५ ॥

अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः—अत एव ब्रह्मविद्यायाः स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थहेतुत्वादेव तत्सिद्धयर्थमग्नीन्धनाद्याश्रमकर्मणां नास्त्यपेक्षा ॥ २५ ॥

पदार्थः—अत एव = इसीलिये। अग्नीन्धनाद्यनपेक्षा च = अग्नि को प्रदीप्त करना आदि आश्रम-कर्मों की भी अपेक्षा नहीं है ॥ २५ ॥

भाषार्थः—विद्या मोक्ष का स्वतन्त्र कारण है इसीलिये अग्नि प्रज्वलित करना आदि आश्रम-कर्मों की अपेक्षा नहीं है ॥ २५ ॥

सर्वापेक्षाधिकरणम् ॥ २६-२७ ॥

सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ॥ २६ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मविद्याया उत्पत्तौ सर्वाश्रमकर्मणामपेक्षास्ति। कुतः ? यज्ञादिश्रुतेरन्तःकरणमालिन्यनिवृत्त्यादिपरम्परया ज्ञानस्य यज्ञादिजन्यत्वेन तदपेक्षाया आवश्यकत्वादश्ववदिति शेषः ॥ २६ ॥

पदार्थः—च = और। सर्वापेक्षा=ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति के लिये सब वर्णाश्रम-कर्मों की अपेक्षा है। यज्ञादिश्रुतेः = यज्ञादि कर्म साधनरूप से श्रुति में कहे गये हैं। अश्ववत् = घोड़े की भाँति ॥ २६ ॥

भाषार्थः—यज्ञ-तप आदि शुभकर्म अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा मोक्ष का साधन हो सकता है। जैसे घोड़ा रथ में जोड़ा जाता है, हल में नहीं; ऐसे ही मोक्ष ज्ञान से होता है, कर्म से मोक्ष नहीं होता ॥ २६ ॥

शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—यदि कश्चिद् यज्ञादीनां ज्ञानसाधनत्वे विध्यभावाद् ब्रह्मविद्यार्थिनानुष्ठेयत्वं मन्येत तथापि शमदमाद्युपेतः स्यात्। कुतः ? तदङ्गतया
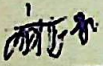
विद्याहेतुत्वेन तेषां शमादीनां विधानाद् विहितानाञ्चैतेषामवश्या-नुष्ठेयत्वात् ॥ २७ ॥

पदार्थः—तु = परन्तु । तथापि = यज्ञादि कर्म आवश्यक न होने पर भी। शमदमाद्युपेतः = शम-दम आदि साधनचतुष्टय-सम्पन्न । स्यात् = होना चाहिये। तद्विधेः = उनका विधान होने से तथा । तदङ्गतया = ज्ञान के अन्तरङ्ग साधन के रूप में । तेषाम् = उन शम-दम आदि साधनों के । अवश्यानुष्ठेयत्वात् = अवश्य अनुष्ठान करने योग्य होने से ॥ २७ ॥

भाषार्थः—यदि कोई ब्रह्मजिज्ञासु यज्ञादि कर्मों का ज्ञान के साधन न होने से अनुष्ठान करना आवश्यक न समझे तो भी उसे शम-दमादिसाधन-चतुष्टय सम्पन्न अवश्य होना चाहिये । क्योंकि इनका विधान है और ये ज्ञान के अङ्ग होने से अवश्य अनुष्ठान करने योग्य हैं ॥ २७ ॥

सर्वान्नानुमत्यधिकरणम् ॥ २८–३१ ॥

सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—प्राणात्यय एव सर्वान्नानुमतिश्च दर्शयति ॥ २८ ॥

पदार्थः—सर्वान्नानुमतिः=सर्वत्र सब अन्नों को खाने की अनुमति । च=तो। प्राणात्यये = बिना अन्न के प्राण-संकट उपस्थित होने पर ही है । तद्-दर्शनात् = श्रुति में ऐसी अनुज्ञा दिखायी देती है ॥ २८ ॥

भाषार्थः—आपत्तिकाल में अर्थात् अन्न के बिना जब प्राण-संकट उपस्थित हो जाय, तब ही श्रुति ने सबके घर का अन्न खाने की अनुमति कही है; पर यह विधि नहीं है । छान्दोग्य श्रुति में आया है कि 'महादुर्भिक्ष (अकाल) के समय प्राणान्त की सम्भावना होने पर चाक्रायण ऋषि ने शूद्र के घर में, प्रके जूठे उड़द खा लिये, पर पानी नहीं पिया । उड़द न खाने से तो प्राण निकल जाते, पानी तो अन्यत्र भी मिल सकता था ॥ २८ ॥

अबाधाच्च ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एवं भक्ष्याभक्ष्यशास्त्रस्याबाधाच्च ॥ २९ ॥

पदार्थः—अबाधात् = शास्त्राज्ञा का बाध (खण्डन) । च = भी नहीं होता ॥ २९ ॥

भाषार्थः—इससे भक्ष्याभक्ष्य का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रों का बाध (खण्डन) भी नहीं होता। अतः आपत्काल के अतिरिक्त समय में आचार की रक्षा होनी ही चाहिये ॥ २९ ॥

अपि च स्मर्यते ॥ ३० ॥

सूत्रार्थः—अपि चापत्काले विदुषोऽविदुषश्च सर्वान्नभक्षणं स्मर्यते—

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ३० ॥

पदार्थः—च = और। स्मर्यते अपि = स्मृति भी कहती है ॥ ३० ॥

भाषार्थः—स्मृतियों में भी आपत्तिकाल में सर्वान्नभक्षण का कथन है। 'प्राणान्त-समय उपस्थित होने पर ही (मूर्ख हो या विद्वान्) जहाँ कहीं भी अन्न मिले, खा ले तो वह कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।' इत्यादि स्मृतियाँ भी आपत्काल के सिवा अन्य काल में सर्वान्नभक्षण की आज्ञा नहीं देतीं ॥ ३० ॥

शब्दश्चातोऽकामकारे ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः-अतोऽस्मादभक्ष्यभक्षणप्रतिषेधकः शब्दो ब्राह्मणः सुरां न पिबेदित्यादिरूपोऽकामकारे स्वेच्छाकृत प्रवृत्तिनिरास एव श्रूयते । स्वेच्छाकृतमद्यपाने तु प्राणान्तप्रायश्चित्तमिति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—अतः च = इसलिये ही। अकामकारे = स्वेच्छा से सुरापान तथा अभक्ष्यभक्षण की निषेधक। शब्दः = श्रुति इसमें प्रमाण है (अतः प्राणसंकट के बिना सर्वान्नभक्षण न करे) ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—अतः अभक्ष्याभक्ष्य का निषेधक श्रुति-वाक्य 'ब्राह्मण को सुरा (मदिरा) न पीना चाहिये' स्वेच्छापूर्वक मद्यपान के निषेध के लिये है। स्वेच्छापूर्वक मदिरापान करनेवाले ब्राह्मण के लिये मृत्यु ही प्रायश्चित्त है ॥ ३१ ॥

आश्रमकर्माधिकरणम् ॥ ३२-३५ ॥

विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—मुमुक्षुणाप्याश्रमकर्मानुष्ठेयं विहितत्वाद् यावज्जीवेदित्यादिना ॥ ३२ ॥

पदार्थः—च = तथा। आश्रमकर्म अपि = मुमुक्षु को आश्रमधर्मों का भी पालन करना चाहिये। विहितत्वात् = विधान होने से ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—'कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करे' इस श्रुति से मुमुक्षु के लिये आश्रमों के कर्म का भी विधान है ॥ ३२ ॥

सहकारित्वेन च ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—विद्यासहकारित्वेनापि सत्त्वशुद्ध्यादिद्वारा साधनत्वेनापि नित्यकर्माण्यनुष्ठेयानि ॥ ३३ ॥

पदार्थः—सहकारित्वेन = ज्ञान के सहायक होने से। च = भी वर्णाश्रमधर्मों का पालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—अन्तःकरणशुद्धि द्वारा ज्ञान के सहायक तथा साधन होने से भी आश्रमधर्मों का पालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

सर्वथापि त एवोभयलिङ्गात् ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—श्रुतिस्मृतिलिङ्गादपि सर्वथा नित्यत्वेन ज्ञानार्थत्वेन चानुष्ठेया यज्ञादयो धर्माः। नात्र कर्मभेदः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—उभयलिङ्गात् अपि = श्रुति-स्मृति दोनों के प्रमाण होने से भी। सर्वथा = सदा। ते एव = वे आश्रमधर्म पालने ही चाहिये ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—श्रुति और स्मृति दोनों से प्रमाणित होने से ज्ञान के सहायक अग्निहोत्रादि आश्रमधर्मों का नित्य पालन करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अनभिभवं च दर्शयति ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मचर्यादिसाधनसम्पन्नस्य रागादिभिरनभिभवं श्रुतिर्दर्शयति ॥ ३५ ॥

पदार्थः—च = तथा। अनभिभवम् = साधनसम्पन्न को राग-द्वेषादि से अपराजित। दर्शयति = श्रुति दिखाती है ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मचर्यादि साधनसम्पन्न जिज्ञासु को राग-द्वेष आदि दोष पराजित नहीं कर सकते। ऐसा श्रुति दिखाती है ॥ ३५ ॥

विधुराधिकरणम् ।। ३६–३९ ।।

अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः ।। ३६ ।।

सूत्रार्थः—ब्रह्मविद्यायां विधुरादीनामधिकारोऽस्ति न वा ? तत्राह–अन्तरालवर्तिनामाश्रमादिहीनानां पुरुषाणां ब्रह्मविद्यायामधिकारोऽस्ति रैक्वादीनां ब्रह्मवित्त्वदर्शनात् ।। ३६ ।।

पदार्थः—च = और । अन्तरा = आश्रमरहितों का । अपि = भी । तु=तो । तद्दृष्टेः = ब्रह्मविद्या में अधिकार देखा गया है ।। ३६ ।।

भाषार्थः—अनाश्रमी मध्यवर्ती पुरुषों का भी ब्रह्मविद्या में अधिकार है । क्योंकि रैक्व, वाचक्नवी आदि अनाश्रमी पुरुषों का भी ब्रह्मविद्या में अधिकार देखा गया है ।। ३६ ।।

अपि च स्मर्यते ।। ३७ ।।

सूत्रार्थः—संवर्तकादीनामाश्रमधर्मान् विहाय नग्नचर्यादिकं स्मर्यते ।। ३७ ।।

पदार्थः—च=तथा । स्मर्यते अपि=स्मृति भी ऐसा ही कहती है ।। ३७ ।।

भाषार्थः--और स्मृति में भी संवर्तक आदि अनाश्रमियों का नग्न रहकर महायोगी होना सुना गया है ।। ३७ ।।

विशेषानुग्रहश्च ।। ३८ ।।

सूत्रार्थः—अनाश्रमिणोऽपि जपोपवासदेवताराधनादिभिर्ज्ञानहेतुभिर्धर्मंविशेषैविद्याया अनुग्रहः सम्भवति ।। ३८ ।।

पदार्थः—विशेषानुग्रहः च=अनाश्रमियों को भी विशेष प्रकार के धर्म से विद्या का अनुग्रह हो सकता है ।। ३८ ।।

भाषार्थः—अनाश्रमी रैक्व आदि पर भी जप, ध्यान, उपवास, देवताओं की आराधना आदि ज्ञानमूलक विशेषकर्मों द्वारा विद्या का अनुग्रह हुआ और होता है ।। ३८ ।।

अतस्त्वितरज्ज्यायो लिङ्गाच्च ।। ३९ ।।

सूत्रार्थः--अतोऽनाश्रमित्वादितरदाश्रमित्वं ज्यायःश्रुतिस्मृतिलिङ्गात् ।। ३९ ।।

पदार्थ:—तु = परन्तु। अत: = उपर्युक्त कारणों से। इतरत् = आश्रमी। ज्याय:=श्रेष्ठ है। लिङ्गात् च=यह श्रुति-स्मृतियों के प्रमाण से भी सिद्ध है ॥ ३९ ॥

भाषार्थ:—अनाश्रमी पुरुषों की अपेक्षा दूसरे आश्रमी वर्णाश्रमधर्म का पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं। श्रुति-स्मृति इसमें प्रमाण हैं ॥ ३९ ॥

तद्भूताधिकरणम् ॥ ४० ॥

तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमातद्रूपाभावेभ्यः ॥ ४० ॥

सूत्रार्थ:—तद्भूतस्य तद्रूपस्य प्राप्तोत्तमाश्रमस्यातद्भाव उत्तमाश्रमाच्च्युतिर्न कथमपि सम्भवतीति जैमिनेरपि सम्मतम्। अपिशब्देन स्वस्य सम्मतमेवेति दर्शितं नियमातद्रूपाभावेभ्य: ॥ ४० ॥

पदार्थ:—तद्भूतस्य=उत्तम आश्रमवाले का। तु=तो। अतद्भाव: = आश्रम से च्युति। न=नहीं होती। नियमातद्रूपाभावेभ्य: = क्योंकि वैसा न तो नियम है न श्रुति-वचन है तथा न शिष्टाचार ही है। जैमिनेरपि = जैमिनि भी ऐसा ही मानते हैं ॥ ४० ॥

भाषार्थ:—उत्तम आश्रमवाले का फिर उस आश्रम का त्याग करना शास्त्र-सम्मत नहीं है। जैमिनि तथा बादरायण दोनों आचार्य इसमें सहमत हैं। अपिशब्द से यह हमारे (व्यास के) भी सम्मत है ऐसा संकेत है। अत: उत्तम आश्रमवाले के लिये न तो आश्रम बदलने का नियम है न श्रुति की अनुमति है और न यह शिष्टाचरण है ॥ ४० ॥

अधिकाराधिकरणम ॥ ४१-४२ ॥

न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात् ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थ:—अधिकारलक्षणे सिद्धं प्रायश्चित्तमाधिकारिकम्। तदपि नैष्ठिकावकीर्णिनो नैवास्ति। कुत: ? पतनानुमानात्। अनिवर्त्यं पातित्यश्रुत्यनुमापकश्रवणं तस्य प्रायश्चित्तायोगात् ॥ ४१ ॥

पदार्थ:—च = इसके अतिरिक्त। आधिकारिकम् = अधिकार-लक्षण में कहा हुआ प्रायश्चित्त। अपि = भी। न = नहीं है। पतनानुमानात् = क्योंकि

ब्रह्मचर्य से पतन का प्रायश्चित्त नहीं है ऐसा अनुमान होने से। तदयोगात्= और नैष्ठिक का प्रायश्चित्त से सम्बन्ध न होने से ॥ ४१ ॥

भाषार्थः-नैष्ठिक ब्रह्मचारी (संन्यासी) प्रमाद से स्त्रीसङ्ग करे या संन्यास छोड़कर गृहस्थी हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त नहीं है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से पतन के प्रायश्चित्त का अनुमान नहीं है और नैष्ठिक ब्रह्मचारी (संन्यासी) का प्रायश्चित्त से सम्बन्ध नहीं है। यह पूर्वपक्ष है ॥ ४१ ॥

उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत्तदुक्तम् ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—नेदं महापातकं यन्नैष्ठिकस्य गुरुदारादिभ्योऽन्यत्रावकीर्णम्, येनोक्तप्रायश्चित्ताभावः स्यात्। एके आचार्या उपपदपूर्वकमेवेदं पातकं मन्यन्ते। तस्मादुक्तप्रायश्चित्तस्य भावमिच्छन्ति अशनवत्। यथा मधुमांसाशिनो ब्रह्मचारिणो व्रतलोपः पुनः संस्कारश्चेतिवत् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—एके=कोई आचार्य। अपि=भी। उपपूर्वम्='उप' पद है पूर्व में जिसके, अर्थात् उपपातक मानते हैं। तु=इसलिये। अशनवत्= अभक्ष्यभक्षण की भाँति। भावम्=प्रायश्चित्त का होना मानते हैं। तदुक्तम्= ऐसा शास्त्र में कथन है ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—गुरुपत्नी आदि अगम्य स्त्रियों को छोड़कर अन्य स्त्रियों के साथ व्यभिचार करना महापातक नहीं है। अतः नैष्ठिक ब्रह्मचारी शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त का अधिकारी है। कोई आचार्य भी ऐसे पाप को महापातक नहीं मानते, उपपातक मानते हैं। जैसे मधु-मांस खानेवाले ब्रह्मचारी का प्रायश्चित्त हो सकता है, वैसे ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी का भी प्रायश्चित्त हो सकता है। ऐसा ही शास्त्र का भी कथन है—यह पूर्वपक्ष है ॥ ४२ ॥

बहिरधिकरणम् ॥ ४३ ॥

बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ॥ ४३ ॥

सूत्रार्थः—ते कृतप्रायश्चित्ता ब्रह्मचारिणो ग्राह्यास्त्याज्या वा? तत्राह— ऊर्ध्वरेतसां स्वाश्रमात्प्रच्युतिर्महापातकमुपपातकं वास्तूभयथापि ते कृत-प्रायश्चित्ता अपि शिष्टैर्बहिष्कर्तव्याः स्मृतेराचाराच्च ॥ ४३ ॥

पदार्थः—तु=परन्तु। उभयथा अपि=दोनों प्रकार से भी। बहिः=उनका बहिष्कार करना चाहिये। स्मृतेः=स्मृति से। च=तथा। आचारात्= व्यावहारिक शिष्टाचार से भी ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—वे ऊर्ध्वरेता संन्यासी जो आश्रम से च्युत हो गये हैं महापातको हों या उपपातकी दोनों का शिष्टपुरुषों को बहिष्कार करना चाहिये। स्मृति से और शिष्टाचार से ऐसा विदित होता है ॥ ४३ ॥

स्वाम्यधिकरणम् ॥ ४४–४६ ॥

स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ॥ ४४ ॥

सूत्रार्थः—स्वामिनो यजमानस्यैवाङ्गाश्रितोपास्तिषु कर्तृत्वमित्यात्रेयो मन्यते फलश्रुतेरिति पूर्वपक्षः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—स्वामिनः=यजमान ही यज्ञ के अङ्गभूत कर्मों का कर्ता है। फलश्रुतेः=श्रुति कहती है कि यज्ञकर्म का फल यजमान को मिलता है। इति आत्रेयः=ऐसा आत्रेय आचार्य मानते हैं ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—यज्ञ के अङ्गभूत कर्मों का कर्ता यजमान है या ऋत्विज? इसमें पूर्वपक्षी आत्रेय आचार्य कहते हैं कि यज्ञ के अङ्गभूत कर्म और उपासना का कर्ता यजमान है, ऋत्विज नहीं; क्योंकि उसका फल यजमान को मिलता है ॥ ४४ ॥

आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थः—साङ्गाय कर्मणे ऋत्विक् परिक्रीयते-इत्यौडुलोमिर्मन्यते ॥ ४५ ॥

पदार्थः—आर्त्विज्यम्=ऋत्विज के कर्म हैं। इति=ऐसा। औडुलोमिः= औडुलोमि आचार्य मानते हैं। हि=क्योंकि। तस्मै=उस कर्म के लिये। परिक्रीयते=वह खरीद लिया जाता है ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—औडुलोमि आचार्य कहते हैं कि यज्ञ के अङ्ग कर्म और उपासना ऋत्विज के कर्म हैं। क्योंकि समस्त साङ्गोपाङ्ग यज्ञकर्म करने के लिये यजमान वरण करके दक्षिणा द्वारा ऋत्विज को खरीद लेता है और ऋत्विज (पुरोहित) यज्ञ के अन्त में मन्त्र द्वारा कर्म का फलरूप आशीर्वाद यजमान को देता है ॥ ४५ ॥

श्रुतेश्च ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः—'यां वै काञ्चन' (छा० १।७।८) इति श्रुतिः, ऋत्विक्-कर्तृकस्योपासनस्य फलं यजमानगामीति श्रवणाद् यज्ञाङ्गकर्मकर्ता-ऋत्विगेव ॥ ४६ ॥

पदार्थः—च = और । श्रुतेः = श्रुति में कथन होने से ।। ४६ ।।

भाषार्थः—ऋत्विज आशीर्वाद द्वारा यज्ञकर्म का सारा फल यजमान को देता है ऐसा श्रुति से सिद्ध है । अतः यज्ञाङ्ग कर्मों का कर्ता ऋत्विज है ।। ४६ ।।

सहकार्यन्तरविध्यधिकरणम् ।। ४७-४९ ।।

सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ।। ४७ ।।

सूत्रार्थः—श्रवणाद्यपेक्षया सहकार्यन्तरस्य मौनस्य निदिध्यासनाख्यस्य विधेः पारिव्राज्ये प्रयोगात्कथं मौनं निदिध्यासनमित्याह—श्रवणाद्यपेक्षया तृतीयं निदिध्यासनम् । कस्यायं मौनविधिः ? तद्वतः परोक्षज्ञानवतः । ननु सूक्ष्मवस्तुसाक्षात्कारे न विधित्वमत आह—पक्षेणेति । यस्मिन् पक्षे भेददर्शन-प्राबल्यं तत्र मौनविधिः ।। ४७ ।।

पदार्थः—तद्वतः = परोक्ष ज्ञानी के लिये । तृतीयम् = निदिध्यासनरूप मौन । सहकार्यन्तरविधिः = मोक्ष में अन्य सहकारी विधि है । पक्षेण = अभेद ज्ञान के अभाव में । विध्यादिवत् = विधि आदि के समान ।। ४७ ।।

भाषार्थः—श्रवण, मनन, निदिध्यासन की अपेक्षा ज्ञान के सहकारी निदिध्यासनरूप मौन का विधान वानप्रस्थ के लिये प्रयुक्त हुआ है। निदिध्यासन को मौन क्यों कहा गया है ? इसका उत्तर है कि यद्यपि वानप्रस्थ में 'मौन' शब्द प्रयुक्त हुआ है, तथापि श्रवण आदि की अपेक्षा तृतीय निदिध्यासन ही यहाँ प्रकृत में 'मौन' शब्द से विवक्षित है । यह मौनविधि परोक्ष ज्ञानी के लिये है । यदि शङ्का हो कि सूक्ष्म वस्तु के साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी को निदिध्यासनरूप मौन तो स्वतः सिद्ध है, इसमें विधि की क्या आवश्यकता है तो इसका समाधान है कि भेददर्शी परोक्ष ज्ञानी के पक्ष में ही मौन की विधि है । जैसे दर्श-पूर्णमासविधि में अग्न्याधानादि अङ्ग का विधान है, वैसे ही भेददर्शी परोक्ष ज्ञानी के लिये मौन का विधान है ।। ४७ ।।

कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ।। ४८ ।।

सूत्रार्थः—संन्यास एवानुष्ठेयश्चेत्कथं छान्दोग्ये 'अभिसमावृत्य कुटुम्बे' (छा० ८ । १५ । १) इति गृहिणोपसंहारः कृतः ? तत्राह—कृत्स्नभावात्, गृहिणो यज्ञादिकर्मबाहुल्यात् ।। ४८ ।।

पदार्थः—कृत्स्नभावात् = सब कर्मों की दृष्टि से । तु=ही । गृहिणोपसंहारः= गृहस्थाश्रम में उपसंहार किया गया है ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—यदि संन्यास का अनुष्ठान ही आवश्यक है तो छान्दोग्य उपनिषद् में 'समावर्तन के अनन्तर गृहस्थाश्रम में रहता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, पुनः संसार में नहीं आता' इस प्रकार गृहस्थाश्रम में उपसंहार क्यों किया ? इसका उत्तर है कि गृहस्थाश्रम में सब आश्रमों के अहिंसा, इन्द्रियदमन आदि धर्मों का भाव आ जाता है, इसलिये किया ॥ ४८ ॥

मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ॥ ४९ ॥

सूत्रार्थः—मौनवत्-मौनस्य गार्हस्थ्यस्य च यथा श्रुतिमत्त्वम्, तद्वद् ब्रह्मचर्य-वानप्रस्थयोरप्युपदेशात्--श्रुत्युपदेशाच्छ्रुतिमत्त्वमिति ॥ ४९ ॥

पदार्थः—मौनवत्=मौन की तरह । इतरेषाम् अपि=ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ के भी । श्रुत्युपदेशात्=श्रुतिसम्मत होने से ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—जैसे मौन और गृहस्थ श्रुतिसम्मत हैं, वैसे ही ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ ये दोनों श्रुतिसंम्मत हैं ॥ ४९ ॥

अनाविष्काराधिकरणम् ॥ ५० ॥

अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ॥ ५० ॥

सूत्रार्थः—निदिध्यासनादिभिरात्मानं परार्थमविज्ञापयन् गर्वादिरहितः स्यातुमिच्छेत । कुतः ? 'अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारः' 'ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्' (बृ० ३ । ५ । १) इत्याद्यन्वयात् ॥ ५० ॥

पदार्थः—अनाविष्कुर्वन् = अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट न करता हुआ रहे । अन्वयात् = क्योंकि ऐसा अर्थ करने से वाक्य की संगति बैठती है ॥ ५० ॥

भाषार्थः—निदिध्यासनादि साधन-सम्पन्न होकर अपने को प्रकट न करे, गर्वादि से रहित रहे ।—'विद्वान् होने पर भी 'बालक की तरह रहे' 'अपने ज्ञान तथा आचरण को गुप्त रक्खे' यहाँ 'ज्ञानी बालकवत् रहे' इस श्रुति का सम्बन्ध केवल निरभिमान आदि भावों को दिखानामात्र है, न कि बालकवत् विवेकहीन तथा भ्रष्टाचारी होना ॥ ५० ॥

ऐहिकाधिकरणम् ॥ ५१ ॥

ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ॥ ५१ ॥

सूत्रार्थः—विद्याविरुद्धफलकं फलोन्मुखं कर्म प्रस्तुतं तेन प्रतिबन्धः प्रस्तुत-प्रतिबन्धः। न प्रस्तुतबन्धोऽप्रस्तुतप्रतिबन्धस्तस्मिन् सति ऐहिकां विद्योत्पत्तिं श्रुतिर्दर्शयति ॥ ५१ ॥

पदार्थः—अप्रस्तुतप्रतिबन्धे = प्रारम्भ किये हुए साधन में कोई प्रतिबन्ध न होने पर तो। ऐहिकम्=इसी जन्म में। अपि=भी मोक्ष सम्भव है। तद्दर्शनात्= श्रुति ऐसा कहती है ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—प्रारम्भ किये हुए साधन में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होने पर इसी जन्म में मोक्ष निश्चित है; जैसे शुक, वामदेव आदि का। प्रतिबन्ध होने पर मोक्ष असम्भव है; जैसे भरतजी का प्रारब्धकर्म प्रतिबन्ध होने से तीन जन्म में मोक्ष हुआ। जैसा कि श्रुति कहती है—'किसीको ब्रह्मविद्या सुनने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता और बहुतों को सुनकर भी तत्त्वज्ञान समझ में ही नहीं आता' (कठ० २। ७)। अतः मोक्ष का नियम नहीं है ॥ ५१ ॥

मुक्तिफलानियमाधिकरणम् ॥ ५२ ॥

एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृतेः ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थः—एवं मुक्तावुपचयापचयत्वनियमोऽस्ति न वेत्यत आह—एवमिति मुक्तिफलस्यानियमो निर्विशेषत्वमेव। कुतः ? मुक्तावस्थायामेव निर्विशेष-ब्रह्मरूपत्वेनावधारणात् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—एवम् = इस प्रकार। मुक्तिफलानियमः = मुक्तिफल के विषय में कोई नियम नहीं है। तदवस्थावधृतेः = ब्रह्माकाररूप से स्थिति ही मुक्ति है, उस अवस्था का श्रुति ने निश्चय किया है; इस अन्तिम पद का दो बार कथन अध्याय-समाप्ति का सूचक है ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—इस प्रकार मोक्षरूप फल के लिये कोई नियम नहीं है; क्योंकि ब्रह्माकाररूप से स्थिति ही मोक्ष है और उस मोक्ष की अवस्था का श्रुति ने निश्चय किया है। यथा—'अशब्दमस्पर्शम्' (कठ०), 'अस्थूलमनणु' (बृ०

३ । ८ । ८), 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्' (मु० २ । २ । ११) इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म को मन-वाणी से अगोचर कहा है। मुक्त पुरुष भी ब्रह्म ही है। वह ब्रह्मरूप मोक्ष एक ही प्रकार का है। जैसे उत्तम और अधम कर्मं का फल उत्तम और अधम होता है, वैसा नियम ज्ञानी के लिये नहीं है। ज्ञान एक है और ज्ञान का फल मोक्ष भी एक ही प्रकार का है ॥ ५२ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने तृतीयाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

समाप्तोऽयं साधनाख्यस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ वेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये

प्रथमः पादः

(अस्मिन् प्रथमपादे जीवन्मुक्तिनिरूपणम्)

आवृत्त्यधिकरणम् ॥ १-२ ॥

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—श्रवणादीनामसकृदावृत्तिर्विधेया। 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' (बृ० ४ । ५ । ६) इति श्रुत्युपदेशात् ॥ १ ॥

पदार्थः—असकृत्=बार-बार। आवृत्तिः=श्रवण आदि की आवृत्ति करनी चाहिये। उपदेशात्=श्रुति की आज्ञा होने से ॥ १ ॥

भाषार्थः—वेदान्त का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन बार-बार करना चाहिये; क्योंकि 'अरे मैत्रेयि! अध्यात्म-ज्ञान के श्रवण, मनन और निदिध्यासन की बार-बार आवृत्ति करनी चाहिये' ऐसा श्रुति का उपदेश है ॥ १ ॥

लिङ्गाच्च ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—उद्गीथादिलिङ्गादपि श्रवणादीनामावृत्तिर्विधेया ॥ २ ॥

पदार्थः—लिङ्गात्=उद्गीथादि चिह्न से। च=भी ॥ २ ॥

भाषार्थः—'उद्गीथ आदित्य है', 'हे पुत्र! तू सूर्यरूप उद्गीथ की उपासना कर, इससे तेरे एक पुत्र उत्पन्न होगा' (छा० १ । ५ । १) इस प्रकार आरम्भ करके फिर कहा—'पुत्र! बहुत पुत्रों की इच्छा से तू सूर्य-किरणों की उपासना कर' (छा० १ । ५ । २) यहाँ बहुत किरणों से बहुत बार श्रवणादि करने का संकेत है ॥ २ ॥

आत्मत्वोपासनाधिकरणम् ॥ ३ ॥

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—जाबाला आत्मत्वेनेश्वरमभ्युपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ ३ ॥

पदार्थः—आत्मा=जाबाल शाखावाले 'ब्रह्म आत्मा है'। इति=इस प्रकार। तु=ही। उपगच्छन्ति=मानते हैं। च=और। ग्राहयन्ति=ऐसी ही अभेद-उपासना करवाते हैं॥ ३॥

भाषार्थः—जाबाल शाखावाले ब्रह्म को आत्मा मानकर अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसी अभेद-उपासना करते हैं तथा औरों से भी 'तू ब्रह्म है' ऐसी अभेद-उपासना करवाते हैं॥ ३॥

प्रतीकाधिकरणम्॥ ४॥

न प्रतीके न हि सः॥ ४॥

सूत्रार्थः—न प्रतीके मनआदौ आत्मबुद्धिः कार्या। न हि स उपासको य आत्मत्वेन प्रतीकमनुभवति॥ ४॥

पदार्थः—प्रतीके=प्रतीकों में। न=आत्मबुद्धि नहीं की जाती। हि= क्योंकि। सः=वह। न=आत्मा नहीं है॥ ४॥

भाषार्थः—मन, प्राण आदि प्रतीकों को आत्मा नहीं समझना चाहिये, किन्तु इनमें ब्रह्मभावना करनी चाहिये। जो प्रतीक में आत्मभाव करता है, वह ब्रह्मोपासक नहीं है, किन्तु जडप्रकृति का उपासक है, जो कि वह अपरिच्छिन्न और व्यापक ब्रह्म को परिच्छिन्न और एकदेशीय मूर्तिमात्र समझता है॥ ४॥

ब्रह्मदृष्ट्यधिकरणम्॥ ५॥

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्॥ ५॥

सूत्रार्थः—मनआदौ ब्रह्मदृष्टिः कार्या निकृष्टे उत्कृष्टदृष्टिदर्शनात्। यथा लोके दासे राजदृष्टिः क्रियते न तु राजनि दासदृष्टिः॥ ५॥

पदार्थः—ब्रह्मदृष्टिः=ब्रह्मभावना कर्तव्य है। उत्कर्षात्=ऐसा करने से उत्कर्ष होता है॥ ५॥

भाषार्थः—मन आदि में ब्रह्मभावना करनी चाहिये। निकृष्ट में उत्कृष्ट की भावना शुभ है। उत्कृष्ट में निकृष्ट की भावना अशुभ है। लोक में भी दास में 'राजा की भावना की जाती है। जैसे 'यह दास तो राजा-जैसा दीखता है' यह उत्कृष्ट भावना है। और 'यह राजा तो दासवत् दीखता है' यह निकृष्ट दृष्टि है। अतएव मन, प्राण आदि प्रतीकों में ब्रह्मभावना करनी चाहिये, न

कि सर्वव्यापक चैतन्य ब्रह्म को एकदेशीय, परिच्छिन्न, जडमूर्तिमात्र समझना। क्योंकि प्रतीकों में ब्रह्मभावना करने से ही उन्नति होती है ॥ ५ ॥

आदित्यादिमत्यधिकरणम् ॥ ६ ॥

आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—अङ्गे-कर्माङ्गेषूद्गीथादिषु आदित्यादिमतिः कर्तव्या। कुतः? उपपत्तेः, 'स एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत' (छा० १।३।१) इति कर्मसमृद्धिरूपफलोपपत्तेः ॥ ६ ॥

पदार्थः—च = और। अङ्गे = कर्माङ्ग उद्गीथादि में। आदित्यादिमतयः = आदित्यादि की भावना करनी चाहिये। उपपत्तेः = क्योंकि ऐसा करने से कर्म की समृद्धिरूप फलकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—'वह जो सूर्य तपता है, उसकी उद्गीथरूप से उपासना करनी चाहिये' यहाँ संशय है कि सूर्य में उद्गीथ की भावना करनी चाहिये या उद्गीथ में सूर्य की? इसका उत्तर है कि 'उद्गीथ में सूर्य की भावना करनी चाहिये। इससे कर्म की समृद्धिरूप फल की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

आसीनाधिकरणम् ॥ ७-१० ॥

आसीनः सम्भवात् ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—आसीन एवोपासनानि कुर्यात् ॥ ७ ॥

पदार्थः—आसीनः सम्भवात् = उपासक बैठा हुआ ही उपासना करता है, क्योंकि उपासना बैठे हुए ही ठीक सम्भव है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—उठते, बैठते या चलते हुए चित्त विक्षिप्त हो जाता है, अतः एक आसन से बैठकर ही उपासना करनी चाहिये ॥ ७ ॥

ध्यानाच्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—'ध्यै चिन्तायाम्' इत्येवमुपासनस्य ध्यानरूपत्वाद् आसीनेषु बकादिषु एकविषयदृष्टिषु ध्यानशब्दप्रयोगादासीन एवोपासीतेत्यर्थः ॥ ८ ॥

पदार्थः—ध्यानात् = उपासना ध्यानरूप होने से। च = भी ॥ ८ ॥

भाषार्थः—उपासना ध्यानरूप है। इसमें दृष्टान्त बगुले का है। एक विषय में तदाकार होना ही ध्यान है। ध्यान का यह लक्षण बगुले में घटता

है। अतः 'बगुला ध्यान करता है' ऐसा प्रयोग है। ऐसा ध्यान एक आसन से बैठकर ही हो सकता है ॥ ८ ॥

अचलत्वञ्चापेक्ष्य ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—'ध्यायतीव पृथिवी' (छा० ७ । ६ । १) इत्यत्र श्रुतौ अचलत्वमपेक्ष्य ध्यानोपचारो दृष्टः । तस्मादपि लिङ्गादासीन एवोपासीत ॥ ६ ॥

पदार्थः—अचलत्वम् = ध्यान में अचलता को। च = ही। अपेक्ष्य = अपेक्षा करके आसन की अपेक्षा है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—'पृथिवी ध्यान-सा कर रही है' इस श्रुति-वचन के अनुसार ऐसा पृथ्वी की तरह अचल होकर ध्यान करना एक आसन से बैठकर ही सम्भव है ॥ ६ ॥

स्मरन्ति च ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—'शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।' (गीता ६ । ११) इति गीतास्मृत्यापि स्मर्यते ॥ १० ॥

पदार्थः—स्मरन्ति च = गीतास्मृति से भी यही सम्मत है ॥ १० ॥

भाषार्थः—'पवित्र स्थान में अपना आसन रखकर उसपर बैठकर ध्यान करे' इस प्रकार गीतास्मृति भी यही बात कहती है ॥ १० ॥

एकाग्रताधिकरणम् ॥ ११ ॥

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—यस्मिन् देशे चित्तस्यैकाग्रता स्यात् तत्राविशेषात् ॥ ११ ॥

पदार्थः—यत्र = जहाँ। एकाग्रता = चित्त एकाग्र हो। तत्र = वहाँ ध्यान करे। अविशेषात् = श्रुति में विशेष प्रकार का नियम न होने से ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जिस स्थान में चित्त की एकाग्रता हो, वहीं ध्यान करना चाहिये। ध्यान के लिये कोई विशेष स्थान या काल का नियम नहीं है ॥ ११ ॥

आप्रायणाधिकरणम् ॥ १२ ॥

आ प्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—देहपातपर्यन्तमुपासीत, यतस्तत्र मृत्युसमयेऽपि प्रत्ययानुवर्तनं दृष्टं श्रुतौ। तथाहि–'स यावत्क्रतुः' इति श्रुतिः ॥ १२ ॥

पदार्थः—आ प्रायणात् = मृत्यु पर्यंन्त उपासना करे। हि=क्योंकि। तत्रापि=मृत्यु-समय में भी उपासना का वर्णन। दृष्टम् = श्रुति में देखा गया है॥ १२॥

भाषार्थः—अहंग्रह-उपासना मृत्यु पर्यन्त करनी चाहिये। क्योंकि श्रुति यही कहती है। एवं अन्त-समय में की हुई उपासना से साक्षात्काररूप फल की प्राप्ति भी देखी गयी है॥ १२॥

तदधिगमाधिकरणम् ॥ १३॥

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १३॥

सूत्रार्थः—तदधिगमे ब्रह्मसाक्षात्कारे सति तयोरुत्तरपूर्वाघयोरसम्पर्कविनाशौ। यथा—'पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते' (छा० ४। १४। ३) इति श्रुत्या तद्व्यपदिश्यते॥ १३॥

पदार्थः—तदधिगमे = ब्रह्म की प्राप्ति होने पर। उत्तरपूर्वाघयोः=बाद के और पहले के पापों का। अश्लेषविनाशौ = असम्पर्क तथा नाश हो जाता है। तद्व्यपदेशात् = क्योंकि श्रुति में वैसा कहा है॥ १३॥

भाषार्थः—ब्रह्मसाक्षात्कार होने पर साक्षात्कार के पश्चात् तथा पूर्व जो भी पापकर्म किये हैं उनका क्रमशः असम्पर्क तथा नाश हो जाता है। श्रुति में कहा गया है कि 'जैसे कमल का पत्ता पानी को नहीं छूता, वैसे ही ज्ञानी को ज्ञान के पश्चात् होनेवाले पापकर्म नहीं छूते' और 'जैसे सींक अग्नि में डालने से भस्म हो जाती है, वैसे ही ज्ञानी के सभी पूर्वकृत पापकर्म भस्म हो जाते हैं'॥ १३॥

इतरासंश्लेषाधिकरणम् ॥ १४॥

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ॥ १४॥

सूत्रार्थः—इतरस्यापि पापादितरस्य पुण्यस्याप्येवमघवदश्लेषो विनाशश्च ज्ञानवतो भवतः। देहपाते तु मुक्तिरवश्यं भवति॥ १४॥

पदार्थः—इतरस्य=पुण्यका। अपि = भी। एवम् = इसी प्रकार (पाप की तरह)। असंश्लेषः=असम्पर्क (और नाश) होता है। पाते तु=देह के छूटने पर तो मुक्ति अवश्य होती है॥ १४॥

भाषार्थः—सूत्र १३ में जिस प्रकार ज्ञानी के पापों का अश्लेष और विनाश बताया गया है, वैसे ही ज्ञानी के ज्ञान से पूर्व के सञ्चित पुण्यकर्मों का नाश तथा ज्ञानोत्तर होनेवाले पुण्यकर्मों से असम्पर्क हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानी के समस्त पाप-पुण्यकर्मों का नाश हो जाता है। देहान्त होने पर उसकी मुक्ति अवश्य निश्चित है ॥ १४ ॥

अनारब्धाधिकरणम् ॥ १५ ॥

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—अनारब्धकार्ये अप्रवृत्तफले एव पूर्वसंचिते पुण्यपापे क्षीयेते। तस्य प्रारब्धकर्मणो देहपातावधिश्रवणात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—तु = किन्तु। अनारब्धकार्ये = जिनका फलोपभोग प्रारम्भ नहीं हुआ, वे। पूर्वे=पूर्वसंचित पुण्य तथा पापकर्म। एव=ही नष्ट होते हैं। तदवधेः= क्योंकि प्रारब्धकर्म रहने तक शरीर रहने की अवधि श्रुत में बतायी गयी है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जिनका फल नहीं भोगा गया, ऐसे पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में किये हुए ज्ञानी के संचित कर्म ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं; किन्तु प्रारब्धकर्म जीवन की अवधि तक भोगना पड़ता है। जैसे 'ज्ञानी का शरीर जब तक प्रारब्ध कर्म है तभी तक रहता है, फिर शान्त हो जाता है' (छा० ६। १४। २) इस श्रुति के कथन से सिद्ध है ॥ १५ ॥

अग्निहोत्राद्यधिकरणम् ॥ १६-१७ ॥

अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—अग्निहोत्रादि नित्यनैमित्तिकं कर्म तत्कार्यायैव; तस्य ज्ञानस्य यन्मुक्तिरूपं कार्यं तस्मै कार्याय सत्त्वशुद्ध्यादिपरम्परया। कुतः? 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन' (बृ० ४। ४। २२) इत्यादिश्रुतिदर्शनात् ॥ १६ ॥

पदार्थः—अग्निहोत्रादि तु = अग्निहोत्रादि नित्यकर्म तो। तत्कार्यायैव = उस ज्ञान के मुक्तिरूप कार्य के लिये ही है। तद्दर्शनात् = यज्ञादि कर्म को श्रुति में ज्ञान-हेतु कहा गया है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—तब अग्निहोत्रादि कर्म निरर्थक हैं क्या? इसका उत्तर है—नहीं, अग्निहोत्रादि नित्य-नैमित्तिक सब कर्म अन्तःकरण की शुद्धिपरम्परा से ज्ञान के

लिये उपयोगी हैं। इसमें 'ब्राह्मण यज्ञ-दानादि कर्मों से मुक्ति के योग्य हो जाते हैं' इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं॥ १६ ॥

अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—अग्निहोत्रादेर्नित्यात्कर्मणोऽन्याप्यस्ति स्वर्गादिसाधनोभूता क्रियेत्युभयोर्जैमिनिबादरायणयोः सम्मता। तस्या एव विनियोग उक्त एकेषां शाखिनाम्—'तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति। सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्' इति ॥ १७ ॥

पदार्थः—अतः=इन अग्निहोत्रादि से। अन्या=पृथक् शुभ (सकाम) क्रिया। अपि=भी है। हि=क्योंकि। एकेषाम्=ऐसा कोई शाखावाले कहते हैं। उभयोः=यह जैमिनि और बादरायण दोनों को मान्य है॥ १७ ॥

भाषार्थः—कोई शाखावाले कहते हैं कि अग्निहोत्रादि से भी श्रेष्ठ अन्य सकाम क्रिया है, जिसका सम्बन्ध इस प्रकार है कि 'ज्ञानी के धन और सम्पत्ति को पुत्र पाते हैं, इष्टमित्र उसके पुण्य को तथा शत्रु ज्ञानी के पापों को पाते हैं।' ऐसे काम्यकर्म मुक्ति में सहायक नहीं होते। यह जैमिनि तथा बादरायण दोनों आचार्यों को मान्य है॥ १७ ॥

विद्याज्ञानसाधनाधिकरणम् ॥ १८ ॥

यदेव विद्ययेति हि ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—'यदेव विद्यया करोति···तदेव वीर्यवत्तरं भवति' (छा० १। १। १०)॥ १८ ॥

पदार्थः—यदेव = जो भी। विद्यया=विद्या से किया जाता है। इति हि= उसीको श्रुति में वीर्यवत्तर बताया है॥ १८ ॥

भाषार्थः—जो भी ज्ञानपूर्वक किया जाता है वही अधिक बलवान् होता है। इस प्रकार श्रुति ज्ञानयुक्त कर्म को अधिक बलवान् बताती है॥ १८ ॥

इतरक्षपणाधिकरणम् ॥ १९ ॥

भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—सञ्चितकर्मणां ज्ञानेन नाश इत्युक्तः। इतरे प्रारब्धकार्ये पुण्यपापे भोगेन क्षपयित्वा ब्रह्म सम्पद्यते॥ १९ ॥

पदार्थः—इतरे=जो दूसरे पाप-पुण्यरूप प्रारब्धकर्म हैं उनका। तु=तो। भोगेन=भोग से। क्षपयित्वा=नाश करके। सम्पद्यते=ब्रह्म को प्राप्त होता है॥ १९॥

भाषार्थः—जिनका फलभोग अभी आरम्भ नहीं हुआ ऐसे पुण्य-पापों का विद्या के बल से नाश होता है, ऐसा प्रतिपादित किया गया। अब इस सूत्र में कहा है कि जिनका भोग प्रारम्भ हो चुका है ऐसे पुण्य-पापरूप अन्य कर्मों का उपभोग करके नाश करते हुए मुमुक्षु ब्रह्म को प्राप्त होता है॥ १९॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
प्रथमः पादः॥ १॥

अथ वेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये

द्वितीयः पादः

वागधिकरणम् ॥ १–२ ॥

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—वाङ्मनसि लीयते। कुतः ? विद्यमानमनोवृत्तौ वाग्वृत्तेरुपसंहारदर्शनात् 'वाङ्मनसि सम्पद्यते' (छा० ६ । ८ । ६) इति शब्दाच्च ॥१॥

पदार्थः—वाक् = वाणी की वृत्ति। मनसि = मन की वृत्ति में लय होती है। दर्शनात् = देखा जाता है। च=और। शब्दात् = श्रुति से भी यही सिद्ध होता है ॥ १ ॥

भाषार्थः—वाणी की वृत्ति मन की वृत्ति में लय होती है। क्योंकि मनोवृत्ति की विद्यमानता में वाणी का उपसंहार देखा जाता है। और 'वाणी मन में लीन होती हैं' यह श्रुति भी इसमें प्रमाण है ॥ १ ॥

अत एव च सर्वाण्यनु ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—अत एव सर्वेन्द्रियाणि चक्षुरादीनि मनसि लीयन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—च = और। अत एव = इसीलिये। सर्वाणि = सब इन्द्रियाँ। अनु = मन के पीछे चलती हैं ॥ २ ॥

भाषार्थः—वाक् इन्द्रिय की भाँति चक्षु आदि सब इन्द्रियों की वृत्तियाँ भी मन में लय होती हैं। श्रुति में बताया है कि वाक् की तरह वृत्ति द्वारा ही सब इन्द्रियाँ मन के पीछे चलती हैं ॥ २ ॥

मनोऽधिकरणम् ॥ ३ ॥

तन्मनः प्राण उत्तरात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—तन्मनः प्राणे लीयते उत्तराद् वाक्यात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—तन्मनः = वह मन। प्राणे = प्राण में लय होता है। उत्तरात् = अगले श्रुति-वाक्य से यह सिद्ध है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—सब इन्द्रियों की वृत्ति के सहित वह मन अपनी वृत्ति द्वारा प्राण में लय होता है। यह बात 'मनः प्राणे' (छा० ६ । ८ । ६) इस उत्तर वाक्य से सिद्ध है ॥ ३ ॥

अध्यक्षाधिकरणम् ॥ ४-६ ॥

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—स प्राणः कार्यकारणसंघातस्वामिनि जीवे लीयते। कुतः? तदुपगमादिभ्यो हेतुभ्य इति ॥ ४ ॥

पदार्थः—सः = वह प्राण। अध्यक्षे = जीव में लय होता है। तदुपगमादिभ्यः = क्योंकि 'वह उसको प्राप्त होता है' आदि कथन मिलते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थः—वह प्राण जीव में लय होता है। कैसे होता है? इसका उत्तर है कि उपगम, अनुगमन तथा अवस्थान इन तीन हेतुओं से। 'सभी प्राण अन्तकाल में जीव में मिलते हैं।' (बृ० ४ । ४ । २) यह उपगम (मिलना) है। 'जीव के निकलने पर प्राण भी जीव का अनुगमन करते हैं' (बृ० ४ । ४ । २) यह अनुगमन है। 'वह विज्ञानयुक्त होता है' (बृ० ४ । ४ । २) यह अवस्थान है ॥ ४ ॥

भूतेषु तच्छ्रुतेः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—सूक्ष्मात्मना विद्यमानेषूत्तरदेहारम्भकेषु तेजःसहितेषु पञ्चभूतोपाधिषूपहितत्वेन विद्यमाने जीवे प्राणस्य लय उपगमादिश्रुत्यन्तरानुसारात् ॥ ५ ॥

पदार्थः—भूतेषु = पञ्चभूतों में स्थित होता है। तच्छ्रुतेः = यह श्रुति से सिद्ध है ॥ ५ ॥

भाषार्थः—पञ्चभूतों की उपाधि से युक्त जीव में प्राण लय होता है। 'प्राणस्तेजसि' यह श्रुति इसमें प्रमाण है ॥ ५ ॥

नैकस्मिन्दर्शयतो हि ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—एकस्मिन्नेव तेजसि जीव उत्क्रान्तिकाले नावतिष्ठते; उत्तरदेहस्य पाञ्चभौतिकत्वेन पञ्चभूतेषु स्थितेरावश्यकत्वात्। यतः श्रुतिः स्मृतिश्चेममर्थं दर्शयतः ॥ ६ ॥

पदार्थः—एकस्मिन् = एक ही तेज में। न = जीव नहीं रहता। हि = क्योंकि। दर्शयतः = इस बात को श्रुति और स्मृति दोनों दिखा रही हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थः—श्रुति और स्मृति पाँचों भूतों से युक्त जीव में प्राणवृत्ति का लय दिखा रही हैं, एक तेज तत्त्व में नहीं। श्रुति में जो 'प्राण तेज में लय होता है' ऐसा कहा है, वहाँ तेज शब्द पञ्चभूतों का उपलक्षण जानना चाहिये ॥ ६ ॥

आसृत्युपक्रमाधिकरणम् ॥ ७ ॥

समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वञ्चानुपोष्य ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—सृतिः सरणानुकूलो देवयानमार्गस्तदुपक्रमात्पूर्वंभाविनी योत्क्रान्तिः सा विद्वदविदुषोः समानैव; रागक्लेशानदग्ध्वैवामृतस्य ब्रह्मलोकलक्षणस्यावाप्तिर्न मुख्यो मोक्षः ॥ ७ ॥

पदार्थः—आसृत्युपक्रमात् = देवयान मार्ग के आरम्भ तक। समाना = उत्क्रान्ति समान। च = ही है। च = क्योंकि। अनुपोष्य = अविद्या आदि क्लेश-समूह को नाश किये बिना। अमृतत्वम् = सापेक्ष मोक्ष होता है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—देवयान अथवा पितृयाण मार्ग के आरम्भ तक विद्वान् (सगुणोपासक) की और अविद्वान् (सकामकर्मकाण्डी साधारण पुरुष) की उत्क्रान्ति (मृत्यु) एक समान है। विशेषता यह है कि विद्वान् स्थूलशरीर से निकलकर देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है और अविद्वान् (अज्ञानी) अपने कर्मानुसार शरीर में प्रवेश करते हैं। सगुणोपासक ब्रह्मलोकरूप अमृतत्व को प्राप्त होता है। यह अमृतत्व (मोक्ष) की प्राप्ति सापेक्ष (सालोक्य) मुक्ति है, मुख्य मुक्ति नहीं; क्योंकि यहाँ सूक्ष्मशरीर साथ रहता है। मुख्य मुक्ति ब्रह्मरूप है, वहाँ आना-जाना नहीं है ॥ ७ ॥

संसारव्यपदेशाधिकरणम् ॥ ८–११ ॥

तदापीतेः संसारव्यपदेशात् ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—तद् उक्तविशेषणं तेजः (लिङ्गशरीरम्) आ मोक्षादवतिष्ठते, श्रुत्या संसारव्यपदेशात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—तत् = वह सूक्ष्मशरीर। अपीतेः = मोक्ष पर्यन्त रहता है। संसारव्यपदेशात् = संसार का प्रसङ्ग होने से ॥ ८ ॥

भाषार्थः—वह सूक्ष्मशरीर जब तक अपरोक्ष ज्ञान से मोक्ष नहीं होता तब तक रहता है। उसीसे जन्म-मृत्युरूप संसार बना रहता है। 'अज्ञानो जीव योनि को प्राप्त होकर शरीर धारण करते हैं और वृक्ष-पाषाणादि स्थावर योनि को प्राप्त होते हैं' (कठ० ५।७) यही संसार है ॥ ८ ॥

सूक्ष्मं प्रमाणतश्च तथोपलब्धेः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तल्लिङ्गशरीरं सूक्ष्मं प्रमाणतस्तथोपलब्धेः ॥ ९ ॥

पदार्थः—प्रमाणतः=प्रमाण से। सूक्ष्मम् = सूक्ष्म है। च = श्रुति से भी। तथोपलब्धेः = वैसी उपलब्धि होती है ॥ ९ ॥

भाषार्थः—वह लिङ्गशरीर प्रमाण से और स्वरूप से सूक्ष्म है, क्योंकि वह नाड़ी द्वारा निकलता है। श्रुति से भी वैसा ही उपलब्ध होता है ॥ ९ ॥

नोपमर्देनातः ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—अतः सूक्ष्मत्वात्स्थूलशरीरस्योपमर्देन न लिङ्गोपमर्दनम् ॥ १० ॥

पदार्थः—अतः = सूक्ष्म होने से। उपमर्देन = स्थूलशरीर के नाश से। न = इस सूक्ष्मशरीर का नाश नहीं होता ॥ १० ॥

भाषार्थः—अतः सूक्ष्म होने से स्थूलशरीर के नाश से सूक्ष्मशरीर का नाश नहीं होता ॥ १० ॥

अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—जीवितशरीरेऽस्यैव सूक्ष्मशरीरस्योष्मा स्पर्शग्राह्यः ॥ ११ ॥

पदार्थः—च = तथा। एषः ऊष्मा = स्थूलशरीर में जो यह गर्मी है वह। अस्य एव = इस सूक्ष्मशरीर की ही है। उपपत्तेः = प्रतीति होने से ॥ ११ ॥

भाषार्थः—जीवित स्थूलशरीर में जो गर्मी प्रतीत होती है वह इसी सूक्ष्मशरीर की है। अतः मृत शरीर में गर्मी नहीं रहती है, क्योंकि उसमें से सूक्ष्मशरीर निकल गया ॥ ११ ॥

प्रतिषेधाधिकरणम् ॥ १२-१४ ॥

प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति' (बृ० ४ । ४ । ६) इति ब्रह्मविदः शारीरात्प्राणोत्क्रान्तिप्रतिषेधान्नास्त्युत्क्रान्तिरिति चेन्न । शारीराज्जीवादयं प्राणोत्क्रान्तिप्रतिषेधो न शरीरादिति पूर्वपक्षः ॥ १२ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो कि । प्रतिषेधात् = ज्ञानी की उत्क्रान्ति का निषेध है । इति न = तो ऐसा कथन समुचित नहीं है । शारीरात् = जीव से निषेध है, न कि शरीर से ॥ १२ ॥

भाषार्थः—'उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते' ऐसा निषेध होने से यदि कहो कि ज्ञानी के प्राण देह से नहीं निकलते तो ऐसी बात नहीं है । क्योंकि वहाँ जीवात्मा से होनेवाली उत्क्रान्ति का निषेध है, शरीर से होनेवाली उत्क्रान्ति का निषेध नहीं है । यह पूर्वपक्ष है ॥ १२ ॥

स्पष्टो ह्येकेषाम् ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—ज्ञानिन उत्क्रान्तिर्जीवलक्ष्यत्वेनोक्तेति न समीचीनं यतः काण्वाः स्पष्टतया ज्ञानिनः शरीरादेव प्राणोत्क्रान्तिनिषेधं कथयन्ति, न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति श्रुतेः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हि = यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि । एकेषाम्=कुछ शाखावालों का । स्पष्टः = स्पष्ट निषेध है ॥ १३ ॥

भाषार्थः—ज्ञानी की उत्क्रान्ति जीवात्मा को लक्ष्य करके होती है—यह पूर्वपक्ष समीचीन नहीं है, क्योंकि काण्व शाखा में स्पष्टरूप से ज्ञानी की उत्क्रान्ति अर्थात् शरीर से प्राणों के निकलने का निषेध किया है कि 'उसके प्राण नहीं निकलते, ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं' (बृ० ४ । ४ । ६) दूसरी श्रुति कहती है कि 'ज्ञानी ऐसे ब्रह्म में मिल जाता है जैसे समुद्र में नदियाँ' (मु० ३ । २ । ८) ॥ १३ ॥

स्मर्यते च ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—सर्वभूतात्मभूतस्येति ब्रह्मविदो गत्युत्क्रान्त्यभावो भारते स्मर्यते ॥ १४ ॥

पदार्थः—च = और । स्मर्यते = स्मृति से भी यह सिद्ध है ॥ १४ ॥

भाषार्थः—स्मृतियों से भी ज्ञानी की उत्क्रान्ति का निषेध है ॥ १४ ॥

वागादिलयाधिकरणम् ॥ १५ ॥

तानि परे तथा ह्याह ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मविदः प्राणशब्दवाच्यानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि (षोडशकलाः) परे ब्रह्मणि लीयन्ते। तथा श्रुतिराह—'गताः कलाः' 'यथा नद्यः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय' (मु० ३ । २ । ७-८) इति ॥ १५ ॥

पदार्थः—तानि = प्राणवाचक सब इन्द्रियाँ। परे = परब्रह्म में लीन हो जाती हैं। हि = क्योंकि। तथा आह = श्रुति ने भी वैसा ही कहा है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर समुद्र का रूप बन जाती हैं, वैसे ज्ञानी भी षोडशकला सहित ब्रह्म में मिलकर ब्रह्मरूप बन जाता है ॥ १५ ॥

अविभागाधिकरणम् ॥ १६ ॥

अविभागो वचनात् ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—अविभागेनैव लीयन्ते न तु पुनर्जन्महेतुत्वेन ॥ १६ ॥

पदार्थः—अविभागः = इन सोलह कलाओं की ब्रह्म के साथ पूर्ण एकता है। वचनात् = क्योंकि श्रुति में ऐसा कहा गया है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—ज्ञानी की कलाओं (ग्यारह इन्द्रियों और पाँच भूतों) का ब्रह्म के साथ अविभाग अर्थात् अत्यन्त एकीकरण हो जाता है। 'जैसे नदियाँ अपने नाम-रूप को त्यागकर समुद्र में मिलकर समुद्ररूप ही हो जाती हैं' इस श्रुति-वचन के अनुसार ज्ञानी सोलह कलाओं सहित ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ १६ ॥

तदोकोऽधिकरणम् ॥ १७ ॥

तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—तस्य जीवस्योकः स्थानं हृदयं तस्य हृदयस्याग्रस्य ज्वलनं तेन प्रकाशितानि द्वाराणि यस्य सोऽयं तत्प्रकाशितद्वारः। सर्वोऽपि जन्तुश्चक्षुरादिभ्यः स्थानेभ्य उत्क्रामति। विद्वांस्तु हार्देन ब्रह्मणानुगृहीतः शताधिकया

मूर्धन्यनाड्याः । कुतः ? विद्यासामर्थ्यात् । एवं नियमे को हेतुः ? तत्राह-तस्या विद्यायाः शेषभूता मूर्धन्यनाडीगतिरुत्तरमार्गस्तस्यानुस्मरणं तद्योगात् ॥ १७ ॥

पदार्थः—तदोकोऽग्रज्वलनम् = उस जीव के निवासस्थान हृदय का अग्रभाग प्रकाशित हो जाता है । तत्प्रकाशितद्वारः = उस प्रकाश से देवयान मार्ग प्रकाशित हो जाता है । विद्यासामर्थ्यात् = विद्या की शक्ति से । च = और । तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगात् = उस विद्या की अङ्गभूत मस्तक में स्थित सुषुम्ना नाड़ी के अनुस्मरणरूप योग से । हार्दानुगृहीतः = हृदयस्थ ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त कर । शताधिकया = सौ नाड़ियों से अधिक एक सौ एकवीं सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से निकलता है ॥ १७ ॥

भाषार्थः—मृत्यु-समय में सब इन्द्रियाँ जीव के हृदय में एकत्रित हो जाती हैं । जब जीव शरीर को छोड़कर जाता है तब उसके हृदय का अग्रभाग अर्थात् नाड़ियों का मुख प्रकाशित हो जाता है । वह प्रकाश भविष्यफल का द्योतक है । उस प्रकाश की सहायता से जीवात्मा नेत्र आदि इन्द्रियों से और विद्वान् (सगुणब्रह्मोपासक) विद्यासामर्थ्यसे और मस्तक में स्थित सुषुन्ना नाड़ी के अनुस्मरणरूप योग से देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक को जाता है । एवं वह पुण्यात्मा जीव अपने पुण्य-बल से सुषुम्ना के संयोग तथा हृदय में स्थित ईश्वर के अनुग्रह से ब्रह्मलोक की प्राप्तिरूप मोक्ष को प्राप्त हो जाता है । तथा अज्ञानी कर्मकाण्डी जीव आँख, कान और मुख से निकलकर मनुष्य-शरीर को प्राप्त होता है और पापी अधोद्वार से निकलकर अधोगति को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

रश्म्यधिकरणम् ॥ १८-१९ ॥

रश्म्यनुसारी ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—विद्वदुत्क्रमणन्तु रश्म्यनुसार्येव भवति । दिवसे रात्रौ वा मृत्युः स्यात् ॥ १८ ॥

पदार्थः—रश्म्यनुसारी = रश्मियों का अनुसरण करता है ॥ १८ ॥

भाषार्थः—विद्वान् दिन में मरे या रात्रि में, वह सूर्य की रश्मियों के सहारे देवयान मार्ग से ही ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १८ ॥

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—अस्त्यहनि नाडीरश्मिसम्बन्ध इत्यहनि मृतस्य स्याद्रश्म्यनुसारित्वम्, रात्रौ तु प्रेतस्य न स्यान्नाडीरश्मिसम्बन्धविच्छेदादिति चेन्न नाडीरश्मिसम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वात्। दर्शयति चैतमर्थं श्रुतिः 'अमुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते......' (छा० ८।६।२) इति ॥ १९ ॥

पदार्थः—इति चेत्=यदि कहो कि। निशि=रात्रि में। न=सूर्य की रश्मि से सम्बन्ध नहीं होता। न=तो ऐसा नहीं है। सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वात्= क्योंकि जब तक देह रहती है सम्बन्ध बना रहता है। दर्शयति च = श्रुति भी ऐसा ही कहती है ॥ १९ ॥

भाषार्थः—नाड़ी और सूर्य की रश्मि का सम्बन्ध दिन में ही होता है। अतः दिन में मरा हुआ जीव ही सूर्य की रश्मियों का अनुसरण करता है, रात में मरा हुआ नहीं। ऐसी शंका उचित नहीं है; क्योंकि दिन हो या रात, नाडी और रश्मि का सम्बन्ध देह पर्यन्त सदा बना रहता है। श्रुति भी ऐसा ही प्रतिपादन करती है ॥ १९ ॥

दक्षिणायनाधिकरणम् ॥ २०-२१ ॥

अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—विद्याफलस्य नित्यत्वाद्दक्षिणायनेऽपि मृतो विद्वान् विद्याफलमाप्नोत्येव ॥ २० ॥

पदार्थः—च=और। अतः = इसीलिये। दक्षिणे अयने अपि = दक्षिणायन में मरने पर भी ॥ २० ॥

भाषार्थः—विद्याफल नित्य है अतः दक्षिणायन में भी मरा हुआ विद्वान् विद्या के फल को पाता ही है अर्थात् देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक को जाता है ॥ २० ॥

योगिनः प्रति च स्मर्यते स्मार्त्ते चैते ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—अनावृत्त्यर्थं यदहरादिकालस्मरणं तद् योगिनं प्रत्यस्ति। सांख्ययोगौ स्मार्तौ स्तः। अत एव स्मार्ताहरादेः श्रौतविज्ञानविषये उपयोगो नास्ति ॥ २१ ॥

पदार्थः—च = इस प्रकार। योगिनः प्रति = काल का नियम योगियों के लिये। स्मर्यते = कहा जाता है। च = तथा। एते=ये योग और सांख्य। स्मार्त्ते= स्मृति में कहे गये हैं॥ २१॥

भाषार्थः—अनावृत्तिरूप मोक्ष के लिये दिन आदि जो काल का नियम है वह योगियों के लिये है। सांख्य और योग स्मृति में कहे गये हैं, श्रौत नहीं हैं। अतएव स्मृति में कहे गये दिन आदि काल का श्रौत ज्ञान के विषय में उपयोग नहीं है॥ २१॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
द्वितीयः पादः॥ २॥

अथ वेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये

तृतीयः पादः

अर्चिराद्यधिकरणम् ॥ १ ॥

अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—सर्वोऽपि ब्रह्मलोकप्रेप्सुरर्चिरादिनैवैकेन मार्गेण गन्तुमर्हति। कुतः ? तत्प्रथितेः—तत्स्मृतेः प्रसिद्धत्वात् ॥ १ ॥

पदार्थः—अर्चिरादिना = अर्चि आदि मार्ग से जाते हैं। तत्प्रथितेः=उसकी प्रसिद्धि होने से ॥ १ ॥

भावार्थः—ब्रह्मलोक को जाने की इच्छावाले सभी मानव एक ही अर्चि आदि मार्ग से जाते हैं, क्योंकि वह मार्ग प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

वाय्वधिकरणम् ॥ २ ॥

वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—कौषीतकिश्रुतौ वायोः कुतश्चिदानन्तर्यं पूर्वत्वं वा अविशेषो न ज्ञायते तद्वाचकपदाभावात्। बृहदारण्यके त्वादित्यात्पूर्वत्वं विशेषो दृश्यते। संवत्सरानन्तरमादित्यात्पूर्वं वायुमभिसंविशन्तीति गन्तारः ॥ २ ॥

पदार्थः—अब्दात् = संवत्सर के बाद। वायुम् = वायुलोक को जाता है। अविशेषविशेषाभ्याम् = सामान्य और विशेष हेतुओं से ॥ २ ॥

भावार्थः—कौषीतकि उपनिषद् में अविशेष अर्थात् सामान्य रूप से विद्वान् वायुलोक को प्राप्त होता है ऐसा लिखा है, किससे पहले और किसके पीछे यह विशेषरूप से स्पष्ट नहीं लिखा; किन्तु बृहदारण्यक में विशेषरूप से स्पष्ट लिखा है कि आदित्यलोक से पहले वायुलोक को प्राप्त होता है एवं सामान्य तथा विशेष हेतुओं से इस प्रकार जानना चाहिये कि संवत्सर से वायुलोक को प्राप्त होकर फिर आदित्यलोक को जाता है ॥ २ ॥

तडिदधिकरणम् ॥ ३ ॥

तडितोऽधि वरुणः सम्बन्धात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—तडितोऽधि—विद्युल्लोकादुपरिष्टाद् वरुणः सम्बध्यते। कुतः? सम्बन्धात्। तडिदुपरि सजला मेघा दृश्यन्ते, जलाधिपश्च वरुण इति तडिद्-वरुणयोः सम्बन्धात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—सम्बन्धात् = विद्युत् और वरुण का सम्बन्ध होने से। तडितः = विद्युत्-लोक से। अधि = ऊपर। वरुणः = वरुण-लोक है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—विद्युत्-लोक से ऊपर वरुण-लोक है। क्योंकि विद्युत् के ऊपर जलपूर्ण मेघ दिखायी देते हैं और जल का स्वामी वरुण है। इस प्रकार विद्युत् तथा वरुण का सम्बन्ध है ॥ ३ ॥

आतिवाहिकाधिकरणम् ॥ ४-६ ॥

आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात् ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—आतिवाहिकाः-अर्चिरादयः कार्यब्रह्मगन्तॄणां गमयितारः। कुतः? तल्लिङ्गात्—'चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयति' (छा० ४। १५। ५) इत्यमानवपुरुषस्योपासकान् प्रति गमयितृत्व-श्रवणात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—आतिवाहिकाः = वे अमानव पुरुष हैं। तल्लिङ्गात् = क्योंकि उनके चिह्न मिलते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थः—सगुणोपासक विद्वान् जब शरीर को त्यागकर ब्रह्मलोक को जाता है तब वह अर्चि, दिन, पक्ष, मास, उत्तरायण, संवत्सर, वायु, विद्युत् आदि लोकों को होकर जाता है। यहाँ संशय है कि ये अर्चि आदि क्या हैं? लोक हैं, जड हैं या चैतन्य हैं। इस विषय में सूत्रकार कहते हैं कि वे आति-वाहिक अर्चि आदि लोकों के अभिमानी देवता हैं। वे अमानव पुरुष कहलाते हैं जो उस उपासक विद्वान् को अपने लोक से अगले लोक तक पहुँचाते हैं। इसीलिये उनका नाम आतिवाहिक है। इसमें यह छान्दोग्यश्रुति प्रमाण है कि 'वह पुरुष उस विद्वान् को चन्द्र-लोक से विद्युत्-लोक तक पहुँचाता है' ॥ ४ ॥

उभयव्यामोहात्तत्सिद्धेः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—यद्यर्चिरादयोऽचेतनास्तदा विदुषामपि निर्देहानां लीनेन्द्रियाणां ज्ञानाभावे तूभयोर्विद्वदर्चिराद्योर्व्यामोहादज्ञत्वात्कार्यब्रह्मप्राप्तिर्न स्यात्। अतः

स्वयं प्रयत्नशून्यश्चेतनान्तरैर्नेय इति न्यायानुगृहीताल्लिङ्गात् पूर्वेषामर्चिरादीनां देवानां नेतृत्वसिद्धेः ॥ ५ ॥

पदार्थः—उभयव्यामोहात् = विद्वान् तथा अर्चि आदि देवताओं के ज्ञान-रहित होने पर। तत्सिद्धेः=नेतृत्व की सिद्धि होने से ॥ ५ ॥

भाषार्थः—यदि अर्चि आदि को जड मानेंगे, और देह तथा इन्द्रियविहीन उपासक स्वयं जाने में असमर्थ होंगे तो ऐसी दशा में दोनों के जड होने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति असम्भव हो जायगी। अतः जैसे प्रयत्नशून्य मूर्छित पुरुष को दूसरे समर्थ पुरुष उठा ले जाते हैं, वैसे ही इस लौकिक दृष्टान्त के अनुसार ब्रह्मलोक के अधिकारी विद्वान् को अर्चि आदि चेतन देवताओं द्वारा ब्रह्मलोक में पहुँचाना सिद्ध है ॥ ५ ॥

वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—विद्युल्लोकमागतेनामानवपुरुषेणैव विद्युल्लोकादूर्ध्वं नीयमाना उपासका ब्रह्मलोकं प्राप्नुवन्ति। 'स एनान् ब्रह्म गमयति' इति श्रुतिः ॥ ६ ॥

पदार्थः—वैद्युतेन = विद्युत्-लोक के अमानव पुरुष द्वारा । एव = ही। ततः = उससे ऊपर पहुँचायें जाते हैं । तत् श्रुतेः = श्रुति ऐसा ही कहती है ॥ ६ ॥

भाषार्थः—विद्युत्-लोक में आये हुए अमानव पुरुष द्वारा ही वे उपासक उस विद्युत्-लोक से ऊपर ब्रह्मलोक में पहुँचाये जाते हैं। श्रुति भी ऐसा ही कहती है ॥ ६ ॥

कार्याधिकरणम् ॥ ७–१४ ॥

कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—कार्यमेव ब्रह्म गमयति इति बादरिर्मन्यते। अस्य कार्यब्रह्मणः परिच्छिन्नस्य गन्तव्योपपत्तेः ॥ ७ ॥

पदार्थः—बादरिः = बादरि आचार्य। कार्यम् = कार्यब्रह्म को ले जाया जाता है ऐसा मानते हैं। अस्य गत्युपपत्तेः=क्योंकि गमन क्रिया इस कार्यब्रह्म के प्रति ही सम्भव है ॥ ७ ॥

भाषार्थः—सगुणोपासक सगुणब्रह्म (ब्रह्मा) को ही प्राप्त होता है ऐसा बादरि आचार्य मानते हैं, क्योंकि गमनक्रिया सगुणब्रह्म के प्रति ही सम्भव है ॥ ७ ॥

विशेषितत्वाच्च ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—'ब्रह्मलोकान् गमयति' (बृ० ६ । २ । १५) इति श्रुतौ बहुवचनेन गन्तव्यब्रह्मणो विशेषितत्वात्कार्यब्रह्म एव गमनविषयः। यतो बहुवचनेन विशेषणं परे ब्रह्मणि न संघटते ॥ ८ ॥

पदार्थः—विशेषितत्वात् च=ब्रह्म के सम्बन्ध में विशेष बात कही हुई होने से भी ॥ ८ ॥

भाषार्थः—'ब्रह्मलोकों को ले जाता है' इस श्रुति में प्राप्त करने योग्य ब्रह्म का बहुवचनान्त विशेषण होने से सगुणब्रह्म ही प्राप्त करने योग्य है, निर्गुण में बहुवचन नहीं घट सकता। 'वे उस ब्रह्मलोक में उत्कृष्ट होकर बहुत वर्ष तक रहते हैं' इस श्रुति में विशेष कथन होने से यह गति कार्यब्रह्म के लिये ही है ॥ ८ ॥

सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तुशब्दः शङ्कापनयनाय। परब्रह्मसामीप्यात्कार्यब्रह्मणि ब्रह्मशब्दप्रयोगः ॥ ९ ॥

पदार्थः—तु शब्द शङ्का निवारणार्थ है। सामीप्यात्=समीपता के कारण। तद्व्यपदेशः = उस अपर ब्रह्म शब्द का निर्देश किया गया है ॥ ९ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म शब्द कार्यब्रह्म का वाचक नहीं हो सकता—यह वादी की शङ्का उचित नहीं है, क्योंकि कार्यब्रह्म निर्गुणब्रह्म के समीप होने से उसका निर्देश किया गया है ॥ ९ ॥

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—कार्यब्रह्मलोकस्य नाशे सति महाप्रलये तत्रैवोत्पन्नसम्यग्दर्शनाः सन्तस्तल्लोकस्वामिना हिरण्यगर्भेण सह कार्यब्रह्मणः परं ब्रह्माप्नुवन्ति 'ते ब्रह्मलोकेषु' (मु० ३ । २ । ६) इति श्रुत्यभिधानात् ॥ १० ॥

पदार्थः—कार्यात्यये = कार्यब्रह्म के नाश होने पर। तदध्यक्षेण = उस ब्रह्मलोक के स्वामी हिरण्यगर्भ के। सह=साथ। अतः=सगुणब्रह्म से। परम्=परे

निर्गुणब्रह्म में मिल जाते हैं। अभिधानात्=क्योंकि श्रुति ने ऐसा ही कहा है॥ १०॥

भाषार्थः—कार्यरूप ब्रह्मलोक के प्रलय का समय आने पर वहाँ के जीवों को वहीं पर ब्रह्मज्ञान हो जाता है और वे उस लोक के अध्यक्ष हिरण्यगर्भ के साथ वहीं से परब्रह्म में लीन हो जाते हैं। ऐसा ब्रह्मलोक से न लौटने का कथन करनेवाली श्रुतियाँ कहती हैं॥ १०॥

स्मृतेश्च ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे।
परस्यान्ते कृतात्मनः प्रविशन्ति परं पदम्॥

इति स्मृत्यापि सिद्धम्॥ ११॥

पदार्थः—स्मृतेः च = स्मृति से भी यही बात सिद्ध है॥ ११॥

भाषार्थः—'महाप्रलय होने पर ब्रह्मलोक निवासी सभी पवित्रात्मा ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाते हैं' ऐसा स्मृति भी कहती है॥ ११॥

परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—'स एनान् ब्रह्म गमयति' (छा० ४। १५। ६) इति श्रुतौ नपुंसकब्रह्मशब्दस्य परस्मिन्नेव मुख्यत्वादिति जैमिनिर्मन्यते॥ १२॥

पदार्थः—जैमिनिः = जैमिनि आचार्य। परम् = परमब्रह्म ही मानते हैं। मुख्यत्वात् = ब्रह्म शब्द का मुख्यार्थ होने से॥ १२॥

भाषार्थः—'वह इनको ब्रह्म की प्राप्ति करा देता है' इस श्रुति में नपुंसक ब्रह्मशब्द का मुख्यार्थ परब्रह्म ही है, न कि कार्यब्रह्म—ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं॥ १२॥

दर्शनाच्च ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—'तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति' (छा० ८। ६। ६; कठ० ६। १६) इत्यादिश्रुतिषु परमेव ब्रह्म गमयतीति निश्चितं भवति॥ १३॥

पदार्थः—दर्शनात् च=श्रुति में भी ऐसा कथन होने से॥ १३॥

भाषार्थः—'सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ऊपर जानेवाला मानव अमृतत्व को प्राप्त होता है' इत्यादि श्रुतियों में गतिपूर्वक अमृतत्व शब्द परब्रह्म में ही घट सकता है॥ १३॥

न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—'प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये' (छा० ८।१४।१) इति प्रतिपत्त्यभिसन्धिः कार्ये ब्रह्मणि न संघटते इति जैमिनेः पूर्वपक्षः। वेश्मप्राप्तिसङ्कल्पः कार्ये ब्रह्मण्येव युक्त इति बादरायणस्य सिद्धान्तपक्षः ॥ १४ ॥

पदार्थः—च=तथा। प्रतिपत्त्यभिसन्धिः=प्राप्ति का सङ्कल्प। कार्ये=कार्यब्रह्म में। न=नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

भाषार्थः—'प्रजापति की सभा तथा भवन में प्रवेश करूँ' ऐसा प्राप्तिरूप सङ्कल्प कार्यब्रह्म में नहीं हो सकता, अपितु परब्रह्म में युक्त है—यह आचार्य जैमिनि का पूर्वपक्ष है। यह सभा और भवन में प्रवेशरूप सङ्कल्प सगुण कार्यब्रह्म (ब्रह्मा) में ही घट सकता है—यह बादरायण (व्यास) का सिद्धान्त है। सूत्र १२, १३, १४ में ब्रह्मलोक की प्राप्ति को ही कैवल्य मोक्ष माननेवालों द्वारा प्रतिपादित पूर्वपक्ष जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अप्रतीकालम्बनाधिकरणम् ॥ १५-१६ ॥

अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथाऽदोषात्तत्क्रतुश्च ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—प्रतीकोपासकभिन्नान्सर्वानुपासकान्नयतीति बादरायणः कांश्चिदुपासकान्नयति कांश्चिन्नेत्युभयथा भावाभ्युपगमे दोषाभावात्। नियामकमाह-तत्क्रतुश्चेति। क्रतुरुपासनं कार्यब्रह्मविषयकः। क्रतुर्यस्योपासकस्यास्तीति तत्क्रतुः। तथा यो यदुपासकः स तत्प्राप्नोतीति श्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—अप्रतीकालम्बनान्=प्रतीकों की उपासना न करनेवालों को। नयति=वह ले जाता है। इति=यह। बादरायणः=बादरायणाचार्य मानते हैं। उभयथाऽदोषात्=अहंग्रह-उपासकों को ले जाता है, मूर्तिपूजकों को नहीं—इन दोनों बातों में दोष नहीं है। च=क्योंकि। तत्क्रतुः=जो जिसका उपासक है वह उसको प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—मूर्तिपूजकों को छोड़कर और सबको अमानव पुरुष ले जाता है। कहाँ? ब्रह्मलोक को। ऐसा बादरायण (व्यास) मानते हैं। अर्थात् अहंग्रहोपासकों को ले जाता है और मूर्तिपूजकों को नहीं—इन दोनों बातों को मानने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो जिसकी उपासना करता है वह उसी को प्राप्त करता है। नाम, वाक् और मन से की जानेवाली उपासना प्रतीकोपासना है ॥ १५ ॥

विशेषं च दर्शयति ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—प्रतीकोपासनेषु फलविशेषं श्रुतिर्दर्शयति । तथा च 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः' इति श्रुतिर्दर्शयति ब्रह्मणो विशेषम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—विशेषं च = प्रतीकोपासना का फलवैशिष्ट्य तथा अन्य सबसे ब्रह्म का वैशिष्ट्य भी । दर्शयति = श्रुति दिखाती है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—प्रतीकोपासनाओं का विशिष्ट फल होता है-ऐसा श्रुति कहती है तथा 'इन्द्रियों से परे विषय हैं और सब विषयों से परे सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म है, वही पराकाष्ठा तथा परागति है' इस प्रकार श्रुतियाँ ब्रह्म की विशेषता का भी वर्णन करती हैं ॥ १६ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-
विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां
तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

अथ वेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये

चतुर्थः पादः

सम्पद्याविर्भावाधिकरणम् ॥ १–३ ॥

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥

सूत्रार्थः—सम्पद्य स्वप्रकाशमात्मानं साक्षादनुभूय केवलेनैवात्मनाविर्भवति न धर्मान्तरेण। कुतः ? एष सम्प्रसादो……स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' (छा० ८।१२।३) इति स्वशब्दात् ॥ १ ॥

पदार्थः—सम्पद्य = ब्रह्म के साथ अपनी एकता का अनुभव करके। स्वेन = ज्ञानी आत्मरूप से। आविर्भावः=प्रकट होता है। शब्दात् = क्योंकि श्रुति के 'स्वेन' पद से ऐसा ही सिद्ध होता है ॥ १ ॥

भाषार्थः—ब्रह्म के साथ अपनी एकता का अनुभव करके ज्ञानी अपने आत्मस्वरूप से प्रकट होता है, क्योंकि 'यह जीव अपने परम विज्ञानमय ब्रह्मस्वरूप को जानकर अपने ब्रह्मस्वरूप से प्रकट होता है' इस श्रुति के 'स्वेन' पद से ऐसा ही प्रकट होता है ॥ १ ॥

मुक्तः प्रतिज्ञानात् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—यः स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स सर्वानर्थविमुक्तो भवति। कुतः ? प्रतिज्ञानात् 'य आत्माऽपहतपाप्मा' (छा० ८।७।१) इत्युपक्रम्य सकलानर्थमुक्तस्यैवात्मनो व्याख्येयत्वेन प्रतिज्ञानात् ॥ २ ॥

पदार्थः—मुक्तः = वह मुक्त होता है। प्रतिज्ञानात् = क्योंकि श्रुति ने मुक्तपुरुष के विषय में ऐसी प्रतिज्ञा की है ॥ २ ॥

भाषार्थः—'जो आत्मा सब पापों से रहित है' इस श्रुति-वचन के अनुसार अज्ञानजनित सब अनर्थों से रहित आत्मज्ञानी पुरुष ही मुक्त है। क्योंकि मुक्त के विषय में यह शास्त्रीय प्रतिज्ञा है कि 'मैं तुम से फिर आत्मा के विषय में व्याख्यान करूँगा' (छा० ८।६।३) एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं के दोष से रहित आत्मा के व्याख्यान का प्रतिज्ञापूर्वक उपक्रम करके 'स्वेन

रूपेणाभिनिष्पद्यते'—'जो अपने स्वरूप में स्थित होता है वही उत्तम पुरुष है' (छा० ८ । १२ । ३) ऐसा उपसंहार किया है ॥ २ ॥

आत्मा प्रकरणात् ॥ ३ ॥

सूत्रार्थः—ननु कार्यं ज्योतिरुपसम्पन्नस्य कथं मुक्तत्वम् ? तत्राह—'एष सम्प्रसादः परं ज्योतिरुपसम्पद्य' (छा० ८ । १२ । ३) इत्यत्र ज्योतिःशब्द आत्मपरः प्रकरणात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—प्रकरणात् = प्रकरण से । आत्मा = ज्योति शब्द का अर्थ यहाँ आत्मा है ॥ ३ ॥

भाषार्थः—आत्मा का प्रकरण होने से यहाँ इस श्रुति में आया हुआ 'ज्योति' शब्द आत्मा का वाचक है, भौतिक ज्योति का वाचक नहीं ॥ ३ ॥

अविभागेन दृष्टत्वाधिकरणम् ॥ ४ ॥

अविभागेन दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—मुक्तोऽविभागेनावतिष्ठते श्रुतिष्वभेददर्शनात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—अविभागेन=मुक्त जीव ब्रह्म के साथ एकरूप से स्थित होता है । दृष्टत्वात् = क्योंकि श्रुति से मुक्त तथा ब्रह्म में अभेद सिद्ध है ॥ ४ ॥

भाषार्थः—मुक्तपुरुष ब्रह्म में भिन्नरूप से स्थित होता है या अभेदरूप से ? इसका उत्तर है कि श्रुतियाँ डिण्डिमघोष से कह रही हैं कि मुक्तपुरुष ब्रह्म में ब्रह्मरूप से ही स्थित होता है, भेदभाव से नहीं । 'तत्त्वमसि'—'तू ब्रह्म है' (छा० ६ । ८ । ७) 'अहं ब्रह्मास्मि'—'मैं ब्रह्म हूँ' (बृ० १ । ४ । १०) इन श्रुतियों से सिद्ध है कि मुक्तपुरुष और ब्रह्म में भेद का लेश भी नहीं है ॥ ४ ॥

ब्राह्माधिकरणम् ॥ ५-७ ॥

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ ५ ॥

सूत्रार्थः—ब्राह्मेण—ब्रह्मसम्बन्धिसत्यसङ्कल्पसर्वज्ञत्वादिना सहावतिष्ठते इति जैमिनिर्मन्यते । कुतः ? उपन्यास-विधि-व्यपदेशेभ्यः । तत्रोपन्यासः—'य आत्माऽपहतपाप्मा' (छा० ८ । ७ । १) इति । विधिः-'सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' (छा० ७ । २५ । २) इति । व्यपदेशः—'स च सर्वज्ञः सर्वेश्वरः' इति ॥ ५ ॥

पदार्थः—ब्राह्मेण = ब्रह्मसम्बन्धी सत्यसङ्कल्प, सर्वज्ञत्व आदि सभी गुणों से स्थित होता है—ऐसा । जैमिनिः = जैमिनि आचार्य मानते हैं । उपन्यासादिभ्यः= उपन्यास, विधि तथा व्यपदेशों से ॥ ५ ॥

भाषार्थः—उपन्यासादि हेतुओं से मुक्तपुरुष ब्रह्म के सत्यसङ्कल्प, सर्वज्ञत्व आदि धर्मों के साथ ब्रह्म को प्राप्त होता है—ऐसा जैमिनि आचार्य मानते हैं । उपन्यास, विधि और व्यपदेश इस प्रकार हैं । 'यह आत्मा पापरहित है' यह उपन्यास है । 'इस मुक्तपुरुष का सब लोकों में स्वेच्छा से विचरण होता है' यह विधि है । 'वह सर्वज्ञ है, सर्वेश्वर है' यह व्यपदेश है ॥ ५ ॥

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ६ ॥

सूत्रार्थः—मुक्तः चितितन्मात्रेणावतिष्ठते जीवात्मनस्तदात्मकत्वाच्चिदेकरसत्वाच्चेत्यौडुलोमिराचार्यो मन्यते ॥ ६ ॥

पदार्थः—चितितन्मात्रेण = मुक्तपुरुष चिन्मात्र ब्रह्म में चिन्मात्ररूप से ही स्थित होता है । तदात्मकत्वात् = जीवात्मा का चिन्मय रूप होने से । इति = ऐसा । औडुलोमिः = औडुलोमि आचार्य मानते हैं ॥ ६ ॥

भाषार्थः—मुक्तात्मा चिन्मात्र ब्रह्म में चिन्मात्ररूप से ही स्थित होता है, सत्यसङ्कल्पादि धर्मों के साथ नहीं–ऐसा औडुलोमि आचार्य मानते हैं ॥ ६ ॥

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—मुक्तात्मनः सप्रपञ्चत्वनिष्प्रपञ्चत्वयोरविरोधं बादरायण आचार्यो मन्यते । कुतः ? एवमपि पारमार्थिकचैतन्यमात्रस्वरूपाभ्युपगमेऽपि व्यवहारापेक्षया पूर्वस्याप्युपन्यासादिभ्योऽवगतस्य ब्राह्मस्यैश्वर्यरूपस्याप्रत्याख्यानात् ॥ ७ ॥

पदार्थः—एवमपि=ऐसा मानें तो भी । उपन्यासात् = श्रुति के कथन से । पूर्वभावात् = पूर्वकथित रूप भी होने से । अविरोधम् = विरोध न होना । बादरायणः = बादरायणाचार्य मानते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थः—मुक्त के पारमार्थिक चैतन्यमात्रस्वरूप के स्वीकार होने पर भी उपन्यासादि हेतुओं से पूर्वोक्त सत्यसङ्कल्प, सर्वज्ञत्व आदि ऐश्वर्यों के मानने में व्यावहारिक दृष्टि से कोई विरोध नहीं है । इस प्रकार मुक्तात्मा के सप्रपञ्चत्व और निष्प्रपञ्चत्व में भी कोई विरोध नहीं है—ऐसा बादरायण आचार्य मानते हैं ॥ ७ ॥

सङ्कल्पाधिकरणम् ॥ ८-९ ॥

सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥

सूत्रार्थः—मुक्तस्य तु सङ्कल्पादेव विभूतिप्राप्तिः साधनान्तरनिरासकश्रुतेः ॥ ८ ॥

पदार्थः—सङ्कल्पात्=सङ्कल्प से । एव=ही । तु=तो । मुक्त जीव अपना कार्य करते हैं । तत् श्रुतेः=ऐसी श्रुति होने से ॥ ८ ॥

भाषार्थः—मुक्तपुरुष को बिना किसी दूसरे साधन के सङ्कल्पमात्र से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । इसमें 'सङ्कल्प से ही इसके पितर उपस्थित होते हैं' (छा० ८ । २ । १) यह श्रुति प्रमाण है ॥ ८ ॥

अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—सङ्कल्पादेवेति श्रुत्यानन्याधिपतित्वमस्य मुक्तस्य भवति ॥ ९ ॥

पदार्थः—अत एव च = और इसीलिये । अनन्याधिपतिः = इसका कोई अधिपति नहीं होता ॥ ९ ॥

भाषार्थः—मुक्तात्मा का कोई अधिपति नहीं होता, क्योंकि उसको ऐश्वर्य-प्राप्ति सङ्कल्प से ही होती है ॥ ९ ॥

अभावाधिकरणम् ॥ १०–१४ ॥

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १० ॥

सूत्रार्थः—'सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति' (छा० ८ । २ । १) इत्यादिश्रुतेर्मनसस्तावत्सङ्कल्पसाधनत्वं सिद्धम्, शरीरेन्द्रियाणाञ्चाभावं मुक्तविदुषो बादरिर्मन्यते । कुतः ? 'मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते' (छा० ८ । १२ । ५) एवं श्रुतिराह ॥ १० ॥

पदार्थः—बादरिः = बादरायणाचार्य । अभावम् = शरीर-इन्द्रियों का अभाव मानते हैं । हि = क्योंकि । एवम् आह = ऐसा ही श्रुति कहती है ॥ १० ॥

भाषार्थः—'सङ्कल्प से ही इसके पितर उठते हैं' (छा० ८ । २ । १) इस श्रुति से मन सङ्कल्पसिद्धि का साधन है यह सिद्ध हुआ । बादरि आचार्य ज्ञानी के शरीर और इन्द्रियों का अभाव मानते हैं । 'मन से इन सिद्धियों को देखता हुआ रमता है' यह श्रुति भी ऐसा ही कहती है ॥ १० ॥

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ ११ ॥

सूत्रार्थः—जैमिनिस्तु मनोवच्छरीरेन्द्रियभावं मन्यते। कुतः? 'स एकधा भवति त्रिधा भवति' (छा० ७।२६।२) इत्यनेकधाभावविकल्पामननात् ॥ ११ ॥

पदार्थः—जैमिनिः=जैमिनि आचार्य। भावम्=शरीर और इन्द्रियों का होना मानते हैं। विकल्पामननात्=क्योंकि श्रुति विकल्प का कथन करती है ॥ ११ ॥

भाषार्थः—आचार्य जैमिनि मन की तरह शरीर तथा इन्द्रियों का भी मुक्तपुरुष में भाव मानते हैं, क्योंकि 'वह एक प्रकार का तथा तीन प्रकार का होता है।' यह श्रुति एक प्रकार का, तीन प्रकार का आदि अनेक प्रकार के विकल्पों को मुक्तात्मा में मानती है, जो शरीर-इन्द्रिय के बिना असम्भव हैं ॥ ११ ॥

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ १२ ॥

सूत्रार्थः—अतो मनसेति विशेषणादनेकधाभावविकल्पामननाच्चेति लिङ्गद्वयाद् यदा शरीरादिसङ्कल्पस्तदा शरीरेन्द्रियत्वम्, यदा तु तत्सङ्कल्पाभावस्तदा शरीरेन्द्रियराहित्यमित्युभयविधं विदुष ऐश्वर्यं बादरायणो मन्यते। यथा द्वादशाहः सत्रमहीनश्च भवति ॥ १२ ॥

पदार्थः—अतः=इसलिये। उभयविधम्=दोनों प्रकार का। द्वादशाहवत्=द्वादशाह के समान। बादरायणः=बादरायणाचार्य मानते हैं ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इसलिये अर्थात् श्रुति में दोनों प्रकार का कथन होने से जब शरीर आदि का सङ्कल्प होता है तब शरीर-इन्द्रियवाला होता है और सङ्कल्पों के अभाव में शरीर-इन्द्रियों से रहित होता है। इस तरह ज्ञानी दोनों प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न होता है। जैसे बारह दिन में होनेवाला द्वादशाह यज्ञ जब एक कर्ता द्वारा सम्पन्न होता है तब सत्र कहलाता है और जब अनेक कर्ताओं के अधीन होता है तब अहीन कहलाता है, वैसे ही यहाँ भी ज्ञानी का अशरीरी तथा शरीरी होना समझना चाहिये ॥ १२ ॥

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः ॥ १३ ॥

सूत्रार्थः—देहेन्द्रियराहित्ये केवलेन मनसा कथं भोगावाप्तिरिति शङ्कते। तत्राह–सेन्द्रियशरीरस्याभावकाले यथा सन्ध्ये (स्वप्ने) मानसिकविषयभोगा उपपद्यन्ते तथा मोक्षेऽपीति ॥ १३ ॥

पदार्थः—तन्वभावे = शरीर-इन्द्रियों के अभाव में। सन्ध्यवद् = स्वप्न की तरह। उपपत्तेः = भोग प्राप्त होनेसे ॥ १३ ॥

भाषार्थः—शरीर और इन्द्रियों के अभाव में जैसे स्वप्न में मानसिक विषयभोग प्राप्त होते हैं, वैसे ही मोक्ष में भी विषयों की प्रतीतिमात्र होती है ॥ १३ ॥

भावे जाग्रद्वत् ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तनोर्भावे यथा जागरिते पित्रादिकामा भवन्ति तथा मोक्षेऽपि चोपपद्यन्ते ॥ १४ ॥

पदार्थः—भावे = शरीर के होते हुए। जाग्रद्वत् = जाग्रत् के समान भोग उपलब्ध होते हैं ॥ १४ ॥

भाषार्थः—जैसे जाग्रत्-अवस्था में शरीर-इन्द्रियों से पिता आदि के साथ सब व्यवहार होते हैं, वैसे मोक्ष में भी ज्ञानी सब के साथ व्यवहार करता है ॥ १४ ॥

प्रदीपाधिकरणम् ॥ १५-१६ ॥

प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—यथैकः प्रदीपोऽनेकप्रदीपभावमापद्यते विकारशक्तियोगात्तथैवैकोऽपि विद्वानैश्वर्ययोगादनेकभावमापद्य सर्वाणि शरीराण्याविशति। तथा हि–'स एकधा भवति त्रिधा भवति' (छा० ७। २६। २) इति श्रुतिर्दर्शयति ॥ १५ ॥

पदार्थः—प्रदीपवत् = दीपक की तरह। आवेशः = प्रवेश है। हि = क्योंकि। तथा = वैसा ही। दर्शयति = श्रुति भी कहती है ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जैसे एक दीपक बत्तियों के संयोग से अनेक दीपकों के रूप में प्रकट होता है, ऐसे ही विद्वान् ऐश्वर्य के बल से अनेक शरीरों को अपने

सङ्कल्प से रचकर उनमें प्रविष्ट हो जाता है। जैसा कि 'एक प्रकार का हो जाता है, तीन प्रकार का हो जाता है' यह श्रुति कहती है ॥ १५ ॥

स्वाप्ययसम्पत्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ॥ १६ ॥

सूत्रार्थः—कथं मुक्तस्यानेकशरीरावेशः। 'न तु तद्द्वितीयमस्ति' (बृ० ४। ३। ३०) इति श्रुतिर्वर्णयति विशेषविज्ञत्वम्। तत्राह-क्वचित् सुषुप्तावस्थामपेक्ष्य क्वचित् कैवल्यमपेक्ष्य च विशेषविज्ञानाभाव उक्तः। कुतः? 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्' (बृ० २। ४। १४) इत्यादिश्रुत्याविष्कृतं हि ॥ १६ ॥

पदार्थः—स्वाप्ययसम्पत्योः=सुषुप्ति और मुक्ति (ब्रह्मप्राप्ति) में से। अन्यतरापेक्षम्=किसी एक की अपेक्षा से ऐश्वर्य का अभाव कहा, क्रममुक्ति की अपेक्षा से नहीं। हि=क्योंकि। आविष्कृतम्=श्रुति से भी ऐसा ही प्रकट होता है ॥ १६ ॥

भाषार्थः—मुक्तपुरुष में अनेक शरीरों में प्रवेश करना आदि विशेषज्ञान (ऐश्वर्य) कैसे घट सकता है, क्योंकि 'वह तो द्वैतभाव से रहित है' ऐसा श्रुति कहती है। इसपर सूत्रकार कहते हैं—यह सत्य है कि मुक्तपुरुष में शरीरों की सङ्कल्पसिद्धि से रचना करना और उनमें प्रवेश करना आदि ऐश्वर्य नहीं घट सकते; पर यहाँ तो ब्रह्मलोक की प्राप्तिरूप क्रम (सापेक्ष) मुक्ति का प्रसङ्ग है, इसमें शरीरी बनना तथा अशरीरी होना दोनों बातें घट सकती हैं। इसी पाद के १२ वें सूत्र को देखिये। सङ्कल्प के अभाव में ब्रह्मलोकवासी ज्ञानी के भी सुषुप्ति तथा मुक्ति अवस्था की भाँति सर्वज्ञता आदि सब ऐश्वर्यों का अभाव हो जाता है। ऐश्वर्यों का अभाव सुषुप्ति तथा कैवल्य मुक्ति की अपेक्षा से कहा गया है, क्रममुक्ति की अपेक्षा से नहीं ॥ १६ ॥

जगद्व्यापाराधिकरणम् ॥ १७-२२ ॥

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—जगदुत्पत्त्यादिव्यापाररहितं सातिशयैश्वर्यं विदुषो भवति 'आप्नोति स्वाराज्यम्' (तै० १। ६। २) इति। जगद्व्यापारस्तु परमेश्वरस्यैव सर्वत्र तस्यैव प्रकरणात्, मुक्तस्य च तत्रासन्निहितत्वात् ॥ १७ ॥

पदार्थः—जगद्व्यापारवर्जम्=जगत् की उत्पत्ति आदि व्यापार को छोड़कर सब ईश्वरीय ऐश्वर्य मुक्तपुरुष को प्राप्त होता है। प्रकरणात्=सृष्टि

रचनादि में सर्वत्र ईश्वर का ही प्रकरण होने से। च = और। असन्निहितत्वात्= मुक्तात्माओं का सम्पर्क-निर्देश न होने से ॥ १७ ॥

भाषार्थः—सृष्टिरचनादि जगत् के व्यापार में केवल नित्यसिद्ध ईश्वर का ही प्रकरण होने से एवं उसमें मुक्तपुरुष के सम्पर्क का निर्देश न होने से मुक्तपुरुष को जगत् की उत्पत्ति आदि व्यापार को छोड़कर अन्य सब ईश्वरीय ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—ननु 'आप्नोति स्वाराज्यम्' इति श्रुत्या प्रत्यक्षमैश्वर्योपदेशान्निरङ्कुशं विदुष ऐश्वर्यमिति चेन्न। अधिकारे तत्तद्व्यापारे नियोजयत्यादित्यादीन् इत्याधिकारिकः परमात्मा सूर्यमण्डलादिष्ववस्थितस्तस्योत्तरवाक्ये प्राप्यत्वेनोक्तेः ॥ १८ ॥

पदार्थः—चेत् = यदि कहो। प्रत्यक्षोपदेशात्=श्रुति में प्रत्यक्ष कहा गया है इसलिये मुक्तात्माओं का ऐश्वर्य स्वतन्त्र है। इति=ऐसा। न = नहीं है। आधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः=क्योंकि वहाँ सूर्य-मण्डल आदि में स्थित आधिकारिक परमात्मा के अधीन मुक्तात्माओं को स्वराज्य की प्राप्ति होती है यह कथन है ॥ १८ ॥

भाषार्थः—यदि कहो कि प्रत्यक्ष श्रुति का उपदेश होने से विद्वान् का ऐश्वर्य स्वतन्त्र है तो यह कथन उचित नहीं है, क्योंकि सूर्यमण्डल में रहनेवाला आधिकारिक परमात्मा ही आदित्य आदि को उन-उनके अधिकार में नियुक्त करता है। अतः उसके उत्तर वाक्य में 'स्वराज्य को प्राप्त होता है' ऐसा कथन होने से ईश्वराधीन ही यह स्वराज्य-प्राप्ति है—ऐसा तात्पर्य है ॥ १८ ॥

विकारावर्ति च तथा हि स्थितिमाह ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—सवितृमण्डलस्थो नित्यमुक्त ईश्वरो विकारावर्त्यपि न केवलं विकारमात्रगोचरः। तथा ह्यस्य द्विरूपां स्थितिमाह श्रुतिः 'एतावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः, पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि' (छा० ३। १२। ६) इति ॥ १९ ॥

पदार्थः—विकारावर्ति च = विकारी जैसा होने पर भी निर्विकार भी है। हि = क्योंकि। तथा = वैसी द्विरूपा। स्थितिम् = स्थिति को। आह = श्रुति कहती है ॥ १९ ॥

भाषार्थः—जगत् की उत्पत्ति आदि व्यापार से परमात्मा विकारी होगा—ऐसी शङ्का उचित नहीं है, क्योंकि सूर्यमण्डल में स्थित नित्यमुक्त परमात्मा विकारी-जैसा होने पर भी वह केवल विकारमात्र नहीं हो सकता। इस सर्वोत्कृष्ट परमपुरुष परमात्मा की दोनों प्रकार की स्थिति को 'सब भूत इसके पाद हैं और इसके अमृतरूप तीन पाद निर्विकार हैं' यह यजुर्वेद की श्रुति कह रही है ॥ १९ ॥

दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—एवं ब्रह्मणो निर्विकारत्वं निर्गुणत्वं दर्शयतश्च श्रुतिस्मृती ॥ २० ॥

पदार्थः—एवं च = और इस प्रकार निर्विकार स्वरूप को। प्रत्यक्षानुमाने= श्रुति और स्मृति दोनों। दर्शयतः=दिखलाती हैं ॥ २० ॥

भाषार्थः—इस प्रकार ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को 'न तत्र सूर्यो भाति' (कठ० ५। १५) यह श्रुति और 'न तद्भासयते सूर्यः' (१५। ६) यह गीतास्मृति—दोनों दिखला रही हैं ॥ २० ॥

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॥ २१ ॥

सूत्रार्थः—उपासकस्योपास्यदेवतया सह भोगमात्रेण साम्यं श्रुतं न जगद्व्यापारेण। तस्माल्लिङ्गान्मुक्तस्य सातिशयमैश्वर्यं सिध्यति ॥ २१ ॥

पदार्थः—भोगमात्रसाम्यलिङ्गात् च = उपासक की उपास्य देवता के साथ भोगमात्र में समता सुनी गयी है, जगत् के व्यापार में नहीं। इसी भोगमात्र में समतारूप लिङ्ग (प्रमाण) से मुक्तात्माओं का मर्यादित ऐश्वर्य सिद्ध होता है ॥ २१ ॥

भाषार्थः—विकारी सगुण ब्रह्म का उपासक ब्रह्मलोक में जाता है। उसका ऐश्वर्य निरङ्कुश (स्वतन्त्र) नहीं है। अनादिसिद्ध ईश्वर (ब्रह्मा) के समान ही उसका भोग है। इस विषय में यह श्रुति प्रमाण है कि ब्रह्मा अपने उपासक विद्वान् से कहते हैं कि 'ब्रह्मलोक के जिन अमृतभोगों को मैं भोगता हूँ तुम भी इन्हीं भोगों को भोगो। जैसे मुझ हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) की लोग पूजा करते हैं वैसी पूजा तुम्हारी भी होगी' (बृ० १। ५। २३) यही सारूप्य तथा सालोक्य मुक्ति है। वहाँ के दिव्य भोग तथा दिव्य ईश्वरीयशक्तिरूप सातिशय ऐश्वर्य उस मुक्त को अनायास प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ २२ ॥

सूत्रार्थः—नाडीरश्मिसमन्वितेन देवयानमार्गेण ये ब्रह्मलोकं गच्छन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः 'न च पुनरावर्तते' (छा० ८ । १५ । १) इत्यादि-शब्देभ्यः । अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दादिति सूत्राभ्यासः शास्त्रपरिसमाप्तिं द्योतयति ॥ २२ ॥

पदार्थः—अनावृत्तिः=ब्रह्मलोकस्थ विद्वान् फिर वापस नहीं आता । शब्दात् = यह श्रुति से सिद्ध है ॥ २२ ॥

भाषार्थः—ब्रह्मलोक के उपासक का ऐश्वर्य निरङ्कुश (स्वतन्त्र) नहीं है, क्योंकि ब्रह्मलोक का नाश हो जाता है; किन्तु वह अहंग्रह-उपासनावाला विद्वान् फिर भूलोक में या अन्यत्र जन्म नहीं लेता। यह बात श्रुति-वचन से सिद्ध है। वह उपासक ब्रह्मलोक के भोगों को भोगकर ब्रह्मा के साथ ही कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है। 'अनावृत्तिः शब्दात्' की पुनरावृत्ति शास्त्र-समाप्ति की सूचक है ॥ २२ ॥

इति श्रीवेदान्तदर्शने चतुर्थाध्याये पं० दुर्गादत्त उप्रेती शास्त्रि-

विरचितसरलसंक्षिप्तसंस्कृतहिन्दीटीकायां

चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥

समाप्तोऽयं फलाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

—:*:—

समाप्तमिदं वेदान्तदर्शनम् ।

॥ ॐ तत्सत् ॥

श्रीः।

ॐ यदज्ञातं जीवैर्बहुविधजगद्विभ्रमधरं

वियद्यद्वद्वालैस्तलमलिनतायोगि कलितम्।

तदुन्मुद्रज्ञानप्रततसुखसद्ब्रह्म परमं

नमस्यामः प्रत्यक्श्रुतिशतशिरोभिः प्रकटितम् ॥०॥

ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।
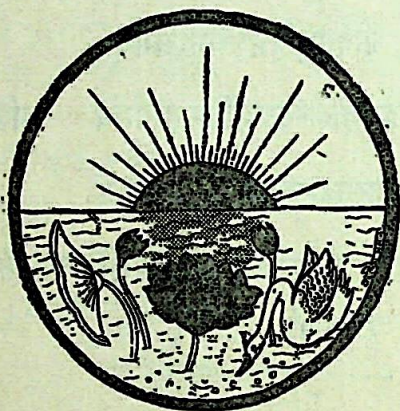
पुस्तक मिलने का पता
श्री गीता सत्सङ्ग,
७९, गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ २२६००१

मुद्रक : जीवन शिक्षा मुद्रणालय (प्रा०) लिमिटेड
गोलघर, वाराणसी–१